३६

अथर्व वेद

(द्वितीय खण्ड)

3·5

अथर्व-वेद

(सायण-भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

द्वितीय खण्ड

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद् व षट्दर्शन के भाष्यकार,
गायत्री महाविद्या के विशेषज्ञ तथा हिन्दी के
लगभग १५० ग्रन्थों के रचयिता

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान बरेली

(उत्तर प्रदेश)

तृतीय संस्करण] १९६५ [मूल्य— ६ रुपया

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान
बरेली (उ० प्र०)

*

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

*

संशोधित संस्करण
१९६५ ई०

*

मुद्रक :
बलवीरसिंह बघेल
जवाहर प्रिंटिंग प्रेस,
नौगजा, मथुरा

*

मूल्य :
छः रुपया

अथर्ववेद

(द्वितीय खण्ड)

६ सूक्त

(ऋषि—बृहस्पतिः । देवता—वनस्पतिः; फालमणिः; आपः । छन्द—गायत्री;
अनुष्टुप, जगती, शक्वरीः अष्टिः, धृतिः, पंक्तिः)

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः । अपि वृश्चाम्योजसा ॥ १ ॥
वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति ।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २ ॥
यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ॥ ३ ॥
हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत् । गृहे वसतु नोऽतिथिः । ४ ।
तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयश्चिकित्स्तु भूयोभूयः
श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥ ५ ॥
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः
श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ६ ॥
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चतोजसे वीर्याय कम् ।
सो अस्मै बलमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि । ७ ।
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।
सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि । ८ ।
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः ।
सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि । ९ ।

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणांपुरोऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः ।
सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विशतो जहि ॥१०॥

जो शत्रु मुझसे द्वेष भाव रखता है, मैं उसके सिर को मन्त्र की शक्ति से काटता हूं ॥ १ ॥ यह फल द्वारा उत्पन्न हुआ मणि रस और मंथ से युक्त है । यह तेज के सहित मेरे पास आ रहा है । यह मणि मेरे लिए कवच के समान रक्षक होगा ॥ २ ॥ तुझे शिवव ने अपने हाथ से आयुध द्वारा काटा है, उस तुझ पवित्र को प्राणदायक पवित्र जल पवित्र बनावे ॥ ३ ॥ यह हरिण्यस्त्रक मणि यज्ञोत्सवों को कराता हुआ हमारे गृहों में अतिथि के समान निवास करे ॥ ४ ॥ जैसे पिता पुत्रों के कल्याण की बात सोचता है, वैसे ही यह मणि हमारे लिए कल्याणमयी हो । हम इस मणि को घृत, सुरा, मधु और अन्न भेंट करते हैं । देवताओं के पास से आने वाली यह मणि बारम्बार हमको प्राप्त होती हुई मङ्गल करने वाली हो ॥ ५ ॥ इस खदिर फाल की मणि को बृहस्पति ने बल-प्राप्ति के लिए बांधा और अग्नि ने इसका प्रतिमुंचन किया । यह मणि घृत के समान सार पदार्थों की वर्षा करने वाली है । इसके द्वारा तू शत्रुओं का हनन कर ॥ ६ ॥ जिस खदिर फाल मणि को बृहस्पति ने बल प्राप्ति के लिए बांधा और इन्द्र ने जिसे ओज वीर्य के निमित्त बँधवाया तब वह सार पदार्थों की वर्षा करने वाली मणि इन्द्र को नित्य नवीन बल प्रदान करती रहती है । तू उसी मणि से अपने शत्रुओं का हनन कर ॥ ७ ॥ जिस खदिर फाल मणि को बृहस्पति ने बल पाने के लिए बांधा और सोम ने उसे महिमामय श्रोतृ और दर्शन शक्ति को प्राप्ति के लिए बंधवाया, वह घृत के समान सार पदार्थों की वर्षा करने वाली मणि सोम को नित्य नवीन वर्च प्रदान करती है । उसी मणि के द्वारा तू अपने शत्रुओं का हनन कर ॥ ८ ॥ जिस खदिर फाल मणि को बल प्राप्ति के निमित्त बृहस्पति ने बांधा था और सूर्य ने जिसे दिशाओं पर विजय प्राप्त करने को बंधवाया था वह घृत के समान सार पदार्थों की वर्षा करने वाली शत्रु के लिए उग्र मणि प्रति दूसरे दिन सूर्य को अधिकाधिक भूति प्रदान करे । उसी मणि से तू शत्रुओं का संहार कर ॥ ९ ॥

जिस खदिर फाल मणि को बृहस्पति ने ओज के लिए बांधा था, उस मणि को धारण कर चन्द्रमा ने राक्षसों के सुवर्ण से बने नगरों पर विजय प्राप्त की। यह मणि घृत के समान सार पदार्थों की वर्धक और शत्रु के लिए उग्र है। यह मणि चन्द्रमा को नित्य प्रति बारम्बार श्री प्रदान करने वाली है। तू उसी मणि से अपने शत्रुओं को नष्ट कर ॥ १० ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ११ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तेनेमा मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः।
स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १२ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः।
सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १३ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः।
स आभ्यो ऽमृतमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१४॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम्।
सो अस्मै सत्यमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१५॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वाल्लोकान् युधाजयन्।
स एभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१६॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम्।
स आभ्यो विश्वमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१७॥

ऋतवस्तमवध्नतार्तवास्तमवध्नत ।
संवत्सरस्तं वद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ।। १८ ।।
अन्तर्देशा अवध्नत प्रदिशस्तमवध्नत ।
प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधराँ अकः ।। १९ ।।
अथर्वाणो अवध्नताथर्वणा अवध्नत ।
तर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां विभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि । २० ।

जिस मणि को बृहस्पति ने वायु के बाँधा था, वह मणि नित्य प्रति बारम्बार वायु को वेगमान बनाती रहती है। तू उस मणि के द्वारा ही शत्रुओं को मार ।। ११ ।। जिस मणि को बृहस्पति ने अश्विनीकुमारों के बाँधा था, उससे अश्विनीकुमार कृषि की रक्षा करते हैं। वह बारम्बार अश्विनीकुमारों को जल प्रदान करती है। तू उसी मणि के द्वारा शत्रुओं को नष्ट कर ।।१२।। जिस मणि को बृहस्पति ने सविता के बाँधा था, जिससे सविता ने स्वर्ग पर विजय प्राप्त की। वह सविता के लिये नित्य प्रति बारम्बार वाणी प्रदान करती है। उस मणि से तू शत्रुओं का नाश कर ।। १३ ।। जिस मणि को बृहस्पति ने जलों के बाँधा था, उसे धारण कर वह सदा गतिमान रहते हैं। वह मणि इन जलों को नित्य प्रति अधिक से अधिक अमृतत्व देती रहती है। उसी मणि के द्वारा तू शत्रुओं को नष्ट कर ।। १४ ।। बृहस्पति ने जिस मणि को राजा वरुण के बाँधा था, वह मणि कल्याण प्रदायिनी है और नित्य प्रति वरुण को सत्य प्रदान करती रहती है। तू उसी मणि के द्वारा शत्रुओं का नाश कर ।। १५ ।। जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था और देवताओं ने उसके प्रभाव से सब लोकों पर जय प्राप्त की थी, उसी मणि से तू अपने शत्रुओं का हनन कर ।। १६ ।। जिस मणि को बृहस्पति ने द्रुतगति के लिए वायु के बाँधा था और देवताओं ने भी उसे धारण किया था, वह मणि उनको विश्व प्रदान करती रहती है। तू ऐसी ही मणि से अपने शत्रुओं को नष्ट कर ।। १७ ।। इस मणि को ऋतु ने, उनके अवयव महीनों ने भी बाँधा था और संवत्सर इसी के बल से प्राणियों की रक्षा किया करता है ।। १८ ।।

अन्तर्देशों और प्रदिशाओं ने भी इस मणि को धारण किया था। इसका आविष्कार प्रजापति ने किया था। यह मणि मेरे शत्रुओं की दुर्गति करने वाली हो ॥ १९ ॥ अथर्ववेद के मन्त्रों द्वारा जिन्होंने इस मणि को धारण किया, उन्होंने शत्रुओं के नगरों को तोड़ दिया। तू ऐसी ही मणि से अपने शत्रुओं का संहार कर ॥ २० ॥

तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत् ।
तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ २१ ॥
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २२ ॥
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ॥ २३ ॥
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ॥ २४ ॥
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह । २५ ।
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह । २६ ।
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह । २७
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥ २८ ॥

तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये ।
अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ॥ २९ ॥

ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधरां अकः ॥ ३० ॥

इस मणि को धारण करके ही धाता ने प्राणियों को रचा। उसी मणि से तू शत्रुओं को नष्ट कर ॥ २१ ॥ असुरों का क्षय करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बांधा था, वह मणि रस और वर्च सहित मुझे प्राप्त हो गई है ॥ २२ ॥ राक्षसों को क्षीण करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बांधा था, वह मणि गो, भेड़ आदि तथा सन्तानों के सहित मुझे प्राप्त होगई है ॥ २३ ॥ राक्षसों को क्षीण करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बांधा था, वह मणि यव, धान्य उत्सव और भूति आदि से सम्पन्न हुई मुझे मिल गई है ॥ २४ ॥ राक्षसों को नष्ट करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बांधा था, वह मणि घृत और मधु की धाराओं और अन्न से सम्पन्न हुई मुझे मिल गई है ॥ २५ ॥ असुरों को क्षीण करने वाली जिस मणि को बृहस्पति न देवताओं के बांधा था, वह मणि अन्न, बल और लक्ष्मी सहित मुझे प्राप्त हो गई है ॥ २६ ॥ राक्षसों को क्षीण करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बांधा था, वह मणि तेज, यश, कीर्ति और दीप्ति सहित मुझे प्राप्त हो गई है ॥ २७॥ राक्षसों को क्षीण करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बांधा था, वह मणि सम्पूर्ण विभूतियों से सम्पन्न हुई मुझे प्राप्त हो गई है ॥ २८ ॥ क्षात्र बल की वृद्धि करने वाली, शत्रुओं को वशीभूत करने वाली तथा उनका संहार करने वाली इस मणि को पुष्टि के लिए देवगण मुझे प्रदान करें ॥२९॥ हे मणे ! तू कल्याण करने वाली है। तुझे मंत्र शक्ति सहित ग्रहण करता हूं। तू शत्रु रहित होने से अपने धारण करने वाले के शत्रु का नाश करती है। इस लिए मेरे शत्रुओं को भी बुरी गति प्रदान कर ॥ ३० ॥

उत्तरं द्विषतो मामयं मणिष्कृणोतु देवजाः।
यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३१ ॥
यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय र्धतः ॥ ३२ ॥
यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति।

एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु ॥ ३३ ॥
यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुञ्चं शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥ ३४ ॥
एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे
जातवेदसि ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥

इस मणि का देवताओं ने आविष्कार किया। यह मुझे शत्रुओं से श्रेष्ठ बनावे। जिस मणि से दूध और जल की याचना की जाती है, वह मणि श्रेष्ठता के निमित्त ही मेरे द्वारा धारण की जाय ॥ ३१ ॥ देवता, पितर और मनुष्य जिस मणि से जीवन पाते हैं, ऐसी यह मणि श्रेष्ठता से मुझ पर चढ़े ॥ ३२ ॥ फाल द्वारा कुरेदे जाने पर जैसे भूमिगत बीज उत्पन्न होता है, वैसे ही यह मणि प्रजा, पशु और खाद्यानों की उत्पत्ति करने वाली हो ॥ ३३ ॥ मणे ! तू यज्ञ की वृद्धि करने वाली है। तू कल्याणकारिणी है। मैं तुझे जिस के लिए धारण कर रहा हूं, उसे तू श्रेष्ठता देती हुई संतुष्ट बना ॥ ३४ ॥ हे अग्ने ! तुम मंत्र शक्ति से प्रदीप्त होते हुए इस हवि का सेवन कर तृप्त होओ। हम इन अग्निदेव से श्रेष्ठ मति, प्रजा, चक्षु, पशु और सब प्रकार का कल्याण चाहते हैं ॥ ३५ ॥

७ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि-अथर्वा। देवता स्कम्भः, अध्यात्मम्। छन्द-जगती; त्रिष्टुप; उष्णिक्; बृहती; अनुष्टुप; गायत्री; पंक्ति)

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम् ।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥१॥
कस्मादङ्गाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात् पवते मातरिश्वा ।
कस्मादङ्गाद् वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥२
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम् ।

कस्मिन्नंगे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नंगे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥३॥

क्व प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्वः प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥४॥

क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः ।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥५॥
क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥६॥

यस्मिन्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वां अधारयत् ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥७॥
यत् परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम् ।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत् तद् बभूव ॥८॥
कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य ।
एकं यदंगमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥९॥
यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।
असच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०॥

इसके किस अङ्ग में तप, किस अङ्ग में ऋत, किस अङ्ग में श्रद्धा, किस अङ्ग में सत्य और किस अंग में व्रत रहता है ? ॥ १ ॥ इसके किस अङ्ग से वायु चलता, किस अङ्ग से अग्नि प्रज्वलित होती और चन्द्रमा इसके किस अङ्ग द्वारा मान करता है ? ॥ २ ॥ इसके किस अंग में भूमि, किस अंग में अन्तरिक्ष और किस अंग में द्युलोक का निवास है ? द्युलोक से भी श्रेष्ठ स्थान इसके किस अंग में स्थित है ? ॥ ३ ॥ ऊपर को उठता हुआ अग्नि कहाँ जाने की इच्छा करता है ? वायु कहाँ जाने की इच्छा करता हुआ चलता है ? आवागमन के चक्कर में पड़े प्राणी कहाँ जाने की इच्छा करते हुए किस स्कंभ के सामने चलते हैं, उसे बताओ ? ॥ ४ ॥ संवत्सर से सहमति रखने वाले पक्ष और मास कहाँ जाते हैं, ऋतुएं और मास जहाँ जाते हैं, उस स्कंभ

(सर्वाधार) को बताओ ? ॥ ५ ॥ रात्रि और दिन अनेक रूपों के धारण करने वाले हैं, वे मिलने और वियुक्त होने वाले हैं, वे दौड़ते हुए कहाँ जाते हैं ? जहाँ प्राप्ति की इच्छा वाले जल जा रहे हैं उस स्कंभ को बताओ ? ॥ ६ ॥ प्रजापति जिसमें स्तंभित होकर सब लोकों को धारण किये हुए हैं, उस स्कंभ को बताओ ? ॥ ७ ॥ जो परम, अवम और मध्यम है, जिन सब रूपों को प्रजापति ने बनाया है, उनमें कितने अंश से स्कंभ प्रविष्ट हुआ है ? जिससे प्रविष्ट नहीं हुआ, वह अंश कितना है ? ॥ ८ ॥ कितने अंश से स्कंभ भूत में घुसा है ? भविष्य में कितने अंश से सो रहा है ? जो अपने अंग को सहस्र प्रकार का बना लेता है, वह उसमें कितने अंश से प्रविष्ट होता है ? ॥ ९ ॥ लोक, कोश और जल जिसमें निहित माने जाते हैं, जिसमें सत् और असत् भी है उस स्कंभ को बताओ ॥ १० ॥

यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।
ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥११॥
यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १२ ॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अंगे सर्वे समाहिताः ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १३ ॥
यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।
एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १४ ॥
यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते ।
समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १५ ॥
यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्यस्तिष्ठन्ति प्रथमाः

यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १६ ॥
ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥१७ ॥
यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
अङ्गानि यस्य यातवः स्कम्भ तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १८ ॥
यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत ।
विराजमूधो यस्याहु स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १९ ॥
यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि
कतमः स्विदेव सः ॥ २० ॥

जिस स्थान में तप और व्रत द्वारा तेजस्वी हुआ पुरुष बैठता है, जहाँ श्रद्धा, ऋतु, जल और ब्रह्म भी प्रतिष्ठित हैं, उस स्कंभ को कहो ॥ ११ ॥ जिसमें अग्नि सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दिव्य लोक हैं, उस स्कंभ को हमसे कहो ? ॥ १२ ॥ जिसके शरीर में तेतीस देवताओं का निवास है, उस स्कंभ को हमें बताओ ? ॥ १३ ॥ जिसमें आरम्भ काल में उत्पन्न हुए ऋषि, पृथ्वी, ऋक् साम और यजुर्वेद हैं, उस स्कंभ को हमसे कहो ? ॥ १४ ॥ जिसमें मरण, अमरण भले प्रकार निहित है, समुद्र जिसकी नाड़ी है, वह स्कंभ कौन सा है ? ॥ १५ ॥ चारों दिशा रूप जिसकी मुख्य नाड़ी है, जिसमें यज्ञ जाता है, उस स्कंभ का वर्णन करो ? ॥ १६ ॥ जो पुरुष में ब्रह्म को जानने वाले हैं, वे परमेष्ठी, प्रजापति और अग्रज ब्राह्मण को जानते हैं, वही स्कंभ के भी ज्ञाता हैं ? ॥ १७ ॥ जिसका सिर वैश्वानर, जिसके नेत्र अङ्गिरावंशीय ऋषि, जिसके अङ्ग 'यातु' हैं वह स्कंभ कौन सा है ? ॥ १८ ॥ जिस की जीभ को मधुकशा और मुख को ब्रह्म कहते हैं, जिसका ऐन विराट कहलाता है, उस स्कंभ को बताओ ? ॥ १९ ॥ जिससे यजुर्वेद के मन्त्र और

ऋचाएँ प्रकट हुईं, अथर्व जिसका मुख और साम जिसके लोम हैं उस स्कंभ के विषय में कहो ! ॥ २० ॥

असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः ।
उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते ॥ २१ ॥

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिता स्कम्भं तं ब्रूहि
कतमः स्विदेव सः ॥ २२ ॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥ २३ ॥

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥ २४ ॥

बृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परि जज्ञिरे ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः ॥ २५ ॥

यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत् ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः ॥ २६ ॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अंगे गात्रा विभेजिरे ।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥ २७ ॥

हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः ।
स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा ॥ २८ ॥

स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम् ।
स्कम्भं त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥ २९ ॥

इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम ।
इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३० ॥

यदि अप्रकट शाखा प्रकट हो जाय तो वह श्रेष्ठ मानी जाती है। अन्य

व्यक्ति जिसकी स्तुति करें वह व्यक्ति भी श्रेष्ठ माना जाता है ॥ २१ ॥ जिसमें सूर्य, रुद्र, वसु, भूत, भव्य और सब लोक जिसमें निहित हैं, उस स्कंभ को बताओ ? ॥ २२ ॥ तेंतीस देवता जिसकी निधि की रक्षा करते हैं, उस निधि का ज्ञाता कौन है ? ॥ २३ ॥ ब्रह्म को जानने वाले देवता जहाँ महान् ब्रह्म की स्तुति करते हैं, जो उन्हें जानता है, वही ब्रह्म को जान सकता है। ॥ २४ ॥ असत् से उत्पन्न हुए वृहद् नामक देवता स्कंभ के ही अङ्ग हैं, वे असत् कहलाते हैं ॥ २५ ॥ स्कंभ ने उत्पन्न पुराण को व्यवर्तित किया, वह स्कंभ का अंग पुराण कहा जाता है ॥ २६ ॥ तेंतीस देवता जिसके शरीर में सुशोभित हैं, उन्हें ब्रह्म के जानने वाले विज्ञ जानते हैं । ॥ २७ ॥ वह हिरण्यगर्भ, वर्णन करने में जो न आ सके, ऐसा है। उसे स्कंभ ने ही इस लोक में प्रथम वार सींचा था ॥ २८ ॥ स्कंभ में लोक, तप और ऋतु निहित है। हे स्कंभ ! इन्द्र ने तुझे प्रत्यक्ष देखा है, तू इन्द्र में ही निहित है ॥ २९ ॥ इन्द्र में ही लोक, तप और ऋतु हैं। हे इन्द्र ! मैं तुझे जानता हूं। सब स्कंभ में निहित हैं ॥ ३० ॥

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः ।
यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत
परमस्ति भूतम् ॥ ३१ ॥
यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३२ ॥
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥
यस्य वातः प्राणपानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३४ ॥
स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश ।३५।
यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।

सोमं यश्चक्र केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३६ ॥
कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः ।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ॥ ३७ ॥

महद् यज्ञं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ।
तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परितइव शाखाः ॥३८॥
यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा ।
यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं
ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ३९ ॥
अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना ।
सर्वाणि तस्मिञ्ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ॥ ४० ॥
यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद ।
स वै गुह्यः प्रजापतिः ॥ ४१ ॥

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् ।
प्रान्या तन्तूं स्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ॥४२॥
तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात् ।
पुमानेनद् वयत्युद् गृणत्ति पुमानेनद् वि जभाराधि नाके ॥ ४३ ॥
इमे मयूखा उप तस्तभुर्दि सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ॥ ४४ ॥

जो पहले अजन्मा था, जिससे परे कोई भूत नहीं है उसे वह आत्मा प्राप्त हो जाता है। वह सूर्य और उषा से पूर्व नाम रूपात्मक संसार को नाम से पुकारता है ॥ ३१ ॥ पृथ्वी जिसकी 'प्रमा' अन्तरिक्ष उदर और द्युलोक शिर रूप है, उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूं ॥ ३२ ॥ चन्द्र और सूर्य जिसके नेत्र और अग्नि जिसका मुख रूप है, उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूं ॥३३॥ जिसके प्राणापान वायु, अंगिरा नेत्र और दिशाऐं प्रज्ञान है, उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूं ॥ ३४ ॥ स्कंभ ने आकाश, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, प्रदिशा और छै उर्वियों को धारण किया है और वही स्कम्भ इस लोक में रमा हुआ

है ॥ ३५ ॥ जो सब लोकों का भोग करने वाला और तपस्या द्वारा प्रकट होता है तथा जिसने सोम को बनाया है, उस ब्रह्म को प्रणाम है ॥ ३६ ॥ किस सत्य की इच्छा से जल अचेष्ट रहते हैं, वायु प्रेरणा नहीं करता और मन नहीं रमता ॥ ३७ ॥ लोक में एक अत्यन्त पूजनीय व्यक्तित्व है, वह सलिल पृष्ठ पर विराजमान है, उसे तप द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। जैसे वृक्ष की शाखाऐं वृक्ष की आश्रिता हैं, वैसे ही सब देवता उसके आश्रित हैं ॥ ३८ ॥ हाथ, पाँव, वाणी और नेत्रादि के द्वारा देवता जिसकी सेवा करते हैं, जो विमित देह में अमित रूप से विराजमान है, उस स्कंभ को बताओ ? ॥ ३९ ॥ स्कंभ के ज्ञाता का अज्ञान मिट जाता है, वह पाप से रहित होता है, प्रजापति में जो तीन ज्योतियाँ हैं वे उसमें प्रतिष्ठित हो जाती हैं ॥ ४० ॥ प्रजापति वही है जो जल में वेंत का जानने वाला है ॥ ४१ ॥ यह अनेक दिन-रात्रि छै ऋतु वाले गमनशील संवत्सर के आश्रित हैं, मैं इन पर चढ़ता हूं। इनमें से एक तन्तु-विस्तार कर उन्हें धारण करता है और दूसरा भी उन्हें नहीं त्यागता। यह दोनों ही अन्त से युक्त नहीं होते ॥ ४२ ॥ इन नर्तनशील दिन-रात्रि में पर (दूसरा) को मैं नहीं जानता, दिन इन्हें तन्तुवान बनाता और उद्गुणन करता हुआ दिव्य लोक में पुष्ट करता है ॥ ४३ ॥ साम प्रवाहमान होने के लिए 'तसर' करते हैं और मयूख द्युलोक को स्तम्भित करते हैं ॥ ४४ ॥

८ सूक्त

(ऋषि—कुत्सः। देवता—अध्यात्मम्। छन्दः—बृहती; अनुष्टुप; त्रिष्टुप; जगती; पंक्ति; उष्णिक्; गायत्री)

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥
स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणन्निमिषच्च यत् ॥ २ ॥
तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन् न्यन्या अर्कमभितोऽविशन्त।

बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ॥ ३ ॥
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥ ४ ॥
इदं सवितर्वि जानीहि षड् यमा एक एकजः ।
तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः ॥ ५ ॥
आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत् पदम् ।
तत्रेदं सर्वमार्पित मेजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥
एकचक्रं वर्तत एकनेमिसहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्व भुवनं जजान यदस्यार्धं क्वतद् बभूव ॥ ७ ॥
पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।
अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः ॥ ८ ॥
तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥ ९ ॥
या पुरस्ताद्युज्यते या च पश्चाद् या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।
यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा स ऋचाम् ॥ १० ॥

जो भूत, भविष्य और सब में व्यापक है, जो दिव्य लोक का भी अधिष्ठाता है, उस ब्रह्म को प्रणाम है ॥ १ ॥ यह पृथिवी और आकाश स्कंभ द्वारा ही स्थान पर स्थित हैं। श्वास लेने और पलक मारने वाले यह आत्म रूप स्कंभ ही हैं ॥ २ ॥ तीन प्रजाऐं इसे प्राप्त करती हैं और अन्य सब ओर से सूर्य में प्रविष्ट होती हैं। पृथिवी का रचियता ब्रह्म स्थित रहता हुआ हरे वर्ण वाली हरिणी में प्रविष्ट होता है ॥३ ॥ बारह 'प्रधि' और तीन 'नभ्य' हैं, उसमें तीन सौ आठ कीलें ठुकी हैं, इन्हें कौन जानता है ? ॥ ४ ॥ हे सविता देव ! यह छै ऋतु दो-दो मास की हैं और वर्ष एक है। इनमें जो ब्रह्म से उत्पन्न प्राणी हैं, उनमें से एक प्रकार के प्राणी उस ब्रह्म में ही लीन होने की कामना करते हैं ॥ ५ ॥ गुफा रूप देह में दमकता हुआ आत्मा निवास करता

है। जरत् नामक महत् पद में यह सचेष्ट और श्वासवान् विश्व स्थित है ॥६। एक चक्र और एक नेमि सहस्राक्षर के साथ गतिमान् है। उसके आधे भाग से विश्व उत्पन्न हुआ है। परन्तु इसका अन्य आधा भाग कहाँ है ? ॥ ७ ॥ अग्र को पञ्चवाही प्राप्त कराती है, प्रष्टियाँ अनुकूल संवहन करती हैं। इसका आना दिखाई देता, जाना दिखाई नहीं देता। यह पास से भी पास और दूर से भी दूर है ॥ ८ ॥ ऊपर की ओर जड़ और तिर्यग्बिल चमस में विश्व रूप आत्मा स्थिति है उसमें इस शरीर की रक्षा करने वाले सप्तर्षि एक साथ रहते हैं ॥९॥ जो पहिले, पीछे अथवा सब समय विनियुक्त होती है, जिससे यज्ञ को बढ़ाया जाता है, वह ऋचा कौन-सी है ? ॥ १० ॥

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत् ।
तद् दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत् संभूय भवत्येकमेव ॥ ११ ॥
अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य ॥ १२ ॥
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।
अर्धेन विश्वं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम् ।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः ॥ १४ ॥
दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद् यज्ञं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलि राष्ट्रभृतो भरन्ति ॥ १५ ॥
यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन ॥ १६ ॥
ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥ १७ ॥
सहस्राहण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ १८ ॥

सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति ।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिञ्ज्येष्ठमधि श्रितम् ॥ १९ ॥
यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वाञ्ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ २० ॥

जो सचेष्ट है, स्थित है, प्राण-क्रिया करता और नहीं भी करता, जो निमिषत् के समान है, उसी ने इस भूमि को धारण किया है। वह सब रूपों में होता हुआ, एक रूप को ही प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ वह अनन्त है, अन्त युक्त भी प्रतीत होता है, वह अनेक स्थानों में विस्तृत है, स्वर्ग सुख को पुष्ट करने वाला प्राणी उसे खोजता फिरता है। भूत, भविष्य भी उसी के कर्म हैं। वह सब को जानने वाला है ॥ १२ ॥ गर्भ में अदृश्य रहता हुआ प्रजापति विचरण करता और अनेक रूपों में उत्पन्न होता है, उसके आधे भाग से जगत उत्पन्न हुआ है और उसका आधा भाग कौन-सा है? ॥१३॥ कुम्भ द्वारा जल के समान ऊपर को उभरते हुए को सभी अपने चक्षु द्वारा देखते हैं, परन्तु वे मन के द्वारा नहीं जान पाते ॥ १४ ॥ अपने को पूर्ण मानने वाले से वह दूर रहता है और हीन मानने वाले से भी दूरी पर ही छिप जाता है। लोक में एक अत्यन्त पूजनीय व्यक्तित्व है, राष्ट्र का भरण करने वाले उसकी सेवा किया करते हैं ॥ १५ ॥ जिसके द्वारा सूर्य उदय और अस्त होता है, वही बड़ा है। उसका अतिक्रमण करने में कोई भी समर्थ नहीं है ॥ १६ ॥ इस पुरातन, विद्वान् और सब के ज्ञाता को जो मध्य में और पीछे कहते हैं, वे सूर्य के ही कहने वाले हैं। वे अग्नि और त्रिवृत् हंस का वर्णन भी इसी प्रकार करते हैं ॥ १७ ॥ पाप का नाश करने वाले इस हंस के पङ्ख स्वर्ग गमन के लिए सहस्र दिवस तक फैले रहते हैं, वह सब देवताओं को हृदय में स्थित करता हुआ सब लोकों में देखता जाता है ॥ १८ ॥ जिसमें वह महान् रमा हुआ है, वह सत्य से ऊपर तपता है और मन्त्र की शक्ति से नीचे देखता है तथा प्राण के बल से तिर्यग् गमन करता है ॥ १९ ॥ जो विद्वान् धन-मंथन करने वाली अरणियों का ज्ञाता है, वही उस महान् ब्रह्म का भी ज्ञाता है ॥ २० ॥

अपादग्रे समभवत् सो अग्रे स्वराभरत् ।

चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् ॥ २१ ॥
भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु ।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् ॥ २२ ॥
सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥ २३ ॥
शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्यं स्वमस्मिन् निविष्टम् ।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ॥ २४ ॥
बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते ।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥ २५ ॥
इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे ।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ॥ २६ ॥
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः ॥ २७ ॥
उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥ २८ ॥
पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥ २९ ॥
एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव ।
मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ॥ ३० ॥

प्रथम पाँव रहित हुआ वह स्वर्ग का पोषण करता और फिर चार पैर वाला होकर भोगने में समर्थ होता हुआ, सब भोजन प्राप्त कर लेता है ॥२१॥ जो उन सनातनदेव की आराधना करता है, वह भोगने में समर्थ होता हुआ, बहुत-सा अन्न दान करता है ॥ २२ ॥ यह सनातन कहे जाते हैं फिर नवीन होते हैं। इन्हीं सूर्य से दिन रात उत्पन्न होते हैं ॥ २३ ॥ सैकड़ों हजारों अयुत अर्बुद और दिन इनमें ही लीन रहते हैं, यह उसका साक्षिरूप ही रहता

है। उनमें लिप्त न होने से यह देव तेजस्वी रहता है ॥ २४ ॥ यह आत्मा प्रमुख होते हुए भी दिखाई नहीं देता क्योंकि यह बाल से भी सूक्ष्म है । जो आत्मा उससे मिलता है वह मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥ २५ ॥ आत्मदेव के लिए प्रस्तुत रहने वाली आत्मा कल्याणमयी और जरा रहित है। जो ब्रह्म मर्त्यलोक में अमृत के समान है, उसका उपासक भी पूजनीय हो जाता है ॥ २६ ॥ हे आत्मा, तू ही कुमारी, तू ही स्त्री और तू ही पुरुष है। तू जीर्ण होकर प्राण से वियुक्त करता और प्रकट होकर विश्वतोमुख होता है ॥ २७ ॥ तू ही इन जीवों का पिता, पुत्र, ज्येष्ठ और कनिष्ठ है। वही एक देवता मन में है। वही गर्भ में स्थित है और वही पहले उत्पन्न हुआ है ॥ २८ ॥ पूर्ण से ही पूर्ण को सींचते हैं, पूर्ण से ही पूर्ण उदंचित होता है। जहाँ वह सींचा जाता है, उसे हम जान गये हैं ॥२९॥ यह तप द्वारा अनुकूल, सब को व्याप्त करके स्थित पृथ्वी, उषा से चमकती हुई सचेष्ट जीवों द्वारा देखी जाती है ॥ ३० ॥

अविर्वै नाम देवत ऋतेस्ते परीवृता ।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥ ३१ ॥
अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥ ३२ ॥
अपूर्वेणेपिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् ।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥ ३३ ॥
यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः ।
अपां त्वां पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ॥ ३४ ॥
येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीचीः ।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥ ३५ ॥
इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव ।
दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥ ३६ ॥

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३७ ॥
वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३८ ॥
यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः ।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥ ३९ ॥
अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन् ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ॥ ४० ॥
उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे ।
साम्ना ये साम संविदुरजस्तद् ददृशे क्व ॥ ४१ ॥
निवेशनः संगमनो वसूनां देवइव सविता सत्यधर्मा ।
इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥ ४२ ॥
पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ४३ ॥
अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥ ४० ॥

उस ऋतु से अवि नामक देव ढके हुए हैं। उसी के रूप से यह वृक्ष हरे रंग के दिखाई देते हैं ॥ ३१ ॥ यह समीप आये को नहीं छोड़ता, यह समीपवर्ती को नहीं देखता। उस देव की ही यह कार्य कुशलता है कि न यह मृत्यु को प्राप्त होता है और न कभी जीर्ण होता है ॥ ३२ ॥ अभूतपूर्व से प्रेरित वाणियाँ सत्यासत्य का वर्णन करती हैं, वह उच्चारण की जाती हुई जहाँ लीन होती हैं, वही महद्ब्रह्म कहलाते हैं ॥३३ ॥ नाभि में अर्पित अरों के समान जिसमें देवगण अर्पित हैं, उसी नारायण को पूछता हूँ। वह अपनी माया द्वारा कहाँ स्थित है ? ॥ ३४ ॥ वायु जिनकी प्रेरणा से बहता है, जो पाँच प्राची प्रदान करते हैं, जो आहुति को श्रेष्ठ मानते हैं, वह जल के नेता

कहाँ स्थित हैं ? ॥ ३५ ॥ वही एक इस पृथिवी को आच्छादित करता, वही अन्तरिक्ष के सब ओर स्थित और वही इन जीवों को स्वर्ग प्रदान करता है। सब दिशाओं की दिक्पाल रक्षा करते हैं ॥ ३६ ॥ जिसमें यह प्रजाऐं स्थित हैं, उस विस्तृत सूत्र और कारण के भी कारण को जो जानता है, वही उस महद्ब्रह्म का ज्ञाता हो सकता है ॥ ३७ ॥ यह प्रजाएँ जिसमें स्थित हैं, उस विस्तृत सूत्र का मैं ज्ञाता हूँ। उसके कारण को भी जानता हूँ। वही महद्ब्रह्म है ॥ ३८ ॥ संसार को भस्म करने की सामर्थ्य वाला अग्नि आकाश पृथिवी के मध्य आता है, जहाँ गोपणकर्त्री देवियाँ रहती हैं। उस समय मातरिश्वा किस स्थान पर था ? ॥ ३९ ॥ मातरिश्वा जल में था, सब देवता सलिल में स्थित थे, पृथिवी का रचियता ब्रह्म निश्चल रूप से स्थित था। उसी पाप का नाश करने वाले ने वायु रूप से जल में प्रवेश किया था ॥ ४० ॥ उत्तर से गायत्री में प्रविष्ट हुए, जो साम द्वारा साम के जानने वाले हैं, वह 'अज' कहाँ दिखाई देता है ॥ ४१ ॥ सविता देवताओं में भी दिव्य हैं, वह सत्य धर्म वाले हैं, पुण्यात्मा उन्हीं में प्रविष्ट होते हैं, वही उन्हें स्वर्ग में वास देते हैं। इन्द्र धन में स्थित नहीं रहते ॥ ४२ ॥ नौ द्वार युक्त पुण्डरीक त्रिगुणात्मक है। उसमें स्थित पूज्यनीय आत्मा के स्थान को ब्रह्मज्ञानी जानते है ॥ ४३ ॥ कामना से रहित, धैर्यवान्, स्वयंभू ब्रह्म अपने ही रस से स्वयं तृप्त रहते हैं, वह किसी भी विषय में असमर्थ नहीं हैं, उस सतत युवा आत्मा के ज्ञाता को मृत्यु से भय नहीं लगता ॥ ४४ ॥

६—सूक्त (पाँचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—शतौदना। छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप, पंङ्क्ति; जगती, शक्करी)

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम्।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ॥ १ ॥
वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते।
एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु ॥ २ ॥

बालास्ते प्रोक्षणी: सन्तु जिह्वा सं माष्ट्वर्घ्न्ये ।
शुद्धा त्व यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥
य: शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्य ऋत्विज: सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥
स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिव: ।
अपूपनाभि कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥
स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवा: ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनम् ॥ ६ ॥
ये ते देवि शमितार: पक्तारो च ते जना: ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषी: शतौदने ॥ ७ ॥
वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा ।
आदित्या: पश्चाद् गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ॥ ८ ॥
देवा: पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरश्च ये ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥ ९ ॥
अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिश: ।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥ १० ॥

यह शत्रु का नाश करने वाली, यजमान को स्वर्ग प्राप्त कराने वाली धेनु इन्द्र प्रदत्त है। हिंसा-रूप पाप करने वाले शत्रुओं के मुख को बन्द करती हुई यह धेनु उसमें वज्र-प्रेरणा करे ॥१॥ तेरे लोम कुशारूपी हों, चर्मवेदी रूप हो। तू इस रस्सी द्वारा पकड़ी हुई है, ग्रावा तेरे ऊपर नृत्य करे ॥ २ ॥ हे अघ्न्ये! तेरी जिह्वा मार्जन करे। हे अज! तेरे बाल प्रोक्षणी हों। हे शतौदने! तू शुद्ध यज्ञीय होता हुआ स्वर्ग को गमन करेगा ॥ ३ ॥ शतौदना को प्रस्तुत करने वाला, इच्छा पूर्ति में समर्थ होता है और उससे प्रसन्न हुए ऋत्विज चले जाते हैं ॥ ४ ॥ शतौदना को अपूप नाभि करके देने वाला अन्तरिक्षस्थ स्वर्ग को गमन करता है ॥ ५ ॥ स्वर्ण से अलंकृत कर गौ को देने

वाला, दिव्य और पार्थिव लोकों को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ हे देवि ! तेरा रखने और शमन करने वाले, तेरे रक्षक होंगे, तू इनसे भयभीत न हो ॥७ ॥ दक्षिण की ओर से वसु और उत्तर की ओर से मरुत तेरी रक्षा करेंगे। पीछे से सूर्य तेरे रक्षक होंगे। इसलिए तू अग्निष्टोम की ओर गमन कर ॥ ८ ॥ मनुष्य, पितर, देवगण, गन्धर्व और अप्सराएं तेरी रक्षा करेंगे, तू अतिरात्र की ओर गमन कर ॥ ६ ॥ शतौदना का दान करने वाला, अन्तरिक्ष, द्युलोक, पृथिवी, मरुद्गण और दिशा इन सब के लोकों को प्राप्त करता है ॥ १० ॥

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि ।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२ ॥
यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १३ ॥
यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १४ ॥
यस्ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १५ ॥
यत् ते यकृद् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्चते गुदाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १६ ॥
यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १७ ॥
यस्ते मज्जः यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १८ ॥
यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १६ ॥

यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः ।
आमिक्षां दुह्नतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २० ॥

हे शतौदने ! तू घृत का प्रोक्षण करती हुई देवगण को प्राप्त होगी । तू यज्ञ की हिंसा न करती हुई स्वर्ग को गमन करेगी ॥ ११ ॥ पृथिवी, स्वर्ग और अन्तरिक्ष में वास करने वाले देवताओं के लिए तू दूध, घृत और मधु का सदा दोहन करती रह ॥ १२ ॥ तेरा शिर, मुख, कान, ठोड़ी दाता के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ १३ ॥ तेरे ओष्ठ, नासिका, सींग और चक्षु दानदाता याजमान के लिए अमिक्षा, दूध, घृत और शहद का दोहन करें ॥ १४ ॥ तेरा क्लोम पुरीतत् हृदय और कण्ठनाड़ी दान देने वाले के लिए अमिक्षा, दूध. घृत और मधु का दोहन करें ॥ १५ ॥ तेरा यकृत, अन्तड़ियाँ और गुदा की नसें दाता के निमित्त आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ १६ ॥ तेरा प्लाशि, वनिष्ठु कुक्षियाँ और चर्म दाता के निमित्त आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ १७ ॥ तेरी मज्जा, हड्डी, मांस और रक्त का दान करने वाले के लिए आमिक्षा,दूध,घृत और मधु का दोहन करें ॥ १८ ॥ तेरी भुजा, अंस और ककुद् दान देने वाले के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ १९ ॥ तेरी ग्रीवा, कंधे, पृष्टि, पसलियाँ दाता के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ २० ॥

यौ त उरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत् ।
आमिक्षां दुह्नतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २१ ॥
यत् ते पुच्छं ये ते वाला यदूधो ये च ते स्तनाः ।
आमिक्षां दुह्नतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २२ ॥
यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः ।
आमिक्षां दुह्नतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २३ ॥
यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये ।
आमिक्षां दुह्नतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४ ॥
क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ ।

तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तरं दि वह ॥ २५ ॥
उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।
यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ।२६।
अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुनो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम
पतयो रयीणाम् ॥ २७ ॥

तेरे उरु, अष्टीवान् श्रोणी और कटि दान करने वाले के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु देने वाले हों ॥ २१ ॥ तेरी पूंछ, गाल, ऐन और थन दानी के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु देने वाले हों ॥ २२ ॥ तेरी जांघें, कुष्ठिका, सुम और ऋच्छर दान देने वाले के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु देने वाले हों ॥ २३ ॥ हे शतौदने ! तेरा चर्म और तेरे लोम दानी के निमित्त आमिक्षा, दूध, घृत और मधु देने वाले हों ॥ २४ ॥ हे देवि, तेरे क्रोड़ घृत से युक्त पुरोडाश हों। तू उन्हें पङ्ख बनाकर पका के साथ स्वर्ग को प्राप्त कर ॥ २५ ॥ जो धान्य-कण उलूखल, मूसल, चर्म, छाज में रहा है और मातरिश्वा ने जिसका मंथन कर शुद्ध किया है, उसे होतागण अग्नि में सुहुत करें ॥ २६ ॥ घृत के समान सार को देने वाली मधुमयी जलदेवियों को ब्राह्मणों के हाथों में पृथक्-पृथक् देता हूं। हे ब्राह्मणो ! जिस अभीष्ट के निमित्त मैं तुम्हें सींचता हूं वह सब धन से सम्पन्न हों ॥ २७ ॥

सूक्त १०

(ऋषि—कश्यपः । देवता—वशा । छन्द-अनुष्टुप; बृहती; पंङ्क्तिः गायत्री)

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः ।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥ १ ॥
यो विद्यात् सप्त प्रवतः सप्त विद्यात् परावतः ।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥ २ ॥
वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः ।

शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥ ३ ॥
यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः ।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥ ४ ॥
शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥ ५ ॥
यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।
वशा पर्जन्यपत्नी देवां अप्येति ब्रह्मणा ॥ ६ ॥
अनु त्वग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा ।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥ ७ ।
अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे ।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥ ८ ॥
यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद् वशे । ९ ॥
यदनूचीन्द्रमैरात् त्व ऋषभोऽह्वयत् ।
तस्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद् वशे ॥ १० ॥

हे अघ्न्ये ! तुझ उत्पन्न होने वाली को नमस्कार, तेरे बालों और खुरों के लिए नमस्कार ॥ १ ॥ जो वशा गौ की सात वस्तुओं तथा वशा से दूर रखने वाली सात वस्तुओं को जानता है और जो यज्ञ के शीर्ष का ज्ञाता है, वह वशा को ग्रहण करने में समर्थ है ॥ २ ॥ मैं सात प्रवर्तों, सात परावर्तों यज्ञ के शीर्ष और उसमें निहित सोम को भी जानता हूँ ॥ ३ ॥ आकाश, पृथ्वी और यह जल जिस वशा द्वारा रक्षित हैं, उस सहस्रधार वाली वशा से हम सामने होकर मन्त्र द्वारा वार्तालाप करते हैं ॥ ४ ॥ इसकी पीठ में दूध, पीने के सौ पात्र और सौ दुग्धा हैं । इसमें प्राणन करने वाले विद्वान् वशा को एक प्रकार से जानते हैं । ५ ॥ यज्ञपदी, इरा, क्षीरा, स्वधाप्राणा तथा पर्जन्य की पत्नी रूप वशा मन्त्र-शक्ति से देवताओं को संतुष्ट करती हैं ॥ ६ ॥

हे वशे ! तुझमें सोम और अग्नि ने प्रवेश किया है। पर्जन्य तेरा ऐन और विद्युत रूप तेरे स्तन हैं ॥ ७ ॥ हे वशे ! तू जल प्रदायिनी है, उर्वर वस्तुओं को भी देती है, तृतीय राष्ट्र को देती हुई अन्न, दुग्धादि प्रदान करती है ॥ ८ ॥ तू आदित्यों द्वारा बुलाई जाने पर उनके पास गई थी, तब तुझे इन्द्र ने सहस्र पात्रों से सोम पिलाया था ॥ ९ ॥ जब तू इन्द्र के समीप थी तब ऋषभ ने तेरा आह्वान किया था और वृत्रहा ने रुष्ट होकर तेरे दूध को हर लिया था ॥ १० ॥

यत् ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद् वशे ।
इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्य हरद् वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १२ ॥

सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥ १३ ॥

सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः ।
वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥ १४ ॥

सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा ।
वशां समुद्रमत्यख्यद् भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥ १५ ॥

अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि ।
अश्वः समुद्रो भूत्वाऽध्यस्कन्दद् वशे त्वा ॥ १६ ॥

तद् भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १७ ॥

वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव ।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥ १८ ॥

ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि ।

ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥ १९ ॥
आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे ।
पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥ २० ॥

रुष्ट धनपति ने तेरे जिस दुग्ध को हर लिया था, उसे तीन पात्रों में रख स्वर्ग रक्षा कर रहा हैं ॥ ११ ॥ देवी वशा ने उस सोम को तीन पात्रों में भरा, वहाँ सुन्दर कुशा पर अथर्वा विराजमान हुए ॥ १२ ॥ सोम और सब पादयुक्तों के साथ सुसंगत हुई वशा कलि और गन्धर्वों सहित जल पर प्रतिष्ठित है ॥ १३ ॥ वह वशा वायु और सब पादयुक्तों के साथ सुसंगत होती हुई ऋचा और सामों को धारण करती हुई समुद्र में नृत्य करती है ॥ १४ ॥ सूर्य तथा सब के नेत्रों से सुसंगत हुई, ज्योतियों को धारण करने वाली वशा ने सिंधु से भी अधिक प्रशस्ति को प्राप्त किया ॥ १५ ॥ हे वशे ! तू सुवर्ण से विभूषित हुई खड़ी थी तब द्रुतगामी समुद्र अधिस्कन्दित हो गये थे ॥ १६ ॥ जहाँ दीक्षित अथर्वा कुशाओं पर बैठते हैं वहाँ वशा दंष्ट्री और स्वधा मङ्गल करने वाली हो जाती हैं ॥१७॥ हे स्वधे ! वशा क्षत्रिय की उत्पन्न करने वाली है वैसे ही तेरी भी रचने वाली है । वशा का शस्त्र यज्ञ है फिर चित्त उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥ हे वशे ! ब्रह्म के ककुद् से उभरने वाले एक बिन्दु से तू उत्पन्न हुई और फिर होता उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ हे वशे ! गाथाऐं तेरे मुख से निकलीं, उष्णिहा नाड़ियों से बल उत्पन्न हुआ, बल से यज्ञ हुआ और तेरे स्तनों से किरणें उत्पन्न हुईं ॥ २० ॥

ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव ।
आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥ २१ ॥
यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।
ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव ॥ २२ ॥
सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्त्राः ।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यास्या बन्धुः ॥ २३ ॥

युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद् वशी ।
तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षु रभवद् वशा ॥ २४ ॥

वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशा सूर्यमधारयत् ।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥ २५ ॥
वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।
वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या असुराः पितर ऋषयः ॥ २६ ॥

य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ।
यथा हि यज्ञः सर्वपाद् दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥ २७ ॥

तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि ।
तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥ २८ ॥

चतुर्धा रेतो अभवद् वशायाः ।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥ २९ ॥

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥ ३० ॥

वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥ ३१ ॥

सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते ।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥ ३३ ॥

वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।
वशेदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपश्यति ॥ ३४ ॥

हे वशे ! तेरे अणों और सक्थियों से मथन हुआ, आंतों में अन्न और

उदर से लताऐं उत्पन्न हुईं ॥ २१ ॥ हे वशे ! तू वरुण के उदर में घुस गई थी, वहाँ से ब्रह्मा ने तुझे निकाला, वही तेरे नेत्र को जानने वाला हुआ ॥२२॥ जो प्राणी उत्पन्न होते हैं, वे सभी गर्भ से भयभीत होते हैं। यह वशा ही उन्हें जन्म देती है और मन्त्रों से समर्थ होने वाला कर्म ही इसका भ्राता है ॥ २३ ॥ एक मात्र युध ही रचने वाला है, वही इसका वधी है। तरस् यज्ञ है और यज्ञ वालों का चक्षु वशा है ॥ २४ ॥ यज्ञ का प्रतिग्रहण वशा करती है, वही सूर्य को यथास्थान रखती है, ब्रह्मा सहित ओदन भी वशा में निहित है ॥ २५ ॥ वशा ही अमृत कहलाती है, मृत्यु रूप से भी वह उपास्य है। देवता, पितर, ऋषि और मनुष्य सभी वशा से युक्त थे ॥ २६ ॥ इस प्रकार जानने वाला वशा का प्रतिग्रहण करने वाला है। सब पादों से सम्पूर्ण यज्ञ दाता को उसके कर्म का फल देने में कभी आनाकानी नहीं करता ॥ २७ ॥ वरुण के मुख में तीन जिव्हाऐं चमकती हैं। उनमें जो बीच की जिव्हा सुशोभित है, वही वशा है ॥ २८ ॥ वशा का रज चार भागों में विभक्त है—एक भाग जल, एक भाग अमृत, एक भाग पशु और एक भाग यज्ञ है ॥ २९ ॥ वशा ही द्यौ और पृथिवी है, वशा ही विष्णु और प्रजापति है। साध्य और वसु वशा का ही दुग्ध पान करते हैं ॥ ३० ॥ वशा के दूध को पीने वाले साध्य और वसु सूर्य मण्डल में स्थित देव के आकाश में दुग्ध की ही आराधना करते हैं ॥ ३१ ॥ एक सोम का दोहन करते, दूसरे घृत प्राप्त करते हैं, ऐसा जानने वाले को जिन्होंने वशा दी, वे स्वर्ग में पहुँच गये ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणों को वशा देने वाला सब लोकों के भोगों को भोगता है। सत्य ब्रह्म और तप इस वशा के आश्रित हैं ॥ ३३ ॥ वशा के द्वारा देवगण जीविका देते तथा मनुष्य भी उसके द्वारा जीविका दे सकते हैं। यह सब संसार, जहाँ तक सूर्य देख सकता है, वह सब स्थान वशा रूप ही हैं ॥ ३४ ॥

॥ दशम काण्डं समाप्तम् ॥

एकादश काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि ब्रह्मा। देवता—ब्रह्मौदन। छन्द पंक्ति; त्रिष्टुप; जगती; उष्णिक्; गायत्री)

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥ १ ॥
कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥ २ ॥
अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ३ ॥
समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः।
तेभ्यो हविः श्रपयञ्जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥
त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितृणां मर्त्यानाम्।
अंशाञ्जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥५॥
अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान्।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ॥६ ॥
साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥ ७ ॥
इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ८ ॥

एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु ।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ॥९॥
गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥१०॥

यह देवमाता अदिति पुत्र की कामना करती हुई ब्रह्मौदन करना चाहती है। हे अग्ने! तुम मंथन से उत्पन्न होओ। मरीचि आदि सप्तर्षि भूतों के उत्पन्न करने वाले हैं, वे इस देव यज्ञ में यजमान के पुत्र पौत्रादि सहित मंथन द्वारा प्रकट करें ॥१॥ हे सप्तर्षियो! तुम संसार के मित्र रूप एवं अभीष्ट वर्षक हो। मंथन के द्वारा धूम को पुष्ट करो। यह अग्नि यजमानों के रक्षक हैं। यह ऋचा रूप स्तुतियों से शत्रु-सेना को वश करते हैं। देवताओं ने अपने क्षय करने वाले शत्रु असुरों को इन्हीं के द्वारा वश किया था ॥२॥ हे अग्ने! तुम उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता हो। तुम मंथन द्वारा प्रकट होते हो। तुम दाह-पाक में समर्थ हो। मुझे अत्यन्त वीर्य प्रदान करने के लिए मन्त्र शक्ति से प्रदीप्त होते हो। तुम्हें सप्तर्षियों ने ब्रह्मौदन के निमित्त प्रकट किया है। इस लिए तुम इस पत्नी को पुत्र पौत्रादि धन प्रदान करो ॥३॥ हे अग्ने! तुम समिधाओं से दीप्त होकर यज्ञ योग्य देवताओं को यहाँ लाओ। उन देवताओं के लिये हवि पकाओ और इस यजमान के देहावसान पर इसे स्वर्ग में स्थित करो ॥४॥ हे देवताओ! अग्नि आदि, पिता, पितामह, प्रपितामह आदि तथा ब्राह्मणादि को जो भाग, तीन भागों में बाँट कर रखा था, उसे अपने अपने अंश को जान लो। इनमें देव-भाग अग्नि में जाकर यजमान की इस पत्नी को अभीष्ट फल देने वाला हो ॥५॥ हे अग्ने! तुम शत्रुओं को वश करने वाले बल से युक्त हो। तुम हमारे शत्रुओं को नीचे गिराओ। हे यजमान! यह शाला द्रव्य की भेंट लेने वाले पुत्रादि को मुझे प्राप्त करावे ॥६॥ हे यजमान तू वृद्धि को प्राप्त हो। इस को अधिक पराक्रम के लिये उन्नति कर और देहावसान के पश्चात् उन्नत स्वर्ग में आरोहण कर ॥७॥ सम्मुख वर्तमान यज्ञभूमि चर्म को स्वीकृत करे। यह पृथिवी अजिन के फैलने पर हम पर कृपा करने वाली हो। इसकी कृपा को

प्राप्त कर हम यज्ञ आदि से उत्पन्न पुण्यफल के कारणरूप लोक को प्राप्त करें ॥८॥ हे ऋत्विक् ! तुम इन उलूखल, मूसल को इस फैले हुए अजिन में स्थापित करो और यजमान के लिए धानों को सुन्दर बनाओ। हे पत्नि ! हमारी प्रजा को नष्ट करने वाले शत्रुओं को रोक और अवहनन के पश्चात् मूसल को उठाती हुई हमारी संतान को श्रेष्ठ पद प्राप्त करो ॥ ९ ॥ हे अध्वर्यो ! तुम उत्तम कर्म वाले हाथों में ओखली-मूसल को ग्रहण करो। देवता तुम्हारे यज्ञ में आगए हैं। हे यजमान ! तू जिन तीन वरों की याचना करना चाहता है उन कर्म की समृद्धि, फल की समृद्धि और परलोक ी समृद्धि इन तीनों को इस यज्ञ द्वारा सिद्ध करता हूँ ॥ १० ॥

इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ११ ॥
उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ १२ ॥
परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय।
तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥१३॥
एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ॥१४॥
ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ॥१५॥
अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम्।
आर्षेया दैवा अभिसङ्गत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥१६॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः।
अदुः प्रजां बहुलां पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥ १७ ॥
ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ॥१८॥

उरुःप्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥ १९ ॥
सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव ॥२०॥

हे सूप ! चावलों से तुषों को फटकना ही तेरा कार्य है । तुझे मित्रा-वरुण, धाता आदि की माता अदिति पराग्वत के हाथ में ले । इस स्त्री की हत्या के निमित्त जो शत्रु सैन्य संग्रह करना चाहते हैं, उन्हें पतित करने के लिए धानों को भुसी से अलग कर और इस पत्नी को पुत्र-पौत्रादि युक्त धन प्रदान कर ॥ ११ ॥ हे चावलो ! तुम्हें सत्य फल रूप कर्म के निमित्त प्रभुन करता हूँ । तुम सूप में बैठकर तुषों से पृथक् हो जाओ । तुम से प्राप्त हुई लक्ष्मी द्वारा हम भी अपने शत्रुओं के पार हों और उन्हें पाँवों से रौंद डालें ॥ १६ ॥ हे स्त्री ! तू जलाशय से जल लेकर शीघ्र लौट आ । जिसमें गौऐं जल पीती हैं, वह गोष्ठ भरण करने के लिए तेरे सिर पर चढ़े । उन जलों में से यज्ञ-योग्य जलों को ग्रहण करती हुई अयज्ञिय जलों को मत लेना ॥ १३ ॥ हे अलङ्कारों से सुसज्जित पत्नी ! यह जल लाने वाली स्त्रियाँ आगई हैं, तू आसन से उठकर इन्हें ग्रहण कर । तू सुन्दर पति वाली पुत्र, पौत्रादि से युक्त सौभाग्यवती हो । तू जल के कलश को ग्रहण कर । यह यज्ञ तुझे जल रूप से प्राप्त हो ॥ १४ ॥ हे जलो ! ब्रह्मा ने जो सारभूत भाग की तुममें कल्पना की थी, वही यहाँ लाया जायगा । हे भार्ये ! तू इन जलों को चर्म पर स्थापित कर । यह ब्रह्मौदन यज्ञ-मार्ग को प्राप्त कराने, बल देने और पुत्र-पौत्र, गवादि पशुओं को प्रदान कराने वाला है । हे यजमान की पत्नी आदि, यह यज्ञ तुम्हें इन्हीं फलों का देने वाला हो ॥ १५ ॥ हे अग्ने ! हवि पकाने के लिए तुम पर चरुस्थाली चढ़े और तुम अपने तेज से इसे तपाओ । गोत्र-प्रवर्तक ऋषियों के ज्ञाता आर्षेय ब्राह्मण तथा इन्द्रादि से सम्बन्धित देवता अपने-अपने भाग को पाकर इसे तपायें ॥१६॥ यह यज्ञ के योग्य निर्मल चरुस्थाली में प्रविष्ट हों । यह जल हमको पुत्रादि तथा पशुओं को देने वाले हों । ब्रह्मौदन पकाने वाला यजमान सुख के स्थान स्वर्ग को प्राप्त हो ॥ १७॥

मन्त्र से शुद्ध और घृत से पक कर दोष रहित होने वाले यह चावल सोम के अंश रूप हैं। हे चावलो ! तुम यज्ञ के योग्य हो अतः चरुस्थाली में रखे हुए जलों में प्रविष्ट होओ। इस ब्रह्मौदन को पकाने वाला यजमान पुण्य लोक को प्राप्त हो ॥ १८ ॥ हे ओदन ! तू सहस्रों अवयवों वाला हो। तेरे द्वारा पिता, पितामह आदि सात पुरुष तृप्ति को प्राप्त करते हैं। पुत्र-पुत्री तथा उनकी भी संतान सात पीढ़ी तक तुझसे ही तृप्ति पाते हैं। इनके अतिरिक्त पकाने वाला मैं भी तृप्ति को प्राप्त करूँ ॥ १९ ॥ हे यजमान ! तेरा यज्ञ सहस्रों पृष्ठ वाला तथा सैकड़ों धारों से युक्त है। यह कभी क्षय को प्राप्त नहीं होता। कर्म करने वाले जिसके द्वारा इन्द्रादि देवताओं को प्राप्त होते हैं। हे यज्ञ ! मैं इन सजातीयों को तेरे निमित्त उपस्थित करता हूँ। तू इन्हें पुत्र-पौत्रादि से युक्त करता हुआ, मुझे सुख देने वाला हो ॥ २० ॥

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैना नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ २१ ॥
अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ॥२२॥
ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
असद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥ २३ ॥
अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन् ।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु ॥ २४ ॥
शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्रसीद ।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥२५॥
सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥ २६ ॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥२७॥

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा ।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ २८ ॥
अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकां अप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥२९॥
श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गं मधि रोहयैनम् ।
येन रोहात् परमापद्य तद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ॥ ३० ॥

हे पके हुए ओदन ! तू वेदी में हवि रूप से स्थित होने को आ और इस पत्नी को मंतानादि से समृद्ध कर। यज्ञ-हिंसक असुर को यहाँ से भगा। हम समान पुरुषों से अधिक सम्पत्ति वाले हों। मैं वैरियों को औंधे मुख डालता हूँ ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मौदन ! तू यजमान आदि के सामने पशुवान होकर पूज्य देवताओं के सहित आ। हे यजमान दम्पत्ति ! तुम्हें अन्यों का आक्रोश प्राप्त न हो। अन्य द्वारा प्रेरित मारण-कर्म तेरे पास न आवे। तुम रोग-रहित रहते हुए ऐश्वर्य को भोगने वाले होओ ॥ २२ ॥ ब्रह्मा ने इस वेदी की रचना की। हिरण्यगर्भ ने इसे स्थापित किया। ऋषियों ने ब्रह्मौदन के लिए इस वेदी की कल्पना की थी। हे स्त्री ! तू देवता, पितर और मनुष्यों को आश्रय देने वाली इस वेदी के पास आ और उस पर ओदन को रख ॥ २३ ॥ देवमाता अदिति के द्वितीय हाथ रूप स्रुवे को सप्त ऋषियों ने बनाया। यह स्रुवा दर्वी ओदन के पके हुऐ शरीरों को जानती हुई वेदी पर ब्रह्मौदन को चढ़ावे ॥ २४ ॥ हे ओदन ! तेरे समीप पूज्य देवता आवें। तू अग्नि से निकल कर उन्हें प्राप्त हो। दूध, दही आदि सोम रस से शुद्धि को प्राप्त हुआ तू इन ब्राह्मणों के पेट में जा। यह अपने-अपने गोत्र प्रवर के ज्ञाता भोजन करके हिंसा को प्राप्त न हों ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मौदन ! तू सोम से संबंधित है। इन ब्राह्मणों को मोह में मत डाल, इन्हें ज्ञान दे। जो ब्राह्मण तेरे समीप स्थित हैं, उन ऋषियों को मैं तपोत्पन्न सुन्दर आह्वान वाली पत्नी ब्रह्मौदन के निमित्त आहूत करती हूँ ॥ २६ ॥ मैं यज्ञ के उपयुक्त, निर्मल, पवित्र करने वाले, पाप-रहित जलों को ब्राह्मणों के हाथ पर डालता हूँ। हे जलो ! मैं जिस अभीष्ट

के लिए तुम्हें अभिसिंचित करता हूँ। मेरे उस अभीष्ट को मरुतों सहित इन्द्र पूरा करें ॥ २७ ॥ यह शुद्ध ओदनधान जो आदि युक्त क्षेत्र से प्राप्त कामधेनु है और यह स्वर्ण मेरे स्वर्ग पथ में कभी न बुझने वाला दीपक है। मैं इस धन को दक्षिणा रूप में ब्राह्मणों को दे रहा हूँ, यह स्वर्ग में करोड़ गुणा हो। पितरों का जो इच्छित स्वर्ग है, इसके द्वारा मैं उसका मार्ग बनाता हूँ ॥ २८ ॥ हे ऋत्विक्! ब्रह्मौदन के चावलों से अलग किये तुषों को अग्नि में डालो और फलीकरणों को पैर से पृथक् करो। यह फलीकरण वासुनाग का भाग कहा जाता है तथा यह पाप देवता निर्ऋति का भी भाग रूप है ॥२९॥ हे ब्रह्मौदन! तुम तप करने वाले, ब्रह्मौदन पाक वाले, सर्व यज्ञ रूप सोमाभिषव वाले यजमानों को जान कर स्वर्ग के मार्ग पर चढ़ाओ। यह श्येन पक्षी के समान जैसे भी स्वर्ग पर पहुँच सकें, वैसा ही कार्य करो ॥ ३० ॥

बभ्रे रध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान्।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ ३१ ॥
बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान्।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥ ३२ ॥
आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥ ३३ ॥
यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम्।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥ ३४ ॥
वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥ ३५ ॥
समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान्।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥ ३६ ॥
येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥ ३७ ॥

हे ऋत्विक् ! इस ओदन के मुख को शुद्ध करो, फिर ओदन के मध्य में घृत के लिए गड्ढा बनाओ और सब अवयवों को घृत से सींचो। जो मार्ग स्वर्ग में पितरों के समीप जाता है, उसी को ओदन के द्वारा बनाता हूँ ॥३१॥ हे ब्रह्मौदन ! ब्राह्मण के अतिरिक्त, प्राशन हेतु जो क्षत्रिय तेरे पास बैठें, उन्हें युद्ध-कलह प्रदान कर। जो गोत्र प्रवर आदि के ज्ञाता ऋषि बैठें, वे पशु आदि से सम्पन्न हों। ये प्राशन करने वाले ब्राह्मण नाश को प्राप्त न हों ॥ ३२ ॥ हे ओदन ! मैं तुझे आर्षेय ब्राह्मणों में स्थित करता हूँ। इस ब्रह्मौदन में अनार्षेयों की संभावना नहीं है। अग्नि, मरुद्गण, मित्रावरुण अर्यमा आदि सब देवता सब ओर से इस ब्रह्मौदन की रक्षा करने वाले हों ॥ ३३ ॥ यह ब्रह्मौदन यज्ञों का उत्पन्न करने वाला, प्रवृद्धोपस्क, धनों का घर और पुत्र रूप है। हे ब्रह्मौदन ! हम तेरे द्वारा पुत्र, पौत्रादि धन-पुष्टि और दीर्घ आयु को प्राप्त करने वाले हों । ३४ ॥ हे काम्य वर्षक ब्रह्मौदन ! तू स्वर्ग-प्राप्त कराने वाला है अतः आर्षेय ब्राह्मणों को मेरे द्वारा प्राप्त हो और फिर पुण्यात्माओं के फलभूत स्वर्ग में जा। वहाँ हमारा तेरा संस्कार पूर्ण होगा ॥ ३५ ॥ हे ओदन ! तू समाचयन करता हुआ गन्धर्वों को प्राप्त हो। हे अग्ने ! इस ओदन के गमन के लिए देवमार्ग पर जाने वाले यानों को बनाओ और हम भी इन मार्गों से ही स्वर्ग में स्थित यज्ञ के अनुगामी हों ॥ ३६ ॥ ब्रह्मौदन कर्म द्वारा ही इन्द्रादि देवता देवयान मार्ग से स्वर्ग को गए। इस लिए जिसका नाम देवयान मार्ग हुआ, हम भी अपने पुण्यकर्म द्वारा उसी मार्ग से उसी लोक को प्राप्त हों। हम पहले स्वर्ग में चढ़ें और फिर नाकपृष्ठ नामक स्थान में स्थित हों ॥ ३७ ॥

२ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-भवादयो मन्त्रोक्ताः। छन्द-जगती; उष्णिक्; अनुष्टुप्; बृहती; गायत्री; त्रिष्टुप्; शक्वरी)

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥१

शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः। मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥ २ ॥
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३ ॥
पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५ ॥
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६ ॥
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥
स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आपइवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥ ८ ॥
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥ ९ ॥
तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम्।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥ १० ॥

हे भव, शर्व देवताओ! तुम हमको सुख दो। रक्षा के लिए मेरे सामने चलो। हे भूतेश्वरो! तुम गवादि पशुओं के पालक हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। इससे प्रसन्न हुए तुम मेरी ओर अपने बाण को मत छोड़ो और हमारे दुपाये, चौपायों का भी संहार मत करो ॥१॥ हे भव, शर्व! हमारे देहों को मांस भक्षी गिद्धों, कुत्तों, गीदड़ों के लिए मत करो। तुम्हारी जो मक्षिकाएं और पक्षी हैं, वे खाद्यान्न के रूप मुझे प्राप्त न करें ॥२॥ हे भव! तुम्हारे प्राण वायु और क्रन्दन शब्द को हमारा नमस्कार है। तुम्हारे माया-

मय शरीरों को नमस्कार है। हे संसार के साक्षिदेव ! तुम अमरणधर्म वाले को हमारा नमस्कार है ॥ ३ ॥ हे रुद्र ! पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। तुम कोकाश के मध्य में सब के नियंता रूप से प्रतिष्ठित हो। हमारा नमस्कार है ॥ ४ ॥ हे भवदेव ! तुम्हारे मुख, चक्षु, त्वचा और नील पीतवर्ण को नमस्कार है। तुम्हारी समान रूप वाली दृष्टि को नमस्कार है। हे देव ! मेरा नमस्कार ग्रहण करो ॥५ ॥ तम्हारे उदर, जिह्वा, दांत, घ्राणेन्द्रिय तथा अन्य अङ्गों के लिए हम नमस्कार करते हैं ॥ ६॥ नीले केश, सहस्राक्ष, अश्व के समान वेग वाले, आधी सेना का शीघ्र नाश कर देने वाले रुद्र के द्वारा हम कभी आहत न किये जांय ॥ ७ ॥ जिन भव की महिमा प्रत्यक्ष है, वे हमें सब उत्पातों से पृथक् रखे। अग्नि जैसे जल को छोड़ता है वैसे ही रुद्र हमको छोड़ दें। भवदेव को नमस्कार है। वह मुझे पीड़ित न करें। ॥८॥ शर्वदेव को चार बार नमस्कार, भवदेव को आठ बार नमस्कार है। हे पशुपते ! तुम्हें दस बार नमस्कार। विभिन्न जाति वाले गवादि जीवों और पुरुषों की रक्षा करो ॥ ९ ॥ हे रुद्र ! तुम प्रचण्ड बल वाले हो। यह चारों दिशाऐं तुम्हारी ही हैं। यह स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष, सब दिशाऐं तम्हारा शरीर रूप ही हैं। तुम सब पर कृपा करने वाले और पूजनीय हो ॥ १० ॥

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः
परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥ ११ ॥
धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १२ ॥
योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥ १३ ॥
भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १४ ॥

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ।। १५ ।।
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभा यामकरं नमः ।। १६ ।।
सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् ।। १७ ।।
श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् ।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ।। १८ ।।
मा नोऽभि स्त्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ।। १९ ।।
मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः ।
मा त्वया समरामहि ।। २० ।।

हे पशुपते ! निवास के कारण रूप कर्म जहाँ किये जाते हैं, वह अण्ड-कटाहात्मक कोश तुम्हारा ही है । इसी में सब भूत निवास करते हैं । तुम हम को सुख दो । तुम्हें नमस्कार है । मांस भक्षक सियार, कुत्ते आदि हम से दूर हों । अमङ्गलकारिणी पिशाचिनी भी अन्यत्र गमन करें ।। ११ ।। हे रुद्र ! तुम प्रलयकाल में संहारात्मक धनुष धारण करते हो । वह हरित सुवर्ण निमत धनुष सहस्रों को एक ही बार में समाप्त कर देता है । तुम्हारे ऐसे धनुष को प्रणाम ! रुद्र का बाण सब ओर अबाध गति से जाता है, वह बाण जिस दिशा में हो, उसी दिशा में उस बाण को हम प्रणाम करते हैं ।। १२ ।। हे रुद्र ! जो पुरुष असमर्थ हो कर तुम्हारे सामने से भाग जाता है, उस अपराधी को तुम उचित दण्ड देने में समर्थ हो । जैसे आहत पुरुष छिपे हुए पुरुष के पद-चिह्न द्वारा पहुँच कर उसे पकड़ कर मारता है वैसा ही तुम करते हो) ।। १३ ।। भव और रुद्र समान मति वाले मित्र रूप हैं । वे प्रचण्ड पराक्रमी किसी से न दबते हुए, अपना शौर्य प्रकट करते हुए घूमते हैं । उन को नमस्कार है । वे जिस दिशा में विराजमान हों, उसी दिशा में उनको

हमारा प्रणाम प्राप्त हो ॥ १४ ॥ हे रुद्र ! हमारे सामने आते हुए तुम्हें नमस्कार है। हम से लौट कर जाते हुए तुम्हें नमस्कार है। तुम्हें बैठे हुए और खड़े हुए भी हमारा नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे रुद्र ! तुम्हें सायंकाल, प्रातःकाल, रात्रि और दिन में भी हम नमस्कार करते हैं। भव और शर्व दोनों देवताओं को हमारा नमस्कार है ॥ १६ ॥ अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी, सहस्रों नेत्र वाले, मेधावी, असंख्य बाण छोड़ने वाले और संसार को व्याप्त करते हुए रुद्र के पास हम न जाँय ॥ १७ ॥ श्यावाश्व वाले, कृष्ण परिच्छेद को मथने वाले, जिन्होंने केशी नामक दैत्य के रथ को गिरा दिया था, जिनसे संसार डरता है, उन रुद्र को अपने रक्षक रूप से अन्य स्तोताओं से भी पहले से जानते हैं। उनको हमारा नमस्कार है ॥ १ ॥ हे रुद्र ! हम मरणधर्म वालों पर अपने बाण मत चलाओ। हम पर क्रोध न करो। दिव्य शाखा के समान अपने दिव्यास्त्र को हम से पृथक् छोड़ो। तुम्हारे लिए हम नमस्कार करते हैं ॥ १९॥ हे रुद्र ! हमारे प्रति हिंसात्मक भाव मत रखो। हमको अपनी कृपा के योग्य मानो। हम पर क्रोध मत करो। तुम्हारा शस्त्र हमसे पृथक् रहे। हम आपके क्रोधित भाव से पृथक् हो रहें ॥ २० ॥

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥ २१ ॥
यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥ २२ ॥
योन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून्।
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥ २३ ॥
तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि।
तव यक्षं पशुपते अप्स्वन्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥ २४ ॥
शिशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि भूमिं
पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् समुद्रे ॥ २५ ॥

मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् ॥ २६ ॥
भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ २७ ॥
भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥ २८ ॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥ २९ ॥
रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः ।
इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥ ३० ॥
नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ।
नमो नमस्कृताभ्यो नमः सम्भुञ्जतीभ्यः ।
नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ॥ ३१ ॥

हे रुद्र ! हमारे गौ, पुत्र, भृत्यादि की हिंसा-कामना न करो। हमारे भेड़ बकरों की हिंसा-कामना मत करो। तुम अपने शस्त्रास्त्रों को देव-विरोधियों पर छोड़ कर उनकी संतान को ही नष्ट करो ॥ २१ ॥ जिन रुद्रदेव के आयुध रूप पीड़ामय कास और ज्वरादि व्याधि हैं, वे सेचन समर्थ घोड़े की हुंकार के समान अपराधियों को प्राप्त होते हैं, वह आयुध, कर्म को लक्ष्य में करता हुआ जो उसके योग्य होता है, उसी का नाश करता है। ऐसे उन रुद्र देवता के लिए हमारा नमस्कार है ॥ २२ ॥ जो रुद्र अन्तरिक्ष में स्थित रहते हुए अयाज्ञियों का संहार करते रहते हैं, हम उन रुद्र को हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥ हे पशुपते ! वन में सिंह, हरिण, बाज, हंस तथा अन्य वनचर और पक्षियों को तुम्हारे निमित्त विधाता ने बनाया है, उन्हीं को अपने इच्छानुसार स्वीकार करो, इन गाँव के पशुओं की हिंसा मत करो। तुम्हारा पूजनीय रूप जल में स्थित है, इसलिए तुम्हें अभिषिक्त करने को दिव्य जल

प्रवाहमान रहते हैं ॥ २४ ॥ हे रुद्र ! शिशुमार, अजगर, पुरीकय, जप, मत्स्य आदि जलचर भी तुम्हारे निमित्त हैं, उनके लिए तुम अपने तेज अस्त्र का फेंकते हो। हे भव ! तुम से दूर कुछ नहीं हैं, तुम क्षण भर में सम्पूर्ण पृथिवी को देखते और पूर्व से उत्तर में पहुंच जाते हो ॥ २५ ॥ हे रुद्र ! तुम हमको ज्वरादि रोग रूप अस्त्र से मत मिलाओ और स्थावर जङ्गम के विष से भी मत मिलाओ। आकाश विद्युत रूप अग्नि से भी हमको मत मिलाओ। इस विद्युत रूप अस्त्र को जङ्गली पशु आदि पर हमसे दूर डालो ॥२६ ॥ भवदेवता द्युलोक और पृथिवी के अधिपति हैं, आकाश-पृथिवी के मध्य में स्थिति अन्तरिक्ष को वही अपने तेज से युक्त करते हैं, हे भवदेव जिन दिशाओं में हो, उनको वहीं नमस्कार है ॥ २७ ॥ हे भव ! हे राजन् ! तुम पांच प्रकार के पशुओं के स्वामी हो, जो तुम्हारे निमित्त यज्ञ करता है, उस यजमान को सुख दो। जो पुरुष इन्द्रादि देवताओं को अपना रक्षक मानता है, उसके चौपायों दुपायों को सुख प्रदान करो ॥ २८ ॥ हे रुद्र ! हमारे बड़े, मध्यम अथवा छोटों का संहार न करो। हमारे माता पिता को मत मारो। हमको वहन करने वाले पुरुषों की हत्या न करो और हमारे शरीर की भी हिंसा न करो ॥२९॥ रुद्र के प्रेरणा युक्त कर्म वाले प्रथम गणों को नमस्कार करता हूँ, कटुभाषी गणों को नमस्कार करता हूँ। मृगया के निमित्त किरात वेश धारी भव के श्वानों को नमस्कार करता हूँ ॥ ३० ॥ हे रुद्र तुम्हारी प्रभूत घोष वाली, केशिनी, चण्डेश्वर आदि सेनाओं को नमस्कार है, सहभोजन करने वाली तथा अन्य सेनाओं को भी नमस्कार है। तुम्हारी कृपा से हमारा कुशल हो और हम भय रहित हों ॥ ३१ ॥

३ सूक्त (१) (दूसरा [illegible])

(ऋषि—अथर्वा। देवता—बार्हस्पत्योदनः। छन्दः—गायत्री; पंक्ति; अनुष्टुप्, उष्णिक्; जगती, बृहती; त्रिष्टुप्;)

तस्योदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥ १ ॥

द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः प्राणापानाः ।२।

चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥ ३ ॥
दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ॥ ४ ॥
अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥ ५ ॥
कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥ ६ ॥
श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ७ ॥
त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥
खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥ ९ ॥
आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥ १० ॥

इस ओदन के शिर बृहस्पति हैं और उसके कारणभूत ब्रह्म उसके मुख हैं ॥ १ ॥ आकाश पृथिवी इसके कान, सूर्य चन्द्र नेत्र और मरीच्यादि सप्तर्षि उसके प्राणापान हैं ॥ २ ॥ इस ओदन के उपादान रूप मूसल इसका नेत्र है, और उलूखल इसकी कामना है ॥ ३ ॥ दिति ही सूप है और जो सूप से छरती है, वह अदिति है तथा वायु धान और चावलों का विवेचन करने वाला है ॥ ४ ॥ ओदन के कण अश्व हैं, तण्डुल गौ हैं और पृथक् की हुई भूसी मच्छर रूप है ॥ ५ ॥ फलीकरणों का शिर जिसकी भ्रू हैं, वह कब्रु है, मेघ शिर है ॥ ६ ॥ कुदाली आदि का उपादान काले रंग का लोह इस ओदन का मांस और लाल रंग वाला तांबा इसका रक्त है ॥ ७ ॥ ओदन पकने के पश्चात् जो राख होती है, वह सीमा हैं, जो ओदन का वर्ण है वह सुवर्ण है, ओदन की गन्ध कमल है, सूप इसका पात्र है, गाड़ी के अवयव इसके अंस हैं, ईशाऐं अनूक्य हैं, वृषभों के कण्ठ में बंधी हुई रस्सियाँ इसकी आंतें हैं और चमड़े के बन्धन गुदा हैं ॥ ८, ९, १० ॥

इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥११॥
सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥ १२ ॥
ऋतं हस्तावनेजनं कुल्यो पसेचनम् ॥ १३ ॥
ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥ १४ ॥

ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥ १५ ॥
बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥ १६ ॥
ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥ १७ ॥
चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मोभोन्धे ॥ १८ ॥
ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९ ॥
यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥ २० ॥

यह पृथिवी ही ओदन-पाक के लिए कुंभी है, आकाश इसका ढक्कन है ॥ ११ ॥ लांगलपद्धतियाँ इसकी पसली और नदी आदि में जो रज, है वह ऊवध्य है ॥ १२ ॥ सम्पूर्ण सांसारिक-जल, इस में हाथ धोने का जल और छोटी नदियाँ इसका उपसेचन रूप हैं ॥ १३ ॥ उक्त लक्षण वाली कुंभी ऋग्वेद रूप अग्नि पर चढ़ी है, इसे अथर्ववेद द्वारा स्थित किया है और सामवेद रूप अङ्गार इसके चारो ओर लगे हैं ॥१४,१५॥ जल में डाले हुए चावलों को मिलाने का कष्ट बृहत्साम और करछली रथन्तर साम है ॥ १६ ॥ ऋतुऐं इस ओदन के पकाने वाली हैं। अखिल विश्वमय ओदन का पकाना समय के वश की ही बात है, उसके सिवा उसे कोई नहीं पका सकता। दिन-रात ही इसे प्रज्वलित करने से समर्थ हैं ॥ १७ चरु को ओदन कहते हैं, उसे पकाने की स्थाली भी चरु कहाती है। उस चरु को तेजस्वी सूर्य तपाता है ॥ १८ ॥ अग्निष्टोम आदि यज्ञों के द्वारा जिन लोकों की प्राप्ति बताई जाती है, वे सब लोक इस अत्यन्त प्रभाव वाले पके हुए ओदन के द्वारा प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ जिस ओदन के नीचे ऊपर पृथिवी, समुद्र, आकाश स्थित हैं, यह वही है ॥ २० ॥

यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः २१ ॥
त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥ २२ ॥
स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥ २३ ॥
नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति ॥ २४ ॥
यावद् दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत् ॥ २५ ॥

ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशीः प्रत्यञ्चामिति ॥ २६ ॥
त्वमोदनं प्राशीस्त्वामोदना इति ॥ २७ ॥
पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २८ ॥
प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २९ ॥
नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥ ३० ॥
ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥ ३१ ॥

जिस ओदन के यज्ञ से बचे हुए अंश में चार सौ अस्सी देवता समय हुए, उस ओदन से सभी लोकों की प्राप्ति सम्भव है ॥ २१ ॥ इस ओदन की जो महान् महिमा है, उसे मैं तुमसे पूछता हूँ ॥ २२ ॥ इसकी महिमा को जो गुरु जानता हो, वह महिमा को अल्प न बतावे और यह भी न कहे कि इसमें दूध घृत आदि की आवश्यकता नहीं है। केवल उसके महात्म्य को ही कहे ॥ २३,२४॥ 'वसयज्ञ' का अनुष्ठान करने वाला दानी अपने मन से जितने फल की कामना करे, उससे अधिक न कहे ॥ २५ ॥ ब्रह्मवादी महर्षि परस्पर कहते हैं कि तू इस पराङ्मुख अथवा आत्माविमुख ओदन का प्राशन कर चुका है। तूने ओदन को खाया है या ओदन ने तेरा प्राशन कर लिया है ॥ २७ ॥ यदि तूने पीछे स्थित ओदन का भक्षण किया है तो प्राण वायु तुझसे पृथक् हो जायगा। इस प्रकार प्राशिता से कहना चाहिए ॥ २८ ॥ यदि तूने प्रतिमुख ओदन का भक्षण किया है तो अपान वायु तेरा त्याग करेगा—इस प्रकार प्राशिता से कहना चाहिए ॥ २९ ॥ ओदन का प्राशन मैंने नहीं किया और न ओदन ने मेरा प्राशन किया है ॥ ३० ॥ यह ओदन प्रपंचात्मक है। ओदन करने वाले ने इसका प्राशन स्वात्मरूप से किया ॥ ३१ ॥

३ (२) सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री; जगती अनुष्टुप्; पंक्ति—बृहती; उष्णिक्)

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्

ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
बृहस्पतिना शीर्ष्णा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एषा वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३२ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
बधिरो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३३ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ।
अन्धो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३४ ॥

ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ।
मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ब्रह्मणा मुखेन । तेनैनं प्राशिपं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।

सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३५ ॥

ततश्चैनमन्यया जिह्वाया प्राशीर्यया चैतं ऋषयः प्राश्नन् ।
जिह्वा ते मरीष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्
अग्नेर्जिह्वया । तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३६ ॥

ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ।
दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ऋतुभिर्दन्तैः तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३७ ॥

ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ।
प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सप्तऋषिभिः प्राणापानैः । तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३८ ॥

ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
अन्तरिक्षेण व्यचसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।

सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३९ ॥
ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चम् न प्रत्यञ्चम् ।
दिवा पृष्ठेन । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४० ॥

"पूर्व अनुष्ठाताओं ने जिस शिर से ओदन का प्राशन किया था, उसके अतिरिक्त अन्य शिर से तूने प्राशन किया है तो बड़े से लेकर क्रमशः तेरी सन्तान नष्ट होने लगेगी।" अभिज्ञ पुरुष प्राशिता से ऐसा कहे। मैंने उस ओदन को अभिमुख और पराङ्मुख होने पर भी नहीं खाया। ऋषियों ने बृहस्पति से सम्बन्धित शिर से इसका प्राशन किया था, मैंने भी ओदन-संबन्धी शिर से उसी प्रकार प्राशन किया है। मुझ ओदन ने ही ओदन को खाया है। इस प्रकार प्राशित यह ओदन सब अङ्गों से पूर्ण शरीर वाला होकर सर्वाङ्ग फल को कहता है। इस प्रकार ओदन के प्राशन का ज्ञाता पुरुष सर्वाङ्ग फल पाता हुआ, स्वर्गादि लोकों में पहुँचता है ॥ ३२ ॥ "पूर्व ऋषियों की विधि के अतिरिक्त अन्य सुनी हुई विधियों से प्राशन किया है तो तू बधिर होगा।" मैंने द्यावा पृथिवी रूप श्रोत्रों से इस ओदन का प्राशन किया है, लौकिक श्रोत्रों से नहीं किया। इस प्रकार से प्राशित ओदन सर्वाङ्ग पूर्ण होता हुआ फल देता है। ओदन प्राशन को इस प्रकार जानने वाला पुरुष सर्वाङ्ग फल पाता हुआ स्वर्गादि पुण्य लोक प्राप्त करता है ॥ ३३ ॥ "पूर्व ऋषियों ने जिन नेत्रों से प्राशन किया था, तूने उसके अतिरिक्त लौकिक नेत्रों से इसका प्राशन किया है तो तू अंधा हो जायगा।" मैंने सूर्य चन्द्र रूपी नेत्रों से प्राशन किया है, इस प्रकार का ओदन प्राशन सर्वाङ्ग देह युक्त फल कहने वाला है। जो इस प्रकार जानता है वह सर्वाङ्गात्मक फल को प्राप्त करता हुआ स्वर्गादि लोक में अवस्थित होता है ॥ ३४ ॥ "जिस ब्रह्मात्मक मुख से ऋषियों ने ओदन-प्राशन

किया था, यदि तूने उसके अतिरिक्त लौकिक मुख से इसका प्राशन किया है तो तेरी सन्तान तेरे सामने ही नाश को प्राप्त होने लगेगी।' मैंने ब्रह्मरूपी मुख से ओदन का प्राशन किया है जो सर्वांगपूर्ण फल का देने वाला है। जो पुरुष ओदन के प्राशन को इस प्रकार जानने वाला है, वह सर्वांग फल से पूर्ण होकर पुण्य-फल के धाम स्वर्ग को पाता है ॥ ३५ ॥ "ऋषियों ने जिस जिह्वा से प्राशन किया था, उसके अतिरिक्त लौकिक जिह्वा से तूने ओदन-प्राशन किया है तो तेरी जिह्वा निरर्थक हो जायगी।" इस ओदन की अवयव भूत अग्नि रूप जिह्वा से मैंने ओदन का प्राशन किया है, जो सर्वांग फल को देने वाला है। इस प्रकार जानने वाला पुरुष सर्वांग फल को प्राप्त करता स्वर्गादि में स्थित होता है ॥ ३६ ॥ "पूर्व ऋषियों की विधि के अतिरिक्त लौकिक दाँतों से यदि तूने प्राशन किया है तो तेरे दाँत नष्ट होंगे।" मैंने ऋतु रूप दाँतों से ओदन को खाया है, इस प्रकार किया हुआ प्राशन सर्वाङ्ग फल को देता है। जो इस प्राशन को इस प्रकार जानता है, वह सर्वांग फल को प्राप्त करता हुआ स्वर्गादि में स्थित होता है ॥ ३७ ॥ "जिन प्राणापानों से पूर्व पुरुषों ने ओदन-प्राशन किया था, तूने उससे भिन्न लौकिक प्राणापानों से इसका प्राशन किया है तो तेरे प्राणापान रूप वायु तुझे त्याग देंगे।" मैंने सप्तर्षि रूप प्राणापानों से इसे खाया है। इस प्रकार खाया हुआ ओदन पूर्ण शरीर होता है। इस प्रकार ओदन-प्राशन का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल पाता हुआ स्वर्गादि में स्थित होता है ॥ ३८ ॥ "जिस विधि से पूर्व ऋषियों ने इसका प्राशन किया था, तूने यदि उससे भिन्न, लौकिक विधि से प्राशन किया है तो तुझे यक्ष्मादि रोग नष्ट कर देंगे।" मैंने उसी अंतरिक्षात्मक विधि से इसका प्राशन किया है, जिससे यह सर्वांग पूर्ण हो जाता है। जो पुरुष ओदन प्राशन को इस प्रकार जानता है, वह सर्वांग फल वाला होकर स्वर्ग में स्थित होता है ॥ ३९ ॥ "पूर्व ऋषियों ने जिस पृष्ठ से प्राशन किया था, तूने उसके अतिरिक्त अन्य पृष्ठ से यदि ओदन का प्राशन किया है तो विद्युत तेरा संहार करेगी।' मैंने द्यौ रूप पृष्ठ से इसका प्राशन कर यथा स्थान पहुँचाया है। इस प्रकार प्राशित यह ओदन सर्वांग पूर्ण हो जाता है। जो पुरुष ओदन-

प्राशन को इस प्रकार जानता है, वह सर्वांग फल से युक्त स्वर्गादि लोक में स्थित होता है ॥ ४० ॥

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन ।
कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
पृथिव्योरसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४१ ॥

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सत्येनोदरेण । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांग सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४२ ॥

ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषय प्राश्नन् ।
अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
समुद्रेण वस्तिना । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४३ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीयाभ्यां चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ।
ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
मित्रावरुणयोरूरुभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।

एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनूः
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४४ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
स्रामो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४५ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
अश्विनोः पादाभ्यां । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४६ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सवितुः प्रपदाभ्यां । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४७ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ऋतस्य हस्ताभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।

एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४८ ॥
ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
अप्रतिष्ठानो ऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चं : सत्ये प्रतिष्ठाय ।
तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनू सं भवति य एवं वेद ॥ ४९ ॥

"जिस वक्ष से पूर्व ऋषियों ने इस ओोदन का प्राशन किया था तूने उस वक्ष से नहीं किया है तो तुझे कृषि में सफलता प्राप्त नहीं होगी ।' मैंने पृथिवी रूप वक्षस्थल द्वारा इसका प्राशन किया है, उसी से इसे यथास्थान पहुँचाया है । यह प्राशन सर्वांग फल वाला होता है । जो पुरुष इसे इस प्रकार जानता है वह सर्वांगफल युक्त स्वर्गादि लोक में स्थित होता है ॥ ४१ ॥ 'पूर्व ऋषियों ने जिस उदर से ओदन का प्राशन किया था, तूने यदि उस प्रकार नहीं किया है तो तू अतिसार आदि से ग्रसित होकर मृत्यु को प्राप्त होगा ।' मैंने सत्यरूप उदर से इसका प्राशन कर यथास्थान पहुँचाया है । इस प्रकार का प्राशन सर्वांग फल वाला हो जाता है । जो इसे जानता है, सर्वांग फल से सम्पन्न हुआ स्वर्गादि लोक में स्थित होता है ॥ ४२ ॥ 'पूर्व ऋषियों ने जिस वस्ति द्वारा ओदन का प्राशन किया था, तूने उस वस्ति से नहीं किया है तो तू जल में मृत्यु को प्राप्त होगा ।' मैंने समुद्र रूप वस्ति से प्राशन किया है और उसी से इसे यथा स्थान पहुँचाया है इस प्रकार का ओदन सर्वांग फल वाला होता है । जो इसे जानता है वह सर्वांग फल से सम्पन्न होकर स्वर्गादि पुण्यों लोकों में स्थित होता है ॥ ४३ ॥ 'पूर्व ऋषियों ने जिन ऊरुओं से प्राशन किया था, तूने यदि वैसा नहीं किया है तो तेरी ऊरु नष्ट हो जायगी ।' मैंने मित्रावरुण रूप ऊरुओं से प्राशन करउ से

यथास्थान पहुँचाया है। इस प्रकार प्राशित यह ओदन सर्वांग पूर्ण होता है। जो इस प्रकार जानता है वह सर्वांग फल से युक्त होकर स्वर्गादि लोकों में स्थित होता है ॥ ४४ ॥ 'पूर्व ऋषियों ने जिन अस्थियुक्त जांघों से ओदन का प्राशन किया था, यदि तूने उससे भिन्न किया है तो तेरी जङ्घाएँ सूख जायंगी।' मैंने त्वष्टा की जङ्घाओं से इसका प्राशन किया है और यथास्थान पहुँचाया है। ऐसा यह प्राशन सर्वांग फल वाला होता है। जो इस प्राशित ओदन को इस प्रकार जानता है, वह स्वर्गादि पुण्य लोकों में स्थित होता है ॥ ४५ ॥ 'पूर्व ऋषियों ने जिन पाँवों से ओदन का प्राशन किया था, तूने यदि उससे भिन्न किया है तो तू बहुचारी हो जायगा।' मैंने अश्विद्वय के पादों से प्राशन किया है और उन्हीं से यथास्थान पहुँचाया है। इस प्रकार प्राशित यह ओदन सर्वांग फल वाला होता है। जो इसे इस प्रकार जानता है, वह स्वर्गादि पुण्य लोकों में स्थित होता है ॥ ४६ ॥ 'पूर्व ऋषियों ने जिन पदार्थों से इसका प्राशन किया था तूने यदि उससे भिन्न किया है, तो तुझे सर्प डस लेगा।' मैंने सविता के पादाग्रों से इस ओदन का प्राशन किया है और उनके द्वारा ही इसे यथा स्थान पहुँचाया है। इस प्रकार का यह ओदन-प्राशन सर्वांग पूर्ण होता है। जो पुरुष इसे इस प्रकार जानता है वह सर्वांग फल दाता स्वर्ग में स्थित होता है ॥४७॥ 'पूर्व ऋषियों ने जिन हाथों से इसका प्राशन किया था, यदि तूने उससे विपरीत किया है तो ब्रह्म हत्या दोष का भागी होगा।' मैंने परब्रह्म के हाथों से प्राशन कर उसे यथास्थान पहुँचाया है। ऐसा ओदन प्राशन सर्वांग पूर्ण होता है और ओदन-प्राशन के ज्ञाता पुरुष को स्वर्ग में स्थित करता है ॥ ४८ ॥ 'प्राचीन ऋषियों ने जिस ब्रह्मात्मिका प्रतिष्ठा से ओदन का प्राशन किया था, तूने यदि उसके विपरीत किया है तो तू प्रतिष्ठा रहित हो जायगा।' मैंने ब्रह्म में प्रतिष्ठित होकर उस जगत्प्रतिष्ठात्मक ब्रह्म से ही ओदन-प्राशन किया है और स्वर्ग में पहुँचाया है। ऐसा यह प्राशित ओदन सम्पूर्ण अंग वाला होता है। इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष सर्वांगपूर्ण हुआ स्वर्ग में स्थित होता है ॥ ४९ ॥

३ (३) सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ताः । छन्द—अनुष्टुप; उष्णिक;
त्रिष्टुप; बृहती;)

एतत् वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥ ५० ॥
ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ॥ ५१ ॥
एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान्
निरमिमीत प्रजापतिः ॥ ५२ ॥
तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥ ५३ ॥
स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥ ५४ ॥
न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥ ५५ ॥
न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥ ५६ ॥

पूर्वोक्त महिमा से युक्त यह ओदन, अपनी महिमा से विश्व के रचयिता एवं सूर्य मण्डल में वर्तमान ईश्वर का मण्डल रूप ही है ॥ ५० ॥ जो पुरुष ओदन के सूर्य मंडलात्मक रूप का ज्ञाता है, वह सूर्य लोक को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ प्रजापति ने इस सूर्यात्मक ओदन द्वारा अष्टावसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषट्कार इन तेतीस देवताओं की सृष्टि करते हुए उन के लोकों को भी बनाया ॥ ५२ ॥ उन लोकों के सुखों का ज्ञान कराने के लिए ही इस यज्ञ का विधान किया गया ॥ ५३ ॥ इस प्रकार जानने वाले उपासक का जो पुरुष उपद्रष्टा होता है, वह उपरोधक अपने शरीर में स्थित अपने प्राण की गति को रोक देता है, क्योंकि वह उपासक की इच्छा के विरुद्ध आचरण करता है ॥ ५४ ॥ उसके प्राण का ही अवरोध नहीं होता, वरन् संतान पशु आदि से हीन हुआ वह पतित हो जाता है । ५५ ॥ उसकी सर्वस्व हानि के साथ ही उसके प्राण उसे वृद्धावस्था से पूर्व ही त्याग देते हैं ॥ ५६ ॥

४ सूक्त

(ऋषि— भार्गवो वैदर्भिः । देवता—प्राणः । छन्द—अनुष्टुप्; पंक्तिः; त्रिष्टुप्; जगती)

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥
नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥ २ ॥
यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः ।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥ ३ ॥
यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥ ४ ॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥ ५ ॥
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥ ६ ॥
नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७ ॥
नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ॥ ८ ॥
या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥
प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥

सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर में व्याप्त सचेष्ट प्राण को प्रणाम है, जिसके

वश में यह संसार रहता है। वह भूतकाल से अविच्छिन्न है। वह प्राणियों का ईश्वर है, उसमें सब संसार प्रतिष्ठित है। ऐसे उस प्राण के लिए नमस्कार है ॥ १ ॥ हे प्राण! तुम ध्वनि करने वाले हो, तुम मेघ जल में प्रविष्ट एवं गर्जनशील हो, तुम को प्रणाम है। तुम विद्युत रूप में चमकते हो, वर्षा करने वाले हो। तुम को नमस्कार है ॥ २ ॥ सूर्यात्मक मेघ ध्वनि से जब प्राण ओषधि आदि को अभिलक्षित करता हुआ गर्जता है तब वे ओषधि आदि गर्भ धारण में समर्थ होती हैं ॥ ३ ॥ वर्षा ऋतु की प्राप्ति पर जब प्राण ओषधियों के प्रति गर्जन करता है, तब सब हर्षित होते हैं। पृथिवी के सभी प्राणी आनन्द में भर जाते हैं ॥ ४ ॥ जब प्राण विस्तृत पृथिवी को वर्षा द्वारा सब ओर से सींचते हैं, तब गवादि पशु प्रसन्न होते हैं ॥ ५ ॥ प्राण द्वारा सींची गई ओषधियाँ उस से कहती है कि 'हे प्राण! तू हमको सुन्दर गन्ध वाली बना और हमारे जीवन की वृद्धि कर ॥ ६ ॥ हे प्राण! तुझ सम्मुख आते और फिर कर जाते हुए को नमस्कार है। तू जहां कहीं स्थित हो, वहीं स्थित को नमस्कार है ॥ ७ ॥ हे प्राण! तुम प्राणन व्यापार वाले और अपानन व्यापार वाले को नमस्कार है। परागमन स्वभाव से स्थित, प्रतीचीन गमन वाले और सब व्यापारों के कर्त्ता तुमको नमस्कार है ॥ ८ ॥ हे प्राण! यह शरीर तुम्हारा प्रिय है। तुम्हारी अग्नीषोमात्मक प्रेयसी और अमरतत्व से युक्त जो ओषधि हैं, उन सब के पास से अमृत गुण देने वाली भेषज को प्रदान कर ॥ ९ ॥ जैसे पिता अपने पुत्र को ढकता है, वैसे ही प्राण मनुष्यादि को ढकते हैं। जो जंगमात्मक वस्तु प्राणन व्यापार वाली है और जो स्थावरात्मक वस्तु प्राणन व्यापार से रहित है, परन्तु प्राण उनमें निरुद्धगति से वास करता है। इन सब जंगमस्थावर जीवों से युक्त संसार का स्वामी प्राण ही है ॥ १० ॥

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥
प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥
अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥ १६ ॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥ १७ ॥
यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः ।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिँल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥
यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः ।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः ॥ १९ ॥
अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः ।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥ २० ॥

प्राण ही शरीर से निकल कर मृत्यु उपस्थित करता है। प्राण ही जीवन को दुःख देने वाले ज्वरादि रूप तक्मा हैं। देह में वर्तमान उसी प्राण की आराधना इन्द्रियाँ करती हैं। वही प्राण सत्याचरण वाले को श्रेष्ठ लोक में स्थित करता है ॥ ११ ॥ प्राण ही विराट् है, वही देष्ट्री है, ऐसे प्राण की सभी सेवा करते हैं। वही सब को प्रेरणा देने वाला सूर्य है, वही सोम है, ज्ञानीजन उस प्राण को ही प्रजापति कहते हैं ॥ १२ ॥ प्राणापान प्राण की ही वृत्ति है, वही व्रीहि और जौ है। वृत्तिमान प्राण अनड्वान् कहाता है। स्रष्टा ने जौ में प्राणवृत्ति और व्रीहि में अपानवृत्ति वाला प्राण स्थापित किया है। इन दोनों से ही सब प्राणी अपना कार्य चलाते हैं। इसलिए व्रीहि, जौ

और अनड्वान् रूप से प्राण को ही कहते हैं ।। १३ ।। हे प्राण ! शरीर धारण करने वाला मनुष्य स्त्री के गर्भ में तुम्हारे प्रवेश से ही अपान व्यापार और प्राणन व्यापार को करता है। तुम गर्भस्थ शिशु को माता द्वारा भोजन किये अहार से ही पुष्ट करते हो। फिर वह पुरुष पुण्य पाप का फल भोगने के लिए भूमि पर जन्म लेता है ।। १४ ।। मातरिश्वा वायु को प्राण कहते हैं। संसार का आधारभूत वायु ही प्राण है। संसार के आधारभूत प्राण में भूतकाल में उत्पन्न संसार और भविष्य में उत्पन्न होने वाला संसार आश्रय रूप में रहता है। संपूर्ण विश्व ही इस प्राण में प्रतिष्ठित है ।। १५ ।। हे प्राण ! जब तुम वर्षा द्वारा तृप्त करते हो तब अथर्वा, अंगरागोत्र वालों और देवताओं द्वारा रची गई तथा मनुष्यों द्वारा प्रकट की जाने वाली सब ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं ।। १६ ।। जब प्राण वर्षा के रूप में पृथिवी पर बरसता है, उसके पश्चात् ही व्रीहि, जौ तथा लता रूप ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं ।। १७ ।। हे प्राण ! तू जिस विद्वान् में प्रविष्ट होता है और जो तेरी उक्त महिमा को जानता है, सब देवता उस विद्वान को श्रेष्ठ स्वर्ग में अमृतत्व प्रदान करते हैं ।। १८ ।। हे प्राण ! देवता, मनुष्यादि जैसे तुम्हारे उपभोग के योग्य अन्न को लाते हैं, वैसे ही तुम्हारी महिमा जानने वाले विद्वान के लिए भी वे लावें ।। १९ ।। मनुष्यों में ही नहीं, देवताओं में भी प्राण गर्भ रूप से घूमता है। सब ओर व्याप्त होकर वही उत्पन्न होता है। इस नित्य वर्तमान प्राण ने भूतकाल की और भविष्य की वस्तुओं में भी पिता का पुत्र में अपने अवयवों से प्रविष्ट होने के समान, अपनी शक्ति से प्रवेश कर लिया है ।। २० ।।

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् ।
यदंग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः
स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन ।। २१ ।।
अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ।। २२ ।।
यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।

अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तुते ॥ २३ ॥
यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥
ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिरङ् नि पद्यते ।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ २५ ॥
प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥ २६ ॥

शरीर में व्याप्त प्राण को हंस कहते है। वह पंच भूतात्मक देह से प्राणवृत्ति द्वारा ऊपर उठता हुआ अपानवृत्ति वाले एक पाद को नहीं उठाता यदि वह अपानवृत्ति वाले पाद को उठाले तो शरीर से प्राण निकल जाने पर शरीर का काल विभाग न हो अन्धकार भी दूर न हो। इस लिए संसार को प्राण युक्त रखने के लिए वे अपने एक पाद को स्थिर रखते हैं ॥ २१ ॥ अष्ट धातु रूप जो चक्र हैं, उनसे युक्त शरीर प्राण रूप एक नेमि वाला कहा जाता है। यह चक्र अनेक अक्षों से युक्त है। ऐसे रथात्मक शरीर को पहले पूर्व भाग में, फिर अपर भाग में व्याप्त होकर वर्तता है। वह प्राण आधे अंश से प्राणियों को उत्पन्न करता है और उसके दूसरे भाग का रूप निर्धारण शक्ति से परे है ॥२२॥ जो प्राण जन्म धारण करने वाले सचराचर विश्व का अधिपति है, वह देहधारियों के देह में शीघ्रता से प्रतिष्ठित होता है। ऐसी महिमा वाले हे प्राण! तुम्हें नमस्कार है ॥ २३ ॥ जो प्राण संसार का अधिपति है, वह प्रमाद रहित होकर सर्वत्र चेष्टावान रहता है। वह प्राण अनविच्छिन्न रूप से मेरे शरीर में वर्तमान रहे ॥ २४ ॥ हे प्राण! निद्रा से पराधीन हुए प्राणियों में उनके रक्षार्थ तुम चैतन्य रहो। प्राणी सोता है, परन्तु प्राण का सोना किसी से नहीं सुना ॥ २५ ॥ हे प्राण! तुम मुझसे मुख मत फिराओ, मुझसे अन्यत्र न होओ। मैं जीवन के निमित्त तुम्हें अपने शरीर में रोकता हूँ। वैश्वानर अग्नि को जैसे देह में धारण करते हैं, वैसे ही मैं तुम्हें देह में धारण करता हूँ ॥ २६ ॥

५ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि – ब्रह्मा देवता – ब्रह्मचारी । छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री, बृहती; जगती; -अनुष्टुप;; उष्णिक्)

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥ १ ॥
ब्रह्मचारिण पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः
सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २॥
आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥ ३ ॥
इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥ ४ ॥
पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ ५ ॥
ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् । ॥६॥
ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ॥ ७ ॥
आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥ ८ ॥
इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥
अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥ १० ॥

आकाश-पृथिवी दोनों लोकों को तप से व्याप्त करने वाले ब्रह्मचारी को सब देवता समान मन वाले होते हैं। वह अपने तप से आकाश का पोषण करता और अपने गुरु का भी पोषण करता है ॥ १ ॥ ब्रह्मचारी के रक्षार्थ पितर, देवता और इन्द्रादि उसके अनुगत होते हैं। विश्वावसु आदि भी इसके पीछे चलते हैं। तेतीस देवता, इनकी विभूति रूप तीन सौ तीन देवता और छः सहस्र देवता, इन सब का ब्रह्मचारी अपने तप द्वारा पोषण करता है ॥ २ ॥ उपनयन करने वाला आचार्य, विद्यामय शरीर के गर्भ में उसे स्थापित करता हुआ, तीन रात तक ब्रह्मचारी को अपने उदर में रखता है, चौथे दिन देवगण उस विद्या देह से उत्पन्न ब्रह्मचारी के सम्मुख आते हैं ॥ ३ ॥ पृथिवी इस ब्रह्मचारी की प्रथम समिधा है और आकाश द्वितीय समिधा है। आकाश-पृथिवी के मध्य अग्नि में स्थापित हुई समिधा से ब्रह्मचारी संसार को संतुष्ट करता है। इस प्रकार समिधा, मेखला, मौञ्जी, श्रम, इन्द्रियनिग्रहात्मक खेद और देह को संताप देने वाले अन्य नियमों को पालता हुआ पृथिव्यादि लोकों का पोषण करता है ॥ ४ ॥ ब्रह्मचारी ब्रह्म से भी पहले प्रकट हुआ, वह तेजोमय रूप धारण कर तप से युक्त हुआ। उस ब्रह्मचारी रूप से तपते हुए ब्रह्म द्वारा श्रेष्ठ वेदात्मक ब्रह्म प्रकट हुआ और उसके द्वारा प्रतिपादित अग्नि आदि देवता भी अपने अमृतत्व आदि गुणों के सहित प्रकट हुए ॥ ५ ॥ प्रातः सायं अग्नि में रखी समिधा और उससे उत्पन्न हुए तेज से तेजस्वी, मृगचर्म धारी जो ब्रह्मचारी अपने भिक्षादि नियमों का पालन करता है, वह शीघ्र ही पूर्व समुद्र से उत्तर समुद्र पर पहुँचता है और सब लोकों को अपने समक्ष करता है ॥ ६ ॥ ब्रह्मचर्य से महिमायुक्त ब्रह्मचारी ब्राह्मण जाति को उत्पन्न करता है। वही गंगा आदि नदियों को प्रकट करता है, स्वर्ग, प्रजापति, परमेष्ठी और विराट् को उत्पन्न करता है। वह अमरणशील ब्रह्म की सत्-रज-तम गुणों से युक्त प्रकृति में गर्भ रूप होकर सब वर्णन किये हुए प्राणियों को प्रकट करता और इन्द्र होकर राक्षसों का नाश करता है ॥ ७ ॥ यह आकाश और पृथिवी विशाल हैं। इन पृथिवी और आकाश के उत्पादक आचार्य की भी ब्रह्मचारी रक्षा करता है। सब

देवता ऐसे ब्रह्मचारी पर कृपा रखते हैं ॥ ८ ॥ पृथिवी और आकाश को ब्रह्मचारी ने भिक्षा रूप में ग्रहण किया फिर उसने उन आकाश पृथिवी को समिधा बना कर अग्नि की आराधना की। संसार के सब प्राणी उन्हीं आकाश-पृथिवी के आश्रय में रहते हैं ॥ ९ ॥ पृथिवी लोक में आचार्य के हृदय रूप गुहा में एक वेदात्मक निधि है। दूसरी देवात्मक निधि उपरि स्थान में है। ब्रह्मचारी इन निधियों की अपने तप से रक्षा करता है। वेद विद् ब्राह्मण शब्द और उसके अर्थ से सम्बन्धित दोनों निधियों को ब्रह्म रूप करता है ॥ १० ॥

अर्वागन्यः इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥११॥
अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिगो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।१२
अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्यप्सु समिधमा दधाति ।
तासामर्चींपि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥ १३ ॥
आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओपधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्वराभृतम् ॥ १४ ॥
अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान्मित्रो अध्यात्मनः ॥ १५ ॥
आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ॥ १६ ॥
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥
ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घसं जिगीपति ॥ १८ ॥
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युम ाघ्नत ।

इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ १९ ॥
ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २० ॥

उदय न हुआ सूर्य रूप अग्नि पृथिवी से नीचे रहते है। पार्थिव अग्नि पृथिवी पर रहते हैं। सूर्योदय होने पर आकाश-पृथिवी के मध्य यह दोनों अग्नियाँ संयुक्त होती है। दोनों की किरणें संयुक्त होकर दृढ़ होती हुई आकाश-पृथिवी को आश्रित होती हैं। इन दोनों अग्नियों से सम्पन्न ब्रह्मचारी अपने तेज से अधिदेवता होता है ॥ ११ ॥ जल पूर्ण मेघ को प्राप्त हुए वरुणदेव अपने वीर्य को पृथिवी में सींचते हैं। ब्रह्मचारी अपने तेज से उस वरुणात्मक वीर्य को ऊँचे प्रदेश में सींचता है। उनसे चारों दिशाएँ समृद्ध होती हैं ॥ १२ ॥ ब्रह्मचारी, पार्थिव अग्नि में, चन्द्रमा, सूर्य, वायु और जल में समिधाएँ डालता है। इन अग्नि आदि का तेज पृथक् पृथक् रूप से अन्तरिक्ष में रहता है। ब्रह्मचारी द्वारा समृद्ध अग्नि वर्षा, जल, घृत, प्रजा आदि कार्य को करते हैं ॥ १३ ॥ आचार्य ही मृत्यु हैं, वही वरुण है, वही सोम हैं। दुग्ध, व्रीहि, यव और ओषधियाँ आचार्य की कृपा से ही प्राप्त होते हैं। अथवा यह स्वयं ही आचार्य हो गये हैं ॥ १४ ॥ आचार्य रूप से वरुण ने जिस जल को पास रखा, वही वरुण प्रजापति से जो फल चाहते थे, वही मित्र ने ब्रह्मचारी होकर आचार्य को दक्षिणा रूप में दिया ॥ १५ ॥ विद्या का आदेश देकर आचार्य ब्रह्मचारी रूप से प्रकट हुए हैं। वही तप से महिमावान हुए प्रजापति बने। प्रजापति से विराट् होते हुए वही विश्व के स्रष्टा परमात्मा हो गये ॥ १६ ॥ वेद को ब्रह्म कहते हैं। वेदाध्ययन के लिए आचरणीय कर्म ब्रह्म है। उसी ब्रह्मचर्य के तप से राजा अपने राज्य को पुष्ट करता है और आचार्य भी ब्रह्मचर्य से ही ब्रह्मचारी को अपना शिष्य बनाने की इच्छा करता है ॥ १७ ॥ जिसका विवाह नहीं हुआ है, ऐसी स्त्री ब्रह्मचर्य से ही श्रेष्ठ पति प्राप्त करती है। अनड्वान् आदि भी ब्रह्मचर्य से ही श्रेष्ठ स्वामी को प्राप्त करता है। अश्व ब्रह्मचर्य से ही भक्षण योग्य तृणों की इच्छा करता है ॥ १८ ॥ अग्नि आदि देवताओं ने ब्रह्मचर्य से ही मृत्यु

को दूर किया। ब्रह्मचर्य से ही इन्द्र ने देवताओं को स्वर्ग प्राप्त कराया ॥१९॥ व्रीहि, जौ आदि ओषधियाँ, वनोषधियाँ, दिन-रात्रि, चराचरात्मक विश्व, षट् ऋतु और द्वादश मास वाला वर्ष ब्रह्मचर्य की महिमा से ही गतिमान हैं ॥ २० ॥

पार्थिवा दिव्याः पशवः आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २१ ॥
पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥ २२ ॥
देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम्।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ २३ ॥
ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥ २४ ॥
चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥ २५ ॥
तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे।
स स्नातो बभ्रुः पिंगलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ २६ ॥

आकाश के प्राणी, पृथिवी के देहधारी पशु आदि, पङ्ख वाले और बिना पङ्ख वाले यह सभी ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ही उत्पन्न हुए हैं ॥ २१ ॥ प्रजापति के बनाये हुए देवता मनुष्य आदि सब प्राणों को धारण-पोषण करते हैं। आचार्य के मुख से निकला वेदात्मक ब्रह्म ही ब्रह्मचारी में स्थित होता हुआ सब प्राणियों की रक्षा करता है ॥ २२ ॥ यह परब्रह्म देवताओं से परोक्ष नहीं है। वह अपने सच्चिदानन्द रूप से दीप्तिमान् रहता है, उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है, उन्हीं से ब्राह्मण का सर्वश्रेष्ठ धन वेद प्रकट हुआ है और उससे प्रतिपाद्य देवता भी अमृतत्व सहित प्रकट हुए हैं ॥ २३ ॥ ब्रह्मचारी वेदात्मक ब्रह्म को धारण करता और सब प्राणियों के प्राणापानों को प्रकट करता है। फिर व्यान नामक वायु को, शब्दात्मिका वाणी को अंतः

करण और उसके आवास रूप हृदय को, वेदात्मक ब्रह्म और विद्यात्मिका बुद्धि को वही ब्रह्मचारी उत्पन्न करता है ।। २४ ।। हे ब्रह्मचारिन् ! तुम हम स्तुति करने वालों में रूप-ग्राहक नेत्र, शब्द ग्राहक श्रोत्र, यश और कीर्ति की स्थापना करो । अन्न, वीर्य, रक्त, उदर आदि की कल्पना करता हुआ ब्रह्मचारी तप में लीन रहता और स्नान से सदा पवित्र रहता है और वह अपने तेज से दमकता है ।। २५, २६ ।।

६ सूक्त

(ऋषि—शन्तातिः । देवता—अग्न्यादयो मंत्रोक्ता । छन्द—अनुष्टुप्)

अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः ।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।। १ ।।
ब्रूमो राजनं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् ।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुंचन्त्वंहसः ।। २ ।।
ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् ।
त्वष्टारमग्नियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।। ३ ।।
गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।। ४ ।।
अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।। ५ ।।
वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः ।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।। ६ ।।
मुञ्चन्तु मा शपथ्या दहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चन्तु यमाहुश्चन्द्रमा इति ।। ७ ।।
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।। ८ ।।

भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः ।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ।। ९ ।।
दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।। १० ।।

हम अग्निदेव की स्तुति करते हुए अभीष्ट फल मांगते हैं। हम महावृक्षों की, व्रीहि, यव, वनौषधि आदि की स्तुति करते हैं। इन्द्र, बृहस्पति और आदित्य की भी हम स्तुति करते है, वे पाप से हमारी रक्षा करें ।। १ ।। वरुण देवता की, मित्र, विष्णु, भग, अंस और विवस्वान् की हम स्तुति करते हैं, वे हमें पाप से छुड़ावें ।। २ ।। सर्वप्रेरक सूर्य, धाता, पूषा और त्वष्टादेव की स्तुति करते हैं, वे हमें पाप से छुड़ावें ।। ३ ।। हम गन्धर्व और अप्सराओं की स्तुति करते हैं। अश्विद्वय, वेदपति ब्रह्मा और अर्यमा की स्तुति करते हैं, वे देवता हम को पाप से छुड़ावें ।। ४ ।। दिन और रात्रि के अधिष्ठात्र देवता सूर्य-चन्द्र और अदिति के सब पुत्रों की हम स्तुति करते हैं, वे हमें पाप से छुड़ावें ।। ५ ।। वायु, पर्जन्य, दिशा-विदिशा के देवताओं की भी हम स्तुति करते हैं, वे हमें पाप से छुड़ावें ।। ६ ।। दिन और रात्रि के अभिमानी देवता मुझे शपथात्मक पाप से मुक्त करें, उषाकाल के अभिमानी देवता, चन्द्रमा रूप सोम मुझे शपथ के कारण लगे पाप से छुड़ावें ।। ७ ।। आकाश के प्राणी पृथिवी के देहधारी, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि की भी हम स्तुति करते हैं, वे हमको पाप से छुड़ावें ।। ८ ।। भव और शर्व की ओर देखते हुए हम यह कहते हैं। रुद्र और पशुपतिदेव की हम स्तुति करते हैं। इनके जिन बाणों के हम ज्ञाता हैं, वे बाण हमारे लिए सुख देने वाले हों ।। ९ ।। हम आकाश, नक्षत्र, पृथिवी, पुण्य क्षेत्र, पर्वत, समुद्र, नदी, सरोवर आदि की स्तुति करते हैं; वे हमको पाप से छुड़ावें ।।१०।।

सप्तऋषीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितॄन् यमश्रेष्ठान ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।। ११ ।।
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ।

पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १२ ॥
आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अंगिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १३ ॥
यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १४ ॥
पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १५ ॥
अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
मृत्युनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १६ ॥
ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १७ ॥
एत देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत् ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १८ ॥
विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १९ ॥
सर्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभि सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २० ॥
भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २१ ॥
या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ॥ २२ ॥
यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम् ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् ॥ २३ ॥

हम इस स्तुति को सदियों से कहते हैं । हम जल देवता की,

प्रजापति की और पितरों की स्तुति करते हैं, वे हम को पाप से छुड़ावें ॥११॥ आकाश के देवता, अन्तरिक्ष के देवता और पृथिवी के जो शक्तिशाली देवता हैं, वे हमें पाप से मुक्त करें ॥ १२ ॥ द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, अष्टावसु यह द्युलोक के देवता, अथर्व के द्रष्टा महर्षि अथर्वा, आंगिरस आदि मनीषी हमारी स्तुति से संतुष्ट होकर हमें पाप से छुड़ावें ॥ १३ ॥ हम यज्ञों की स्तुति करते हैं, उनके फल प्राप्त करने वाले यजमान की स्तुति करते हैं, यज्ञ में विनियुक्त ऋचाओं की स्तुति करते हैं। स्तोत्रों को सम्पन्न करने वाले सामों की औषधियों की, और होत्रों की हम स्तुति करते हैं, वे हमें पाप से छुड़ावें ॥ १४॥ पत्र, काण्ड, फल, पुष्प और मूल इन पाँच राज्य वाली औषधियों में श्रेष्ठ सोमलता है उसकी दर्भ, भंग, यव और सहदेवी आदि औषधियों की हम स्तुति करते हैं, यह हमको पापों से छुड़ावें ॥ १५ ॥ दान में बाधा देने वाले हिंसकों की, पीडक राक्षसों की, पिशाचों की, सर्पों की और पितरों की तथा एक सौ एक मृत्युओं की अधिष्ठात्र देवताओं की हम स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥ वसंतादि ऋतुओं की, ऋतुपति देवता वसु, रुद्र, आदित्य, ऋभु और मरुतों की तथा ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थों की, चन्द्र संवत्सरों की और सौर संवत्सरों की और चैत्रादि मासों की हम स्तुति करते हैं, यह हमको पाप से छुड़ावें ॥ १७ ॥ हे देवगण ! तुम दक्षिण दिशा में स्थित, उत्तर, पूर्व या पश्चिम दिशाओं में स्थित हो। अपनी-अपनी दिशाओं से शीघ्र आकर हमको पाप से छुड़ाओ ॥ १८ ॥ हम पत्नियों सहित विश्वेदेवाओं की स्तुति करते हुए याचना करते हैं कि वे हमें पाप से छुड़ावें ॥ १९ ॥ हम यज्ञ की वृद्धि करने वाले देवताओं की, उनकी पत्नियों सहित स्तुति करते हुए पाप से मुक्त करने की याचना करते हैं ॥२०॥ भूत, भूतों के ईश्वर और भूतों के नियामक देवता की स्तुति करते हैं। सब एकत्रित होकर यहाँ आवें और हमें पाप से छुड़ावें ॥ २१ ॥ पाँच दिशाऐं बारह मास और संवत्सर तथा दुष्ट हिंसात्मक दाढ़ों की हम स्तुति करते हैं। वे हमारे लिए सुख देने वाले हों ॥ २२ ॥ इन्द्र का सारथि मातलि जिस अमृतत्व वाली औषधि को जानता है, उसे रथ के स्वामी इन्द्र ने जल में

डाल दिया था। हे जलो! तुम मानवि द्वारा प्राप्त और इन्द्र द्वारा जल में पतित भेषज को हमें प्रदान करो।

७ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि-अथर्वा। देवता-उच्छिष्टः, अध्यात्मम्। छन्द-अनुष्टुप्; उष्णिक्; बृहती)

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥ १ ॥
उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥ २ ॥
सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ॥ ३ ॥
दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥ ४ ॥
ऋक् साम यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम्।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥ ५ ॥
ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम्।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भइव मातरि ॥ ६ ॥
राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः।
अर्काश्वमेधा वुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥ ७ ॥
अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्द सा सह।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्त्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ८ ॥
अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ९ ॥
एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥ १० ॥

(हवन के पश्चात् बचा हुआ, प्राशन के लिए रखा ओदन उच्छिष्ट कहलाता है) उस उच्छिष्ट में पृथिव्यादि लोक समाये हुए हैं, उसी में स्वर्गपति इन्द्र और पृथिवी के स्वामी अग्नि स्थित हैं, और उसी उच्छिष्ट के मध्य ईश्वर द्वारा अखिल जगत् ही स्थापित किया हुआ है ॥ १ ॥ आकाश, पृथिवी उस उच्छिष्ट में आहित हैं, उनमें वास करने वाले जीव भी उसी उच्छिष्ट में समाये हुए हैं । जल, समुद्र, चन्द्रमा और वायु—यह सभी देवता उसी उच्छिष्ट रूप ब्रह्म में समाहित हैं ॥ २ ॥ सत् और असत् उसी उच्छिष्ट में हैं । सत्-असत् से सम्बन्धित मारक मृत्यु देवता, उनका बल और उनके रचयिता प्रजापति, लोकों की प्रजाएं वरुणदेवता और अमृतत्व से युक्त सोम यह सभी उस ओदन के आश्रित हैं । उसी के प्रभाव से सम्पत्ति मेरे आश्रित हो ॥ ३ ॥ दृढ़देह वाला देवता, स्थिर किया गया लोक और वहाँ के प्राणी.विश्व के कारणरूप ब्रह्म, विश्व रचयिता नवम ब्रह्म और उनका भी रचयिता दशम ब्रह्म, जैसे रथ चक्र की नाभि सब ओर से आश्रय बनती है, वैसे ही इस उच्छिष्ट के आश्रित रहते हैं ॥ ४ ॥ उद्गीथ (गाया जाने वाला भाग), प्रस्तुत (स्तुति का जिससे प्रारम्भ होता है), स्तुत (स्तोत्र कर्म) और हिंकार युक्त ऋक्, साम, यजुर्वेद के मन्त्र उच्छिष्टनाम ब्रह्म में समाहित है ॥ ५ ॥ इन्द्राग्नि की स्तुति वाला स्तोत्र, पवमान सोम का स्तोत्र पावमान, महानाम्नी ऋचाएं, महाव्रत यज्ञ के यह अङ्ग माता के गर्भ में स्थित जीव के समान उच्छिष्ट में रहते हैं ॥६॥ राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अध्वर, अर्क और अश्वमेध और जीवबर्हि यह सभी प्रकार के यज्ञ उच्छिष्ट में ही समाहित हैं ॥ ७ ॥ अग्न्याधेय, दीक्षा, कामप्र यज्ञ और सोमयागात्मक सत्र यह सब ओदन में समाहित हैं ॥ ८ ॥ अग्निहोत्र, श्रद्धा, वषट्कार, व्रत, तप, दक्षिणा और अभीष्टपूर्ति यह सभी उस उच्छिष्ट में समाहित हैं ॥ ९ ॥ एक रात्रि और दो रात्रियों में होने वाले सोमयाग, सद्यःक्री, प्रक्री और उक्थ यह सभी उच्छिष्ट में बँधे हुए यज्ञ के सूक्ष्म रूपों सहित ब्रह्म के आश्रित रहते हैं ॥ १० ॥

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह ।

षोडशी सप्तरात्रश्नोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥११॥

प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥ १२ ॥

सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥ १३ ॥

नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिविः ।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥ १४ ॥

उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥ १५ ॥

पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्य ॥ १६ ॥

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥ १७ ॥

समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥ १८ ॥

चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥ १९ ॥

अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥ २० ॥

चतुरात्र, पंचरात्र, षड्रात्र और इनके दूने दिनों वाले, षोडशी और सप्तरात्र यज्ञ और अन्य सभी अमृतमय फल प्रदान करने वाले यज्ञ इस उच्छिष्ट से ही प्रकट हुए हैं ॥ ११ ॥ प्रतिहार, निधन, विश्वजित्, अभिजित्, साह्न, अतिरात्र, द्वादशाह यह सभी यज्ञ उसी उच्छिष्ट रूप ब्रह्म के आश्रित हैं। यह सब यज्ञ मुझमें स्थित हों ॥ १२ ॥ सूनृता, संनति, क्षेम, स्वधा,

ऊर्जा, अमृत, सह यह सभी कामना योग्य फल ब्रह्माश्रित हैं। यह सभी काम्य फल सहित यजमान की तृप्ति करने वाले हैं ॥ १३ ॥ नौखण्ड वाली पृथिवी, सप्त समुद्र और आकाश उस उच्छिष्ट रूप ब्रह्म में समाहित हैं। सूर्य भी उसी ब्रह्म के आश्रित हुए दमकते हैं, दिन-रात भी उसी के आश्रय में हैं। यह सब मुझमें हों ॥ १४ ॥ उपहव्य, विषूवान् और अज्ञात यज्ञों को भी यह उच्छिष्ट रूप ब्रह्म धारण करते हैं। वही ओदन संसार का पोषक और अनुष्ठता का जनक है ॥ १५ ॥ यह उच्छिष्ट अपने उत्पादनकर्ता को अन्य लोक में दिव्य शरीर दिलाने वाला होने से उसका जनक है। यही ओदन प्राण का पौत्र रूप है, परन्तु अन्य लोक में प्राण का पितामह है। अतः वह उच्छिष्ट सब का ईश्वर है और अभीष्ट देता हुआ पृथिवी में रहता है ॥ १६॥ ऋत, सत्य, तप, राष्ट्र श्रम, धर्म, कर्म भूत, भविष्य वीर्य लक्ष्मी और बल यह सब उस उच्छिष्टात्मक ब्रह्म के आश्रित हैं ॥ १७ ॥ समृद्धि, ओज, आकूति, क्षात्र तेज, राष्ट्र, संवत्सर और छै उर्वियाँ यह सभी मेरे रक्षक हों। इडा, प्रैष, ग्रह, हवि यह सभी उस उच्छिष्ट में समाहित हैं ॥ १८ ॥ चतुर्होता आप्रिय, चतुर्मासात्मक वैश्वदेव यह सभी उच्छिष्टमाण ब्रह्म में समाहित हैं ॥ १९ ॥ आधा महीना, महीने, ऋतुऐं, आर्तव, घोषयुक्त जल, गर्जनशील मेघ, पवित्र पृथिवी यह सभी उस उच्छिष्यमाण ब्रह्म में समाहित हैं ॥ २० ॥

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥ २१ ॥
राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥ २२ ॥
यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २३ ॥
ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २४ ॥
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च या।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २५ ॥
आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २६ ॥
देवा पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २७ ॥

शर्करा, रेत, पाषाण, औषधि, लता, तृण, मेघ, विद्युत और सभी समवेत पदार्थ उसी उच्छिष्यमाण ब्रह्म में आश्रित हैं ॥ २१ ॥ राद्धि प्राप्ति समाप्ति, व्याप्ति, तेज, अभिवृद्धि, समृद्धि, अत्याप्ति यह सभी उच्छिष्यमाण ब्रह्म में आश्रित हैं ॥ २२ ॥ प्राणन व्यापार वाले जीव, नेत्रेन्द्रिय से देखने वाले प्राणी, स्वर्ग में स्थित देवता, पृथिवी के देवता यह सभी उस उच्छिष्यमाण ब्रह्म से ही उत्पन्न हुए ॥ २३ ॥ ऋक्, साम, छन्द, पुराण, यजुर्वेद, आकाश के देवता यह सभी उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ प्राण, अपान, चक्षु, कान, अक्षय और दिव्यलोक के सभी देवता उच्छिष्ट से ही प्रादुर्भूत हुए ॥ २५ ॥ आनन्द, मोद, प्रमोद अभिमोदमुद और स्वर्ग के निवासी देवता यह सभी उच्छिष्ट से प्रादुर्भूत हुए ॥ २६ ॥ देवता, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा और सब द्युलोक के देवता इस उच्छिष्ट से ही उत्पन्न हुए ॥ २७ ॥

८ सूक्त

(ऋषि—कौरुपथिः । देवता—मन्युः अध्यात्मम् । छन्द—अनुष्टुप्; पंक्ति)

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ १ ॥
तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ २ ॥
दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ॥ ३ ॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥ ४ ॥
आजाता आसन्नृतवोऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ५ ॥
तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ६ ॥
येत् आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः ।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित् ॥ ७ ॥
कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत ।
कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो धाताजायत ॥ ८ ॥
इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत ॥ ९ ॥
ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १० ॥

मन्यु ने जाया को संकल्प के घर से विवाहा । उससे पहिले सृष्टि न होने से वर पक्ष कौन हुआ और कन्या पक्ष कौन हुआ ? कन्या के वरण कराने वाले बराती कौन थे और उद्वाहक कौन था ? ॥ १ ॥ तप और कर्म ही वरपक्ष और कन्यापक्ष वाले थे, यही बराती थे और उद्वाहक स्वयं ब्रह्म था ॥ २ ॥ पहले दश देवता उत्पन्न हुए । जिसने इन देवताओं को प्रत्यक्ष रूप से जान लिया वही ब्रह्म का उपदेश करने में समर्थ है ॥ ३ ॥ प्राण, अपान नामक वृत्तियाँ, चक्षु, कान, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान, वाणी, मन, आकूति—यह सभी कामनाओं को अभिमुख करते हुए उन्हें पूर्ण कराते हैं ॥ ४ ॥ सृष्टिकाल में ऋतुऐं उत्पन्न नहीं हुई थीं धाता, बृहस्पति, इन्द्र, अग्नि और अश्विनीकुमार भी उत्पन्न नहीं हुए थे । तब इन धाता आदि ने किस बड़े कारणभूत उत्पादक की अभ्यर्थना की ? ॥ ५ ॥ तप और कर्म ही

उपकरण रूप थे । कर्म से तप उत्पन्न हुआ था । इसलिए वे धाता आदि अपने द्वारा किये हुए महान् कर्म की ही अपने उत्पादन के लिए प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥ वर्तमान पृथिवी से पूर्व विगत युग की जो पृथिवी थी, उसे तप द्वारा सर्वज्ञ होने वाले महर्षि ही जानते हैं । जो विद्वान् विगत युग की पृथिवी में स्थित वस्तुओं के नाम को जानने वाला है, वही इस वर्तमान पृथिवी को जानने में समर्थ है ॥ ७ ॥ इन्द्र किस कारण से उत्पन्न हुआ, सोम, अग्नि, त्वष्टा और धाता किस किस कारण से उत्पन्न हुए ? ॥ ८ ॥ विगत युग में जैसा इन्द्र था वैसा ही इस युग में हुआ है । जैसे सोम' अग्नि, त्वष्टा और धाता पुरातन युग में थे, वैसे ही इस युग में भी हुए ॥ ९ ॥ जिन अग्नि आदि देवताओं से प्राणापान रूप दश देवता उत्पन्न हुए, वे अपने पुत्रों को अपना स्थान देकर किस लोक में निवास करते हैं ? ॥ १० ॥

यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत् ।
शरीरं कृत्वा पादवत् क लोकमनु प्राविशत् ॥ ११ ॥
कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् ॥ १२ ॥
संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १३ ॥
ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समदधादृषिः ॥ १४ ॥
शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संधा समदधान्मही ॥ १५ ॥
तत्तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत् ।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत ॥ १६ ॥
सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत ॥ १७ ॥

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १८ ॥
स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् ॥ १९ ॥
स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २० ॥

सृष्टि के समय जब विधाता ने बाल, अस्थि, नसें, मांस, मज्जा को संचित किया तो उनसे शरीर की रचना कर उसने किस लोक में प्रवेश किया ? ॥ ११ ॥ किस उपादान से केश संग्रहीत किये ? स्नायु कहां से प्रकट हुआ ? अस्थियां कहां से आईं, मज्जा और मांस कहां से मिला ? यह सब अपने में से ही इकट्ठा किया. ऐसा अन्य कौन कर सकता है ? ॥ १२ ॥ संसिच् नाम के देवता मरणशील देह को रक्त से भिगो कर उसे पुरुषाकृति में बना, उसी में प्रविष्ट होगये ॥ १३ ॥ घुटनों पर वर्तमान जंघाएं, घुटनों के नीचे पांव, जांघों और पावों के मध्य घुटने, शिर, हाथ, मुख, वजंक्षु, पसलियां और पीठ इन सब को किसने परस्पर मिलाया ? ॥ १४ ॥ शिर, हाथ, मुख, जीभ, कण्ठ और हड्डियों को चर्म से आवृत्त कर देवताओं ने अपने-अपने कर्म में प्रवृत्त किया ॥ १५ ॥ सधात्री देव के द्वारा जिसके अवयव इस प्रकार जुड़े हैं,वह देहों में वर्तमान हैं,वह देह जिस श्याम-गौर वर्ण से युक्त है, उसमें किस देवता ने वर्ण की स्थापना की ? ॥ १६ ॥ इस शरीर के समीप सब देवता रहना चाहते थे इसलिए वधू बनने वाली आद्या ने देवताओं की इस इच्छा को जान कर छै कोश देह में नील, पीत, गौर आदि रङ्गों की स्थापना की ॥ १७ ॥ इस संसार के रचयिता ने जब नेत्र, कान आदि छिद्रों को बनाया तब त्वष्टा के द्वारा बहुत से छेद वाले पुरुष-देह को घर बना कर प्राण, अपान और इन्द्रिय ने प्रवेश किया ॥ १८ ॥ स्वप्न, निद्रा, आलस्य, निर्ऋति, पाप इस पुरुष देह में घुस गये और आयु हरण करने वाली जरा, चक्षु, मन, खालित्य, पालित्य आदि के अभिमानी देवता भी उसमें प्रविष्ट

होगए ॥ १९ ॥ चोरी, दुष्कर्म, पाप, सत्य, यज्ञ, यश, महान् बल, क्षात्र-धर्म और ओज भी मनुष्य-देह में प्रविष्ट होगए ॥ २० ॥

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २१ ॥

निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ॥ २२ ॥

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥ २३ ॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥ २४ ॥

आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥ २५ ॥

प्राणापानौ चक्षु श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥ २६ ॥

आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥ २७ ॥

आस्नेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ॥ २८ ॥

अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥

या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥ ३० ॥

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ ३१ ॥

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठइवासते ॥ ३२ ॥
प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।
अदएकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ॥ ३३ ॥
अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिञ्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ॥ ३४ ॥

समृद्धि, असमृद्धि, शत्रु, मित्र, भूख, प्यास आदि सब इस मनुष्य देह में घुस गए ॥२१॥ निन्दा, अनिन्दा, हर्षोत्पादक वस्तु, अहर्षोत्पादक, श्रद्धा, धन समृद्धि, दक्षिणा, अश्रद्धा आदि भी पुरुष-देह में प्रविष्ट हुए ॥२२॥ ज्ञान, अज्ञान, उपदेश्य, ऋक्, साम, यजुर्वेद आदि सब ने इस मनुष्य देह में प्रवेश किया ॥२३॥ आनन्द, मोद, प्रमोद, हास्य, शब्द स्पर्श, विष, नर्तन यह सब मनुष्य देह में प्रविष्ट हुए ॥२४॥ आलाप, प्रलाप, अभिलाप, आयोजन, प्रयोजन, योजन, इन सभी ने पुरुष देह में प्रवेश किया ॥२५॥ प्राण, अपान, नेत्र, कान, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान, मन, वाणी यह सभी पुरुष देह में प्रविष्ट होते और अपने-अपने कर्मों में लगते हैं ॥२६॥ आशिष, प्राशिष, शासन तथा मन की सब वृत्तियों ने पुरुष देह में प्रवेश किया ॥२७॥ स्नान-जल, प्राण-स्थिर रखने वाले जल, स्वरणजल, अल्प जल, गुहास्थित जल, वीर्यरूपी जल, स्थूल जल और सर्व व्यवहारास्पद जल सभी अपने कर्म सहित शरीर में प्रविष्ट हुए ॥२८॥ प्राणियों की हड्डियों को समिन्धन-साधन बनाकर आठ जलों ने शरीर में प्रवेश किया और उसमें वीर्यरूप धृत को बनाया। इस प्रकार इन्द्रियों और उसके अधिष्ठात्र देवताओं ने पुरुष देह में प्रवेश किया ॥२९॥ पूर्वोक्त जल, इन्द्राभिमानी देवता, विराट् संज्ञक, देवता, ब्रह्मतेज वाले देवता शरीर में प्रविष्ट हुए। फिर संसार के कारणभूत ब्रह्म भी अलक्षित रूप से प्रविष्ट हुए। उस शरीर में पुत्रादि का उत्पादक जीव स्थित रहता है ॥३०॥ सूर्य ने नेत्रेन्द्रिय को स्वीकार किया, वायु ने घ्राणेन्द्रिय को ग्रहण किया और इसके छै कोश वाले

शरीर को सब देवता अग्नि को भाग रूप में प्रदान करते हैं ॥ ३१ ॥ इसलिए ज्ञानी पुरुष शरीर को भीतर बाहर व्याप्त होकर ब्रह्म ही मानता है क्योंकि गौओं के गोष्ठ में रहने के समान सब देवता इस शरीर में रहते हैं ॥ ३२ ॥ पहले उत्पन्न देह के अवसान पर वह त्यक्तदेह आत्मा तीन प्रकार से नियमों में बंध जाता है। पुण्य से स्वर्ग को प्राप्त करता और पाप से नरक को पाता है और पुण्य पाप दोनों के योग से इस पृथिवी में उत्पन्न होकर सुख दुःख रूप भोगों को भोगता है ॥ ३३ ॥ शुष्क संसार को गीला करने वाले अवृक्ष जलों में ब्रह्माण्ड सम्बन्धी देह स्थित है। उसके भीतर और ऊपर परमेश्वर रहता है। वह देह से अधिक होने के कारण सूत्रात्मा कहाता है ॥ ३४ ॥

९ सूक्त (पाँचवा अनुवाक)

(ऋषि—काङ्कायनः। देवता—अर्बुदिः। छन्दः शक्वरी; अनुष्टुप्; उष्णिक्; जगती; पंक्तिः; त्रिष्टुप्; गायत्री)

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च।
असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥१॥
उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥२॥
उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम्।
अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥३॥
अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः।
याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥४॥
उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह।

भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥ ५ ॥
सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् ।
तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥ ६ ॥
प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ ७ ॥
संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती ।
पतिं भ्रातरमात् स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥ ८ ॥
अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ।
ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥ ९ ॥
अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः ।
पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव ॥ १० ॥

शस्त्रों को उठाने में समर्थ हमारे वीरों के जो हाथ हैं, वे खड्ग, फरसा, धनुष-बाण आदि धारण किये हुए हैं । हे अर्बुद ! तू उन्हें हमारे शत्रुओं को दिखा, जिससे वे भयभीत हो जावें ॥ १ ॥ हे देवताओ ! तुम हमारी विजय में प्रवृत्त होने वाले हो । अब संग्राम को तैयार होओ । तुम्हारे द्वारा हमारे वीर भले प्रकार रक्षा को प्राप्त हों ॥२॥ हे अर्बुदे ! तुम और न्यर्बुदि दोनों अपने स्थान से उठकर संग्राम करो और आदान-संदान नामक रस्सियों से शत्रु-सेना को वशीभूत करो ॥ ३ ॥ अर्बुदि और न्यर्बुदि नामक जो सर्प देवता हैं, उनसे समस्त संसार घिरा हुआ है, उन्होंने अपने शरीर से सम्पूर्ण विश्व को और भूमि को भी बाँध रखा है । यह दोनों देवता युद्ध विजय के कार्य में सदा लगे रहते हैं ॥ ४ ॥ इन श्रेष्ठ अर्बुदि और न्यर्बुदि द्वारा विजित् शत्रु के बल पर मैं अपनी सेना सहित आक्रमण करूँगा । हे अर्बुदे ! तुम अपनी सेना सहित उठो और शत्रुओं की सेना का संहार करते हुए अपने सर्प देह से उसे घेर लो ॥ ५ ॥ हे न्यर्बुदि नामक सर्प देव ! तुम दृष्टि को निर्बल करने वाले उत्पातों को शत्रु पर करते हुए हविर्दान के अनन्तर हमारी सेना के सहित उठ पड़ो ॥ ६ ॥ हे अर्बुदे ! जब तू मेरे शत्रु को डस कर मार डालो तब

उसकी ओर मुख करके उसकी स्त्री अपने वक्ष को कूटे और अश्रुपात करती हुई, आभूषण उतार कर बालों को खोलती हुई रुदन करे ॥ ७ ॥ हे अर्बुदे ! डसने के पश्चात् विष का आवेग होने पर शत्रु की स्त्री हाथ-पैर के जोड़ों की हड्डियों को दबाकर करुणामय शब्द कहे । फिर विष का प्रतिकार करने के लिए पुत्र, भाई आदि किससे कहे, इस प्रकार कर्तव्य-ज्ञान से रहित हो जाय ॥ ८ ॥ हे अर्बुदे ! तेरे द्वारा डसे जाने पर हमारे शत्रु के मरण की प्रतीक्षा करने वाले गिद्ध, श्येन, काक आदि पक्षी उसके मांस भक्षण द्वारा तृप्त हों ॥ ९ ॥ हे अर्बुदे ! गीदड़, व्याघ्र, मक्खी और मांस के सड़ने पर उत्पन्न होने वाले कीड़े शत्रु को तेरे द्वारा काट लेने पर उसके शव पर पहुँचते हुए तृप्ति को प्राप्त करें ॥ १० ॥

आ गृह्णीतं सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे ।
निवाशा घोषाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥ ११ ॥

उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज ।
उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥ १२ ॥

मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं यदधृदि ।
मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव ॥ १३ ॥

प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः ।
अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ १४ ॥

श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे ।
अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ।
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ १५ ॥
खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् ।
य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये । सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥१६
चतुर्दंष्ट्राञ्छ्यावदतः कुम्भमुष्कां असृङ्मुखान् ।
स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥ १७ ॥

उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः ।
जयांश्च जिष्णुश्चामित्राञ्जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥ १८ ॥
प्रब्लीनो मृदितः शयां हतोऽमित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥ १९ ॥
तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।
अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ॥ २० ॥

हे न्युर्बुदे ! अर्बुद ! तुम दोनों, शत्रु के प्राणों को ग्रहण कर उसे समूल उखाड़ डालो। तेरे द्वारा दंशित होने पर शत्रु क्रंदन करने लगे ॥११॥ हे न्युर्बुदे ! तुम हमारे शत्रुओं को कम्पित करो। वे अपने स्थान से भ्रष्ट होते हुए व्यथित हों। उनको भयभीत करते हुए उन्हें हाथ-पाँवों की क्रियाओं से भी हीन कर दो ॥ १२ ॥ हे अर्बुदे ! तुम्हारे द्वारा दंशित होने पर शत्रु की भुजायें विष के कारण निर्वीर्य हो जाँय। शत्रुओं की इच्छाएं विस्मृत हो जाँय। उनके पास रथ, अश्व, गज कुछ भी शेष न रहे ॥ १३ ॥ हे अर्बुदे ! तुम्हारे द्वारा दंशित होने पर शत्रुओं की स्त्रियाँ वक्ष कूटती हुई बालों को खोलकर पति के वियोग से रोती हुई अपने पति की ओर जाँय ॥ १४ ॥ हे अर्बुदे, तुम क्रीडार्थ श्वानों को साथ में रखने वाली अप्सराओं को, माया रूपी सेनाओं को शत्रुओं को दिखाओ, उल्कापात और विकृत दिखाई पड़ने वाले दैत्यों को हमारे शत्रुओं को दिखाओ ॥ १५ ॥ द्युलोक में दूर घूमने वाली माया रूपिणी का शत्रुओं को दिग्दर्शन कराओ। अपनी माया से लक्षित यक्ष, राक्षस, गन्धर्वों को शत्रुओं को दिखाकर भयभीत करो ॥ १६ ॥ सर्व रूप देवता, इतरजन, काले दाँत वाले दैत्य, घटाण्डकोश वाले, रक्त से सने मुख वाले राक्षसों को भी अपनी माया द्वारा शत्रुओं को दिखाओ ॥१७॥ अर्बुदे, तुम शत्रु-सेनाओं को विष के वेग से शोक करने वाली बनाओ और उसे कम्पायमान करो। तुम दोनों इन्द्र के मित्र हो। हमारे शत्रुओं को हराते हुए हमको विजय प्राप्त कराओ ॥ १८ ॥ हे न्यर्बुदि, भय से कम्पित हुआ हमारा शत्रु अङ्गों के टूटने पर मर कर सो जाय। अग्नि की धूमशिखा युक्त

सेनाएँ हमारी सेना के साथ गमन करें ।। १९ ।। हे अर्बुदे, हमारे शत्रुओं में जो श्रेष्ठ हों उन्हें चुन-चुन कर इन्द्र हिंसित कर डालें । उनमें से कोई भी शेष न रहे ।। २० ।।

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु ।
शौष्कास्यमनु वर्ततामभित्रान् मोत मित्रिणः ।। २१ ।।
ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये ।
तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिनः ।। २२ ।।
अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ।। २३ ।।
वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ।।२४।।
ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।
ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ।।२५।।
तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ।। २६ ।।

शत्रुओं के देह से अन्तःकरण और प्राण वायु पृथक् हों । भय के कारण वे सूख जाँय । हमारे मित्रों को यह भय जनित सूखा प्राप्त न हो ।।२१।। धीर, कायर, युद्ध में पीठ दिखाने वाले, भीत कर्त्तव्य विमूढ़ जो योद्धा हमारे पक्ष में हैं, उन्हें हे अर्बुदे ! अपनी माया से शत्रुओं को पराजय दिखाने में सामने करो ।। २२ ।। हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओं को जिन सहस्रों प्रकार से नष्ट कर सको, उन्हीं विधियों से उन्हें नष्ट करो । त्रिसंधि नामक देवता और अर्बुद हमारे शत्रुओं को अनेक प्रकार से नष्ट करें ।। २३ ।। हे अर्बुदे ! वृक्ष, वृक्षों से

निर्मित वस्तु: व्रीहि, जौ, लता, गन्ध, अप्सराऐं और पूर्व पुरुषों को हमारे शत्रुओं को दिखाओ और उन्हें अन्तरिक्ष के उत्पातों को दिखाते हुए भयभीत करो ॥ २४ ॥ हे शत्रुओ ! मरुद्गण तुम्हें दण्ड दें, इन्द्राग्नी नियन्त्रित करें, ब्रहस्पति, धाता, मित्र, प्रजापति, अथर्वा, अङ्गिरा आदि तुम्हें शिक्षा दें। तुम्हारे द्वारा दंशित होने पर इन्द्रादि भी शत्रु को दण्ड देने वाले हों ॥ २५ ॥ हे देवगण ! तुम हमारे मित्र रूप हो । हमारे शत्रुओं को शिक्षा देने को तैयार होओ और तुम इस युद्ध को जीतकर अपने-अपने स्थान को लौट जाओ ॥ २६ ॥

१० सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिराः । देवता—त्रिषन्धिः । छन्दः—बृहती, जगती; पंक्ति अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्; शक्वरी; गायत्री;)

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥ १ ॥

ईशां वो वेदराज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह ।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः ।
त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् ॥ २ ॥

अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः ।
क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना ॥ ३ ॥

अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणप बहु ।
त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥ ४ ॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ॥ ५ ॥

शितिपदी सं द्यतु शरव्येयं चतुष्पदी ।
कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया ॥ ६ ॥

धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥ ७ ॥
अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति ।
श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥ ८ ॥
यामिन्द्रेण सधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ॥ ९ ॥
बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।
असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धिं दिव्याश्रयन् ॥ १० ॥

हे सेनानायको ! तुम अपनी ध्वजाओं सहित इस संग्राम के लिए कटिबद्ध होओ । कवचादि धारण कर रणक्षेत्र के लिए कूच करो । हे देवताओ, हे राक्षसो ! तुम हमारे शत्रुओं को खदेड़ते हुए दौड़ो ॥ १ ॥ हे शत्रुओ ! त्रिसंधि नामक वज्र का अभिमानी देवता तुम्हारे राज्य को दण्डनीय माने । हे त्रिसंधे ! तुम अपनी अरुण ध्वजाओं सहित उठो और अंतरिक्ष, आकाश और पृथिवी में जो केतु उत्पात रूप वाले हैं, उनके सहित उठो ॥ २ ॥ हे त्रिसंधे ! तुम्हारे मन में जो दुष्ट जीवों का दल है वह हमारे शत्रु की कामना करे । वे जीव लौह-चोंच, सुई समान नोक वाली चोंच, कांटेदार मुख वाले होते हैं । वे मांस भक्षी पक्षी तुम्हारी प्रेरणा से वायु के से वेग से शत्रुओं पर छा जांय ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! आदित्य को आच्छादित करो । त्रिसंधि देवता की सेना भले प्रकार मेरे वशीभूत हो । हम अपने शत्रुओं पर उस सेना के द्वारा महान् विजय प्राप्त करें ॥ ४ ॥ हे अर्बुद देव ! अपनी सेना सहित उठो । यह आहुति तुम्हें तृप्त करने वाली हो । त्रिसंधि देव की सेना भी हमारी आहुति से तृप्त होती हुई हमारे शत्रुओं को नष्ट कर डाले ॥५॥ यह चार पांव वाली गौ बाण-रूप होकर शत्रुओं पर गिरे । हे कृत्या रूप वाली श्वेत पदी धेनु ! शत्रुओं के निमित्त तू साक्षात् कृत्या बन और त्रिसंधि देवता की सेना भी तेरे इस कार्य में पूर्ण रूप से सहायक हो ॥ ६ ॥ मायामय धुएं से शत्रु की सेना के नेत्र आच्छादित हो जांय और फिर वह गिरने लगे । उसकी श्रवण

शक्ति नगाड़ों के घोषों से नाश को प्राप्त हो। जब त्रिसंधि देवता शत्रु विजय की इच्छा से अपने केतु को रक्त वर्ण का करे तब शत्रु रोने लगें ॥७॥ शत्रु दल के मरकर गिरने पर आकाश में उड़ने वाले पक्षी उनके मांस भक्षणार्थ नीचे हों। शृगाल और मक्खियाँ उन पर आक्रमण करें। कच्चा मांस खाने वाले गिद्ध उन्हें अपनी चोंचों और पंजों से कुरेद डालें ॥ ८ ॥ हे बृहस्पते! तुमने इन्द्र और उनके उत्पत्तिकर्त्ता ब्रह्मा से जो संधान क्रिया ली है, उससे मैं इन्द्रादि देवताओं को इस युद्ध में आहूत करता हूँ। हे देवताओ! हमारी सेनाओं को जिताओ और शत्रु सेना को हराओ ॥ ९ ॥ अंगिरा-पुत्र बृहस्पति और अपने मंत्र से तेज को प्राप्त हुए अन्य महर्षि भी, राक्षसों का नाश करने वाले हिंसा-साधन वज्र की सहायता लेते हैं ॥ १० ॥

येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।
त्रिषन्धिदेवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥ ११ ॥
सर्वाल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।
बृहस्पतिरांगिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥ १२ ॥
बृहस्पतिरांगिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥ १३ ॥
सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम् ।
इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥ १४ ॥
सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ।
संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥ १५ ॥
वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु ।
इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥ १६ ॥
यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥ १७ ॥

क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् ।
त्रिपन्धे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥ १८ ॥
त्रिपन्धे तमसा त्वममित्रान् परि वारय ।
पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥ १९ ॥
शितिपदी सं पतत्वमित्राणाममूः सिचः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥ २० ॥

त्रिसंधि देवताओं ने राक्षसों के उत्पातों को मिटाकर जिस आदित्य की रक्षा की, वह आदित्य और इन्द्र उन्हीं त्रिसंधि के बल से स्वर्ग में निर्भय रहते हैं। देवगण, राक्षसों के संहार-साधन त्रिसंधि की ओज और बल की प्राप्ति के निमित्त सेवा करते हैं ॥११॥ अङ्गिरा पुत्र बृहस्पति ने जिस संहार साधन को खींच कर बनाया था, इन्द्रादि देवताओं ने उस पृषदाज्य यज्ञ द्वारा राक्षसों का संहार कर, सब लोकों को पाया था ॥१२॥ राक्षसों के हनन-साधन जिस वज्र को अङ्गिरा पुत्र बृहस्पति ने बनाया था, हे बृहस्पते ! मैं शत्रु की सेना का मंत्र बल से युक्त उसी वज्र द्वारा संहार करता हूँ ॥१३॥ हवियों को भोगने वाले इन्द्रादि देवता शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर हमारे पास आ रहे हैं। ऐसे देवताओं ! शत्रु को हराओ और हमको जितादो ॥१४॥ हमारी यह हवि त्रिसंधि देव को तृप्त करे। शत्रुओं को लांघ कर इन्द्रादि सब देवता हमारी ओर आवें। हे देवगण ! हमारी विजय प्रतिज्ञा को पूर्ण करो। तुमने इसी प्रण से राक्षसों पर विजय प्राप्त की थी ॥१५॥ इन्द्र इन शत्रुओं की भुजाओं को शस्त्र ग्रहण करने में असमर्थ करें। वायु इन शत्रुओं के बाणों के अगले भाग पर पहुँच कर उन्हें निर्वीर्य करें और वे अपने बाणों को पुनः न चढ़ा पावें। सूर्य इन्हें शक्तिहीन करें, चन्द्रमा शत्रु के हमारी ओर आने वाले मार्ग को लुप्त करें ॥१६॥ हे देवगण ! शत्रुओं ने यदि पहले ही मंत्रमय कवच बना लिए हों तो तुम उन्होंने जो मंत्र कहा हो उसे व्यर्थ करदो ॥१७॥ हे त्रिसंधि देव ! सामने खड़े इस शत्रु को मांस भक्षक दैत्य के सामने करो। तुम उस पर अपनी सेना सहित आक्रमण करते हुए शत्रु के मध्य में पहुँ-

जाओ ॥ १८ ॥ हे त्रिसंधे ! अपनी माया से प्रकट अंधकार द्वारा उन्हें सब ओर से घेर लो और पृषदाज्य के द्वारा इन्हें खदेड़ो । इन शत्रुओं में से एक भी शेष न बचे ॥ १९ ॥ हमारे शस्त्रों से पीड़ित हुई शत्रु सेना में श्वेत पाद वाली गौ कूद पड़े । हे न्युर्बुदे ! दूर पर दिखाई पड़ने वाली शत्रु सेना मोह में पड़ कर कर्तव्य ज्ञान से रहित हो ॥ २० ॥

मूढा अमित्रा न्युर्बुदे जह्येषां वरंवरम् । अनया जहि सेनया ॥ २१ ॥
यश्च कवची यश्चाकवचोमित्रो यश्चाज्मनि ।
ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥ २२ ॥
ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।
सर्वास्तां अर्बुदे हतांञ्छ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥ २३ ॥
ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥ २४ ॥
सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे बधानाम् ।
विविद्धा ककजाकृता ॥ २५ ॥
मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् ।
य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥ २६ ॥
यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना ॥ २७ ॥

हे न्युर्बुदे ! तुम हमारे शत्रुओं को अपनी माया द्वारा कर्त्तव्य ज्ञान से शून्य करो । शत्रुओं में जो श्रेष्ठ हों, उन्हें ढूंढ़-ढूंढ़ कर मारो । हमारी सेना द्वारा भी उनका नाश कराओ ॥ २१ ॥ कवचधारी, कवचहीन, नग्न, रथादि पर चढ़ा हुआ जो भी शत्रु हो वह पाशों द्वारा बाँधा जाकर निश्चेष्ट सो जाय ॥ २२ ॥ हे अर्बुदे ! कवचधारण किये हुए, कवच रहित, अनेक रक्षा-साधनों से युक्त जो शत्रु हैं, वे तुम्हारे द्वारा नाश को प्राप्त हों और फिर उन्हें श्वान और शृगाल भक्षण कर डालें ॥ २३ ॥ हे अर्बुदे ! रथारोही,

रथ रहित, अश्वारोही, अश्व रहित जो शत्रु हैं, वे सब तुम्हारी कृपा से मृत्यु को प्राप्त हों और उन्हें गिद्ध आदि नोंच नोंच कर खा डालें ॥ २४ ॥ हमारी सेना के निकट आने वाली शत्रु-सेना बुरी तरह आहत हो और मृत्यु को प्राप्त होती हुई कुत्सित जन्म को प्राप्त करे ॥ २५ ॥ हमारी पृषदाज्य आहुति को लौटा कर शत्रु हमसे संग्राम करने की इच्छा करता है, हमारे बाणों से उसका मर्म स्थान टूक टूक हो। वह रोता हुआ धराशायी हो और श्वान, शृगाल उसे भक्षण कर डालें ॥ २६ ॥ जिस पृषदाज्य हवि को वज्र की उत्पत्ति के लिए देवगण करते हैं और जो हवि कभी व्यर्थ नहीं होती, उस हवि के द्वारा उत्पन्न हुए वज्र से देवाधिपति इन्द्र हमारे शत्रुओं का संहार करें ॥ २७ ॥

॥ एकादशं काण्डं समाप्तम ॥

द्वादश काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—भूमिः । छन्द—त्रिष्टुप्; जगती; पंक्ति; अष्टि; शक्वरी, बृहती; अनुष्टुप्; गायत्री)

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी न कृणोतु ॥ १ ॥
असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥ २ ॥
यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ ३ ॥
यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥ ४ ॥
यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ ५ ॥
विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥ ६ ॥
यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥
यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८ ॥
यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥
यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १० ॥

ब्रह्म, तप, सत्य, यज्ञ, दीक्षा और बृहत् जल पृथिवी के धारण करने वाले हैं। ऐसी यह भूत और भविष्यत् जीवों की पालनकर्त्री पृथिवी हम को स्थान दे ॥ १ ॥ जिस पृथिवी में चढ़ाई, उतराई और समतल स्थान हैं, जो अनेक सामर्थ्यों से ओषधियों को धारण करती है वह पृथिवी हमको भले प्रकार प्राप्त हो और हमारी कामनाओं को सफल करे ॥ २ ॥ समुद्र, नदियों और जल से सम्पन्न पृथिवी, जिसमें कृषि और अन्न होता है, जिससे यह प्राणवान् संसार तृप्त होता है, वह पृथिवी हमको फल रूप रस उपलब्ध होने वाले प्रदेश में प्रतिष्ठित करे ॥ ३ ॥ जिस पृथिवी में चार

दिशाऐं है, जिसमें कृषि और अन्न होता है जो प्राणवान् संसार की आश्रय रूप है, वह पृथिवी हम को गौ और अन्न से युक्त करे ॥४॥ पूर्व पुरुषों ने जिस पृथिवी में अनेक कर्म किए, जिस पृथिवी में देवताओं ने दैत्यों से संग्राम किया जो गौ, घोड़े और पक्षियों के आश्रय रूप है, वह पृथिवी वर्च (तेज) और ऐश्वर्य दे ॥५॥ जो पृथिवी धनों की धारणकर्त्री, संसार की भरणकर्त्री, सुवर्ण को वक्ष में धारण करने वाली और विश्व की आश्रय रूपा है, वह वैश्वानर अग्नि को धारण करने वाली पृथिवी हमको द्रव्य दे ॥ ६ ॥ जिस पृथिवी की रक्षा देवता जागृत रहते हुए करते हैं, वह पृथिवी हमको प्रिय एवं मधुर धनों से और वर्च से युक्त करे ॥ ७ ॥ जो पृथिवी समुद्र में थी, विद्वान् जिस पृथिवी पर श्रम करते हुए विचरते हैं, जिसका हृदय आकाश में स्थित है, वह अमृतमयी पृथिवी हमको श्रेष्ठ राष्ट्र, बल और दीप्ति में प्रतिष्ठित करे ॥८॥ जिस पृथिवी में प्रवाहमान जल समान गति से दिन और रात्रि में भी गमन करते हैं, ऐसी भूरि धारा पृथिवी हमको दूध के समान सार रूप फल और वर्च से युक्त करे ॥९॥ जिस पृथिवी को अश्विनीकुमारों ने बनाया, विष्णु ने जिस पर विक्रमण किया, इन्द्र ने जिसे अपने अधीन कर शत्रुओं से हीन किया, वह पृथिवी, माता द्वारा पुत्र को दूध पिलाने के समान दूध के समान सार रूप जल मुझे प्रदान करे ॥ १० ॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतोअक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥
यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥ १२ ॥
यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥ १३ ॥

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥
त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५ ॥
ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६ ॥
विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७ ॥
महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥१८॥
अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ १९ ॥
अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निमर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥ २० ॥

हे पृथिवी ! तेरे पहाड़, हिम प्रदेश और जंगल हमारे लिये सुख देने वाले हों। अनेक रंग वाली इन्द्रगुप्ता पृथिवी पर मैं क्षय रहित पराजय-रहित रूप से सदा प्रतिष्ठित रहूँ ॥ ११ ॥ हे पृथिवी ! तेरे मध्य भाग (नाभि के भाग) से शरीर को पुष्ट करने वाले जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनमें मुझे प्रतिष्ठित करो। मेरी माता भूमि और पिता मेघ हमको पवित्र करते हुए पुष्ट करें ॥ १२ ॥ जिस पृथिवी में वेदी बना कर सम्पूर्ण कर्मों वाले यज्ञ को करते हैं, जिस पृथिवी पर आहुति देने से पूर्व ही यज्ञ स्तम्भ स्थित होते हैं, वह प्रवृद्ध पृथिवी हमारी वृद्धि करे ॥ १३ ॥ हे पृथिवी ! जो हमारा वैरी सेना एकत्र कर हमको क्षीण करता हुआ मारना चाहे, तुम हमारे निमित्त उन्हें नष्ट कर डालो ॥ १४ ॥ हे पृथिवी ! तुम पर जन्म लेने वाले प्राणी

तुम्हारे ऊपर ही घूमते रहते हैं। तुम जिन चौपाये पशु और दुपाये मनुष्यों का पोषण करती हो, उन्हें सूर्य अपनी रश्मियों द्वारा जीवन पर्यन्त पदार्थों को प्रदान करते हैं। हे पृथिवी! वे पंचजन भी तुम्हारे ही हैं ॥ १५ ॥ सूर्य-रश्मियाँ हमारे निमित्त प्रजा का और वाणियों का दोहन करें। हे पृथिवी! मुझे मधुर पदार्थ प्रदान करो ॥ १६ ॥ हम औषधियों को उत्पन्न करने वाली, संसार की ऐश्वर्य रूपा, धर्म द्वारा आश्रित, कल्याणमयी, सुख देने वाली पृथिवी पर सदा विचरण करें ॥ १७ ॥ हे पृथिवी! तू महती निवासभूमि है, तेरा वेग और कपन भी महत्वपूर्ण है। वे इन्द्र तेरे रक्षक हों। तू हमें सब का प्रिय बना। जैसे सुवर्ण सबके लिए प्रिय होता है। वैसे ही हमारा द्वेषी कोई न हो ॥ १८ ॥ जल अग्नि को धारण करता है, पृथिवी में अग्नि है, जल में, पुरुष में और गो अश्वादि पशुओं में भी अग्नि है ॥ १९ ॥ स्वर्ग में अग्नि तपते हैं, अन्तरिक्ष में भी हैं और मरणधर्म वाले मनुष्य हव्यवाह अग्नि को प्रदीप्त करते हैं ॥ २० ॥

अग्निवासाः पृथिव्य सितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥ २१ ॥
भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥ २२ ॥
यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।
यं गन्धर्वा अप्सरश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं
कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २३ ॥
यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं
कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २४ ॥
यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।

कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्मां अपि सं सृज
मा नो द्विक्षत कश्चन ।। २५ ।।
शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ।। २६ ।।

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ।। २७ ।।

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रकामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ।। २८ ।।

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ।। २९ ।।

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं निदध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ।। ३० ।।

जिस धूम में अग्नि का वास है, उस धूम को जानने वाली पृथिवी मुझे तेजस्वी बनावे ।। २१ ।। पृथिवी पर सुशोभित यज्ञों में देवताओं के लिए हवि दी जाती हैं, इसी पृथिवी पर मरणधर्म वाले जीव अन्न जल से जीवन व्यतीत करते हैं । यह पृथिवी हमको प्राण और आयु प्रदान करती हुई वृद्धावस्था तक जीवित रहने वाला बनावे ।। २२ ।। हे पृथिवी ! तेरे जिस गन्ध को ओषधि और जल धारण किये हुए हैं, जिसको गन्धर्व और अप्सराएँ सेवन करते हैं, मुझे उसी गन्ध से सुरभित बना । कोई मेरा वैरी न हो ।। २३ ।। हे पृथिवी ! तुम्हारी जो गन्ध कमल में है, जिस गन्ध को सूर्या के विवाहोत्सव में मरण धर्म वाले जीवों ने धारण किया था, उसी गन्ध से मुझे सुरभित कर । मुझसे द्वेष करने वाला कोई न रहे ।। २४ ।। हे पृथिवी ! तुम्हारी जो गन्ध स्त्री पुरुषों में, अश्वों में, वीरों में, मृग, हाथी और कन्या में है, उस सब से मुझे सम्पन्न करो । मुझ से द्वेष करने वाला कोई न हो ।। २५ ।। जो पृथिवी शिला, भूमि, पत्थर और धूल के रूपों को

धारण करती है। ऐसी पृथिवी हिरण्यवक्षा है, मैं उसे नमस्कार करता हूं ॥ २६ ॥ वनस्पति उत्पन्न करने वाले वृक्ष जिस भूमि पर अडिग रूप से खड़े रहते हैं, वे वृक्ष औषधादि के रूप में सब की सेवा करते हैं। ऐसी धर्म-आश्रिता पृथिवी का हम स्तवन करते है ॥ २७ ॥ हम अपने दांये या बांये पांव से चलते हुए, बैठते या खड़े होते हुए कभी व्यथित न हों ॥ २८ ॥ क्षमा रूपिणी, परम पवित्र, मन्त्र द्वारा प्रवृद्ध पृथिवी का स्तवन करता हूं। हे पृथिवी ! तू पोषक अन्न और बल के धारण करने वाली है। मैं तुझ पर घृताहुति देता हूं ॥ २९ ॥ पवित्र जल हमारे देह को सींचे। हमारे शरीर पर होकर जाने वाले जल शत्रु को प्राप्त हों। हे पृथिवी ! मैं अपने देह को पवित्र द्वारा पवित्र करता हूं ॥ ३० ॥

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥३१॥
मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥३२॥
यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३ ॥
यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥ ३४ ॥
यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५ ॥
ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥ ३६ ॥
याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्न्यो ये अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।

शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥ ३७ ॥
यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चयन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥ ३८ ॥
यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥ ३९ ॥
सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

हे पृथिवी ! तुम्हारी पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण रूप चारों दिशाएं मुझे विचरण-शक्ति दें। मैं इस लोक में रहता हुआ गिरने न पाऊँ ॥ ३१ ॥ हे पृथिवी ! मेरे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओर खड़ी रह । मुझे दस्यु प्राप्त न करें, विकराल हिंसा से मुझे बचाती हुई मंगल करने वाली हो ॥ ३२ ॥ मैं जब तक तुझे सूर्य के समक्ष देखता रहूँ तब तक मेरी दर्शन-शक्ति नष्ट न हो ॥ ३३ ॥ हे पृथिवी ! शयन करता हुआ मैं करवट लूँ या सीधा होकर सोऊँ, उस समय मैं हिंसित न होऊँ ॥ ३४ ॥ हे पृथिवी ! मैं तेरे जिस स्थल को खोदूँ, वह शीघ्र ही यथावत् हो जाय। मैं तेरे मर्म को पूर्ण करने में समर्थ नहीं हूँ ॥ ३५ ॥ हे पृथिवी ! ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसंत यह छःओं ऋतु तथा दिन-रात, वर्ष यह सब हमको फल देने वाले हों ॥ ३६ ॥ जो पृथिवी सर्प के हिलने पर कम्पायमान होती है, विद्युत रूप से जल में रहने वाला अग्नि जिस पृथिवी में भी निवास करता है, जिसने वृत्रासुर को त्याग कर इन्द्र का वरण किया था, जो देवहिंसकों के लिए फल-दायिनी नहीं होती और जो सुपुष्ट वीर्यवान् पुरुष के आधीन रहती है ॥ ३७ ॥ जिस पृथिवी पर यज्ञ मण्डप की रचना होती है, जिसमें यूप खड़े होते हैं, जिस पृथिवी पर ऋक्, साम, यजु के मन्त्रों द्वारा देव-पूजन और इन्द्र को सोम-पान कराने का कार्य होता है ॥ ३८ ॥ जिस पृथिवी पर भूतों के रचयिता ऋषियों ने सात प्रकार वाले ब्रह्मयाग और स्तुति रूप

प्राणियों ने देव-पूजन किया था ॥ ३९ ॥ यह भूमि हमारा अभीष्ट धन दे। भाग्य हमको प्रेरणाप्रद हो और इन्द्र हमारे अग्रगण्य हों ॥ ४० ॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥ ४१ ॥

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥ ४३ ॥

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥ ४५ ॥

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप
सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४६ ॥

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं
यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४७ ॥

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥ ४८ ॥

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा
व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥ ४९ ॥

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥ ५० ॥

जिस पृथिवी पर मनुष्य नाचते गाते हैं, जिस पृथिवी पर संग्राम होते हैं, जिस पर रुदन होता और दुंदुभि भी बजती है, वह पृथिवी मुझे शत्रु-हीन करे ॥ ४१ ॥ जिस पृथिवी की पाँच कृषियाँ हैं, जिस पृथिवी पर धान्यादि अन्न होते हैं, उस वर्षा रूप मेघ द्वारा पुष्ट की जाने वाली पृथिवी को नमस्कार है ॥ ४२ ॥ देवताओं द्वारा रचे गये हिंसक पशु जिस पृथिवी में अनेक क्रीड़ा करते हैं, जो संपूर्ण संसार को अपने में स्थित करती है, उस पृथिवी की दिशाओं को प्रजापति हमारे लिए मंगलमय करें ॥ ४३ ॥ निधियों को धारण करने वाली पृथिवी निवास, मणि, सुवर्ण आदि दे। वह धन प्रदान करने वाली हम पर प्रसन्न होती हुई वरदायिनी बने ॥ ४४ ॥ अनेक धर्म और अनेक भाषा वाले मनुष्यों को धारण करने वाली पृथिवी, अडिग धेनु के समान मेरे लिए धन की सहस्रों धाराओं का दोहन करे ॥ ४५ ॥ हे पृथिवी ! तुम में जो सर्प वास करते हैं, उन सर्पों का दंश प्यास लगाने वाला है, जो बिच्छू हैं वह हेमन्त में डंक नीचे किये गुफा में सोता रहता है, वर्षा ऋतु में यह प्रसन्नता से विचरने वाले प्राणी मेरे पास न आवें। कल्याण-कारी जीव ही मुझे प्राप्त हों, उनसे मुझे सुख दो ॥ ४६ ॥ हे पृथिवी ! मनुष्यों के चलने के रथादि के चलने के जो मार्ग हैं, उन मार्गों पर धर्मात्मा और पापात्मा दोनों ही चलते हैं। जो चोर और शत्रुओं से रहित मार्ग है, वही कल्याणप्रद मार्ग हमें प्राप्त हो। उसी के द्वारा तुम हमें सुखी करो ॥ ४७ ॥ पुण्य और पाप कर्म वालों के शवों को तथा शत्रु को भी धारण करने वाली जिस पृथिवी को वराह ढूंढ रहे थे, वह उन वराह को ही प्राप्त हुई ॥ ४८ ॥ जो हिंसक पशु व्याघ्र आदि घूमते हैं उनको, उल, वृक, ऋक्षीका और राक्षसों को हम से दूर करके बाधा दो ॥ ४९ ॥ हे पृथिवी ! गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस, किमदिन, पिशाच आदि को हम से दूर कर ॥ ५० ॥

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।

यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥ ५१ ॥

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये
धामनिधामनि ॥ ५२ ॥

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥ ५३ ॥

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥५४ ॥

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५५ ॥

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ५६ ॥

अश्वइव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् ।
पृथिवीं यादजायत् ।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥ ५७ ॥

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥ ५८ ॥

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥ ५९ ॥

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥ ६० ॥

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥६१

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥ ६२ ॥
भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥ ६३ ॥

जिस पृथिवी पर दो पांव के पक्षी हंस, कौए, गिद्ध आदि घूमते हैं, जिस पृथिवी पर वायु धूल उड़ाते और वृक्षों को पतित करते हैं और वायु के तीक्ष्ण होने पर अग्नि भी उनके साथ चलते हैं ॥ ५१ ॥ जिस पृथिवी पर काले और लाल दिन-रात्रि मिले रहते हैं, जो पृथिवी वर्षा से आवृत होती है, वह पृथिवी हमको सुन्दर चितवृत्ति से हमारे प्रिय स्थान को प्राप्त करावे ॥ ५२ ॥ आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष, अग्नि, सूर्य, जल, मेघा तथा सब देवताओं ने मुझे गमन-सामर्थ्य प्रदान की है ॥ ५३ ॥ मैं शत्रु-तिरस्कार वाला श्रेष्ठ रूप में पृथिवी पर प्रसिद्ध हूं, मैं शत्रुओं को सामने जाकर दबाऊं । मैं हर दिशा में रहने वाले शत्रु को भले प्रकार वश में करलूं ॥५४॥ हे पृथिवी ! तुम्हारे विस्तृत होने से पहले देवताओं ने तुम से विस्तार युक्त होने को कहा था, उस समय तुम में भूतों ने प्रवेश किया तभी चार दिशाएं बनाई गईं ॥ ५५ ॥ पृथिवी पर जो गाँव, जंगल और सभाएं हैं, जो युद्ध की मंत्रणाएं तथा युद्ध होते हैं उन सब में हम, हे भूमि, तेरी वंदना करते हैं ॥ ५६ ॥ पृथिवी में उत्पन्न हुए पदार्थ पृथिवी पर ही रहते हैं, उन पर अश्व के समान धूल उड़ाते हैं । यह भूमि मंद्रा और इत्वरी है तथा वनस्पति और औषधियों के आश्रय से लोक का पालन करने वाली है ॥ ५७ ॥ मैं जो कुछ कहूं वह मिष्ट हो, जिसे देखूं वही मेरा प्रिय हो । मैं यशस्वी और वेग वाला होऊं, दूसरों का रक्षक होता हुआ, जो मुझे कम्पित करें, उनका संहार कर डालूं ॥ ५८ ॥ सुख शान्ति देने वाली, अन्न और दूध वाली पृथिवी दूध के समान सार पदार्थ वाली होती हुई मेरे पक्ष में रहे ॥ ५९ ॥ जिस पृथिवी को राक्षसों के चक्कर से हवि द्वारा निकालने की विश्वकर्मा ने इच्छा की जो गुप्त रहने वाला भुजिष्य पात्र (अन्न) उपभोग

के समय दिखाई पड़ने लगा ॥ ६० ॥ हे पृथिवी ! तू कामनाओं को पूर्ण करने वाली है, इस विश्व की क्षेत्ररूपा एवं विस्तार वाली है। तेरे कम होने वाले भाग को प्रजापति पूरा करते हैं ॥ ६१ ॥ तेरे द्वीप भी हमारे लिए यक्ष्मा-रोग से रहित रहें। हम अपनी दीर्घ आयु से युक्त हुए तुझे हवि देने वाले बनें ॥ ६२ ॥ हे पृथिवी माता ! मुझे मङ्गलमयी प्रतिष्ठा में रखो। हे विज्ञ ! मुझे लक्ष्मी और विभूति में स्थित रखते हुए स्वर्ग की प्राप्ति कराओ ॥ ६३ ॥

२ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—भृगुः । देवता—अग्निः, मन्त्रोक्ताः, मृत्युः । छन्द,—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् पङ्क्तिः, जगती, बृहती, गायत्री)

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥ १ ॥
अघशंसदुः शंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥ २ ॥
निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥३॥
यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इम गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥ ४ ॥
यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।
सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥ ५ ॥
पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ६ ॥
यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥ ७ ॥
क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।

इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ८ ॥
क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोके अपि भागो अस्तु ॥९॥
क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥ १० ॥

हे क्रव्याद् अग्ने ! तू नड पर आरोहण कर। जो यक्ष्मा मनुष्यों में या जो यक्ष्मा गौ में है तू उनके साथ ही यहाँ से दूर जा। तू अपने भाग्य सीमा पर आ ॥ १ ॥ पाप और दुर्भावनाओं का नाश करने वाले कर और अनुकर से यक्ष्मा को पृथक् करता हूँ और मृत्यु को भी दूर भगाता हूँ ॥ २ ॥ हे अक्रव्याद् अग्ने ! हम पाप देवता निर्ऋति और मृत्यु को दूर करते हैं। अपने शत्रुओं को भी दूर करते हैं। जो हमारे वैरी हैं, उन्हें तुम्हारी ओर भेजते हैं, तुम उनका भक्षण करो ॥ ३ ॥ यदि क्रव्याद् अग्नि ने वा व्याघ्र ने हमारे गोष्ठ में प्रवेश किया है तो मैं उसे माष आज्य द्वारा दूर करता हूँ, वह जल में वास करने वाली अग्नियों को प्राप्त हो ॥४॥ पुरुष की मृत्यु के कारण क्रोधित हुए प्राणियों ने तुम्हें प्रदीप्त किया, वह कार्य पूर्ण हो गया इसलिए तुम्हें तुम से ही प्रदीप्त करते हैं ॥५॥ हे अग्ने ! वसु, ब्रह्मणस्पति, ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य और वसुनीति ने तुम्हें, सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करने के लिए पुनः प्रदीप्त किया था ॥ ६ ॥ अन्य अग्नियों के देखने के लिये यदि क्रव्याद् अग्नि हमारे घर में प्रविष्ट हुआ है तो पितृयज्ञ करने के लिये मैं उसे दूर करता हूँ। वह परम आकाश में स्थित होकर धर्म को बढ़ावें ॥ ७ ॥ मैं क्रव्याद् अग्नि को दूर करता हूँ, वह पाप को साथ लेता हुआ यम स्थान को प्राप्त हो। जातवेदा अग्नि यहाँ प्रतिष्ठित होकर देवताओं के लिये हवि वहन करें ॥ ८ ॥ मैं अपने मन्त्र रूप वज्र से क्रव्याद् अग्नि को दूर करता हूँ। गार्हपत्य अग्नि के द्वारा मैं इस अग्नि का शासन करता हूँ, यह पितरों का भाग होता हुआ उनके लोक में स्थित होता हुआ उनके लोक में स्थित हो ॥ ९ ॥ उक्थ के प्रशंसक क्रव्याद अग्नि को मैं पितृयान मार्ग से भेजता हूँ। हे क्रव्याद ! तू पितरों में ही

प्रवृद्ध हो और वहीं जागता रह । देवयान मार्ग द्वारा पुनः यहां मत आ ॥ १० ॥

समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥ ११ ॥
देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत ।
मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः ॥ १२ ॥
अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ १३ ॥
संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः ।
ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् ॥ १४ ॥
यो नो अश्वेषु वीरेषु योनो गोष्वजा विषु ।
क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥ १५ ॥
अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः ॥ १६ ॥
यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥ १७ ॥
समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः ।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ १८ ॥
सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत् ।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥ १९ ॥
सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे ।
अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः ॥ २० ॥

पवित्रताप्रद अग्निदेव शुद्ध होने के लिए शवभक्षक अग्नि को प्रदीप्त करते हैं, तब यह अपने पाप का त्याग करता हुआ जाता है । उसे यह पवित्र

अग्नि शुद्ध करते हैं ॥ ११ ॥ शवभक्षक अग्नि स्वयं पाप से मुक्त होते और अमङ्गल से हमारी रक्षा करते हुए स्वर्ग पर चढ़ते हैं ॥ १२ ॥ इस शवभक्षक अग्नि में हम अपने पापों को धोधते हैं। हम शुद्ध हो गए, अब यह अग्नि हमको पूर्ण आयु बनावें ॥ १३ ॥ यक्ष्मा के ज्ञाता संकसुक, विकसुक, निर्ऋथ और निस्वर अग्नि यक्ष्मा के साथ ही सुदूर चले गये और वहाँ जाकर नाश को प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ जो क्रव्याद् हमारे अश्व, गौ, बकरी आदि पशुओं और पुत्र-पौत्रादि में प्रविष्ट हुआ है उसे हम भगाते हैं ॥ १५ ॥ जो क्रव्याद् जीवन के क्रम को बिगाड़ने वाला है उसे हम मन्त्र बल से भगाते हैं। हे क्रव्याद् अग्ने! हम तुझे मनुष्यों, गौओं और अश्वों से दूर करते हैं ॥१६॥ हे अग्ने! जिसमें देवता और मनुष्य शुद्ध होते हैं, उनमें शुद्ध होकर तू भी स्वर्गारोहण कर ॥ १७ ॥ हे गार्हपत्य अग्ने! तुम हमारा त्याग न करो। तुम भले प्रकार प्रदीप्त हो रहे हो, तुममें आहुतियाँ दी जा रही हैं। तुम सूर्य के चिरकाल तक दर्शन कराने के लिए प्रदीप्त होओ ॥ १८ ॥ हे पुरुषो! शिर रोग को सीसे में, नड नामक घास में, संकसुक में और भेड़ तथा स्त्री में भी शुद्ध करो ॥ १९ ॥ हे पुरुषो! शिर के रोग को तकिये में स्थापित करो, मल को सीसे में और काली भेड़ में शुद्ध करके स्वयं शुद्ध होओ ॥ २० ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥ २१ ॥
इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २२ ॥
इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ २३ ॥
आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ।
तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥२४॥
यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम्।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥ २५ ॥

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥ २६ ॥
उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् ॥ २७ ॥
वैश्वदेवीं वर्चसआ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥ २८ ॥
उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः ।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥ २९ ॥
मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ॥ ३० ॥

हे मृत्यो ! तू देवयान से भिन्न मार्ग में जा । तू दर्शन और श्रोत्र शक्तियों युक्त है तो सुनले कि यहाँ हमारे बहुत से वीर पुत्रादि रहेंगे ॥ २१ ॥ यह प्राणी मृत्यु को दूर करने वाली शक्ति से युक्त होगये । हम सुन्दर वीरों से सम्पन्न होकर नृत्य, गान, हास्य में रत हैं । हम यज्ञ की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि देवताओं को आहुति देना आज कल्याणकारी होगया ॥ २२ ॥ हे मनुष्यो ! तुम पत्थर से अपनी मृत्यु को दबाओ । मैं तुम्हें जो यन्त्र रूप कवच देता हूं उसे कोई अन्य न प्राप्त करे । तुम सौ वर्ष तक जीवित रहो।२३। हे मनुष्यो ! तुम वृद्धावस्था की दीर्घ आयु का वरण करो । तुम सुन्दर जन्म वाले और समान प्रीति वाले हो । तुम्हें दीर्घ जीवन के लिये त्वष्टा पूर्ण आयु प्रदान करें ॥ २४ ॥ जैसे ऋतुऐं एक के पीछे दूसरी आती हैं, जैसे दिन एक के पीछे दूसरे आते हैं,जैसे नया पहले का त्याग नहीं करता, वैसे ही हे धाता ! इन्हें आयुष्मान करो ॥ २५ ॥ हे मित्रो ! यह पाषाण-युक्त नदी सुनाई पड़ रही है । वीरता पूर्वक इससे पार होओ । अपने पापों को इसी में डाल दो । फिर हम रोग-निवारक-वेगों को पार करें ॥ २६ ॥ मित्रो ! यह पाषाण नदी शब्द कर रही है, उठ कर तैरो और अपने पापों को इसमें प्रवाहित करो । हम इसके कल्याणप्रद और सुख देने वाले वेगों से पार हों ॥ २७ ॥

हे पवित्रताप्रद अग्नियो ! शुद्ध होने के समय सब देवताओं का स्तवन करो। ऋग्वेद के पदों से पापों को लाँघते हुए हम सौ हेमन्तों तक पुत्रादि सहित आनन्दित हों ॥ २८ ॥ परलोक गमन में वायु से पूर्ण उत्तरायण मार्ग में जाने वाले ऋषियों ने निकृष्ट मनुष्यों को लाँघा था। उन्होंने मृत्यु को भी इक्कीस बार पदयोपन द्वारा पार किया था ॥ २९ ॥ मृत्यु के लक्ष्य को भ्रमित करने वाले ऋषि आयु से परिपूर्ण हैं। तुम भी इस मृत्यु को भगाओ। फिर हम जीवन लोक में यज्ञ की स्तुति करें ॥ ३० ॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम्।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ३१ ॥
व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥ ३२ ॥
यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ॥३३॥
अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ॥ ३४ ॥
द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ॥ ३५ ।
यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते।
सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥ ३६ ॥
अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे।
छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते ॥ ३७ ॥
मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्ति मर्त्यो नीत्य।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥ ३८ ॥
ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः।
ब्रह्मैव विद्वानेष्योयः क्रव्यादं निरादधत् ॥ ३९ ॥

यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।
आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ॥ ४० ॥

यह स्त्रियाँ सुन्दर पति से युक्त रहें, विधवा न हों। यह अश्रुओं से रहित और घृत से युक्त हों। यह सुन्दर अलङ्कारों को धारण करने वाली हों और संतानोत्पत्ति के लिए मनुष्य योनि में ही रही आवें ॥ ३१ ॥ मैं इन दोनों को मन्त्र शक्ति से सामर्थ्यवान् करता हूँ। पितरों की स्वधा को जीर्णतारहित करता हुआ इन्हें दीर्घ आयु वाला बनाता हूँ ॥ ३२ ॥ हे पितरो ! हमारे हृदय में नष्ट न होने वाले फल का देने वाला अग्नि व्याप्त है वह हम से द्वेष करने वाला न हो। हम भी उसके प्रति द्वेष न करें ॥ ३३ ॥ हे प्राणियो ! मन्त्रों द्वारा गार्हपत्य अग्नि से दूर हटो और क्रव्याद् अग्नि से दक्षिण दिशा को प्राप्त होओ। वहाँ अपने और पितरों के लिए जो प्रिय हो, वही कार्य करो ॥ ३४ ॥ जो पुरुष क्रव्याद् अग्नि को नहीं छोड़ता, वह अपने ज्येष्ठ पुत्र के तथा अपने धन को लेता हुआ क्षय को प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ जो पुरुष क्रव्याद् अग्नि का सेवन न छोड़े, उसकी कृषि, सेवनीय वस्तु, समूल्य वस्तु आदि को उसके पास हों वे शून्य के समान रह जाते हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष क्रव्याद् अग्नि को नहीं छोड़ता वह यज्ञ करने का अधिकारी नहीं रहता, उसका तेज नष्ट हो जाता है और आहूत देवता उसके पास नहीं आते। क्रव्याद् जिसका साथी रहता है, उसे कृषि, गौ और ऐश्वर्य से वियुक्त करता है ॥ ३७ ॥ क्रव्याद् अग्नि जिसके पास रह कर ताप देता है, वह पुरुष अत्यन्त व्यथा को प्राप्त होता है। उसे आवश्यक वस्तुओं के लिए बारम्बार दीन-वचन कहने पड़ते हैं ॥ ३८ ॥ जो क्रव्याद् अग्नि को पूर्णतः ग्रहण करता है, उसके लिए घर कारागार रूप बन जाते हैं और स्त्री का पति मृत्यु को प्राप्त होता है। उस समय विद्वान का आदेश मानना चाहिए ॥ ३९ ॥ जो पाप हम कर चुके हैं उस पाप से और क्षय अक्षक अग्नि के स्पर्श-दोष से मुझे जल पवित्र करें ॥ ४० ॥

ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतोः पथिभिर्देवयानैः ।

पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥ ४१ ॥
अग्ने अक्रव्यान्निष्क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥ ४२ ॥
इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात् ।
व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥ ४३ ॥
अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्य ।
उभयानन्तरा श्रितः ॥ ४४ ॥
जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥ ४५ ॥
सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥ ४६ ॥
इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥ ४७ ॥
अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥ ४८ ॥
अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।
अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥ ४९ ॥
ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादश्वइवानुवपते नडम् ॥ ५० ॥

जो जल देवयान मार्गों से दक्षिण से उत्तर के स्थान पर आ जाते हैं और नवीन होकर वर्षा रूप से पर्वत पर नदी रूप हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ हे अक्रव्याद् गार्हपत्य अग्ने ! तुम क्रव्याद् को हमसे दूर करो। देव-पूजन की सामग्री को वहन करो ॥ ४२ ॥ इस पुरुष ने क्रव्याद् को प्रविष्ट कर लिया और उसी का अनुगामी होगया है। मैं इन दोनों को व्याघ्र के समान मानता हूँ। इस कल्याण से भिन्न क्रव्याद् अग्नि को मैं पृथक करता हूँ ॥ ४३ ॥ देवताओं की अन्तर्धि और मनुष्यों की परिधि रूप गार्हपत्य अग्नि देवता और मनुष्यों के लिये मध्यस्थ हैं ॥ ४४ ॥ हे अग्ने ! जीवितों की आयु-वृद्धि करो।

मृतकों को पितरलोक भेजो। गार्हपत्य अग्नि शत्रुओं को जलावे। हे गार्हपत्य अग्ने! मंगलमयी उषा को हम में प्रतिष्ठित करो ॥४५॥ हे अग्ने! सब शत्रुओं को वशीभूत करते हुए उनके बल और धन को हममें प्रतिष्ठित करो ॥४६॥ इन ऐश्वर्यवान् वह्नि का स्तवन करो। यह तुम्हें पाप से मुक्त करें। उसके द्वारा रुद्र के बाण को दूर हटाते हुए अपनी रक्षा करो ॥४७॥ हवि रूप भार के वाहक नौका रूप वह्नि का स्तवन करो। वे पाप से तुम्हारी रक्षा करें। सविता की नौका पर चढ़ कर छै उर्वियों द्वारा अमिति को पार करें ॥४८। हे गार्हपत्य अग्ने! तुम दिन रात्रि के आश्रय रूप होते हुए प्राप्त होते हो। तुम कल्याणप्रद होते हुए पुत्र-पौत्रादि से युक्त करते हो। तुम्हारी आराधना शुभ है। तुम हमें निरोग रखते हुए और हर्षयुक्त मन से पर्यंक पर चढ़ाते हुए, दीर्घकाल तक प्रदीप्त होते रहो ॥ ४९ ॥ जिनके पास अश्व द्वारा घास को कुचलने के समान क्रव्याद् अग्नि कुचलता है वे पाप से अपनी जीविका चलाने वाले पुरुष देव-यज्ञों के घातक हैं ॥ ५० ॥

येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते।
ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥५१॥
प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥५२॥
अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः।
माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥५३॥
इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम्।
तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥५४॥
प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश।
परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥५५॥

जो धन की इच्छा से क्रव्याद् अग्नि की सेवा करते हैं, वे पुरुष सदा अन्यों के घटादि ही उठाया करते हैं ॥ ५१ ॥ जिस पुरुष के पास आकर क्रव्यादि अग्नि तपता है वह बारम्बार आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है

और अधोगति को प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ हे क्रव्याद् अग्ने ! काली भेड़, सीसा और चन्द्रमा को विज्ञजन तेरा भाग बताते हैं और पिसे हुए उड़द भी तेरे हव्य रूप हैं। अतः तू घोर जंगल में पहुँच जा ॥ ५३ ॥ पुरानी सींक, दडन, तिल्पिञ्ज और घास को इन्द्र ने ईंधन बनाया और उसके द्वारा यम की इस अग्नि को पृथक कर दिया ॥ ५४ ॥ विद्वान् गार्हपत्य अग्नि सूर्य को अर्पित होकर देवयान मार्ग में प्रविष्ट हुए और जिनके प्राणों को दिया, मैं उन यजमानों को चिर-आयु से युक्त करता हूँ ॥ ५५ ॥

३ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—यमः । देवता—स्वर्गः, ओदनः, अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्; जगती; पंक्तिः; बृहती; धृतिः)

पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।
यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद् वां वयो यमराज्ये समानम् ॥ १ ॥

तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत् तेजस्ततिधा वाजिनानि ।
अग्निः शरीरं सचते यदैधोऽधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥ २ ॥

समस्मिँल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव ॥३॥

आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री ॥४॥

यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ॥५॥

उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ॥६॥

प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ॥७॥

दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् ।
तस्मिन् वां यमः पितृभि संविदानः पक्वाय शर्म ।
बहुलं नि यच्छात् ॥८॥
प्रतीची दिशामियमिद् वरं यस्यां सोमो अधि॥ो मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथा सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुरा स भवाथः ॥९॥
उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदी ी कृणवन्नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥ १० ॥

हे पुंसत्ववान् ! तू इस पशु-नर्म पर चढ़ और अपने प्रिय व्यक्तियों को भी बुलाले । पहिले जितने दम्पत्तियों ने इसे किया उनका और तुम्हारा एक-सा फल हो ॥ १ ॥ स्वर्ग में तुम्हारे शरीरों को यह अग्नि ही रचेगा, उस समय तुम पक्व ओदन के प्रभाव से इसी रूप में स्वर्ग में होगे । तुम में उत्पन्न शिशु की सी दर्शन शक्ति और वैसा ही तेज होगा और यज्ञात्मक यज्ञ को भी इसी प्रकार करने के योग्य होगे ॥२॥ ओदन के प्रभाव से इस लोक में तुम दोनों साथ रहो, देवयान-मार्ग में तथा यम के राज्य में भी साथ ही रहो । इन पवित्र यज्ञों से तुम पवित्र हो चुके हो । तुमने जिस-जिस कार्य के लिए सिंचन किया, उन-उन कार्यों के फलों को प्राप्त करो ॥३॥ हे दम्पत्तियों वीर्य रूपी जल के ही तुम पुत्र हो । तुम इस जीवन में धन्य होते हुये प्रविष्ट होओ । तुम्हारा उत्पादक जल ही ओदन को पकाता है, उसी जल के अमृत मय अंश का तुम सेवन करो ॥ ४ ॥ माता-पिता यदि वाणी जन्य पाप से या अन्य पाप से निवृत्त होने के लिए ओदन को पकाते हैं तो वह ओदन अपनी महिमा से स्वर्ग और द्यावा पृथिवी में व्याप्त होता है ॥ ५ ॥ हे पति-पत्नी ! आकाश पृथिवी में यजमान जिन लोकों पर अधिकार पाते हैं, उनमें जो प्र॥शित और मधुमय लोक हैं, उस लोक या स्वर्ग और पृथिवी दोनों लोकों में तुम संतान से सम्पन्न हुये वृद्धावस्था तक जीवित रहो ॥ ६ ॥ हे दम्पत्ति ! तुम पूर्व की ओर बढ़ो उस स्वर्ग पर श्रद्धावान् ही चढ़ पाते हैं । तुमने जो पका हुआ ओदन अग्नि में रखा है उसकी रक्षा के निमित्त स्थित रहो ॥ ७ ॥

हे दम्पत्ति ! तुम दक्षिण की ओर जाकर इस पात्र की प्रदक्षिणा करते हुए आओ । उस समय पितरों से सहमत हुए यमराज तुम्हारे ओदन के लिए अनेक प्रकार के कल्याण प्रदान करें ॥ ८ ॥ पश्चिम दिशा में स्वामी और सुख देने वाले सोम हैं इस लिए यह दिशा श्रेष्ठ है । इसमें तुम पके हुए ओदन को रख कर पुण्य कर्मों का फल प्राप्त करो । फिर इस पके हुए ओदन के प्रभाव से पृथिवी और स्वर्ग में तुम दोनों प्रकट होओ ॥ १०॥ उत्तर दिशा प्रजाओं से युक्त है, यह श्रेष्ठ दिशा हमको श्रेष्ठता प्रदान करे । पंक्ति छन्द ओदन के रूप में प्रकट होता है । हम भी पृथिवी और स्वर्ग में अपने सभी अङ्गों सहित प्रकट हों ॥ १० ॥

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिति विश्ववारा इर्यइव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥११॥
पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह तन्नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥ १२ ॥
यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद्वा दास्यार्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भताप: ॥ १३ ॥
अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दम्पती पौत्रमघं नि गाताम् ॥१४॥
वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वाञ्जयेम ॥ १५ ॥
सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥ १६ ॥
स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥ १७ ॥
ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् ॥ १८ ॥

विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुष पलावानप तद् विनक्तु ॥ १९ ॥
त्रयो लाकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥ २० ॥

यह वरणीय, अखण्डनीया पृथिवी अटल है, विराट् है, यह हमारे लिये सुख देने वाली हो । हमारे पुत्रों का मंगल करे और नियुक्त रक्षक के समान यह इस पके हुए ओदन की रक्षा करे ॥ ११ ॥ हे पृथिवी ! जैसे पिता अपने पुत्रों का आलिंगन करता है, वैसे ही तुम इस ओदन का आलिंगन करो । यहाँ मंगलमय वायु प्रवाहित हो । तुम हमारे ओदन को तपाओ और हमारे यथार्थ संकल्प को जानो ॥१२॥ काक ने कपट पूर्वक इसमें बिल बनाया हो अथवा दासी ने भीगे हुये हाथ से मूसल उलूखल का स्पर्श किया हो तो यह जल मंगल करने वाला हो ॥ १३ ॥ यह दृढ़ पाषाण हवि धारक है, यह पवित्र द्वारा शुद्ध होकर राक्षसों को नष्ट करे । हे ओदन ! तू चर्म पर आता हुआ कल्याणप्रद हो । इन दम्पति को इनके पौत्र सहित पाप न छू पावे ॥१४॥ वह राक्षसों और पिशाचों को रोपता हुआ वनस्पति देवताओं सहित हमको प्राप्त हुआ । वह उच्च स्वर वाला हमको सब लोकों पर विजय प्राप्त करने वाला बनावे ॥ १५ ॥ इन धान्यों में जो पतला परन्तु अधिक दमकता हुआ है, ऐसे सात चावलों को पशु के समान लोगों ने ग्रहण किया है । यह तेतीस देवताओं द्वारा सेवनीय है । यह ओदन हमको स्वर्ग में पहुँचावे ॥ १६ ॥ हे ओदन ! तू हमें स्वर्ग लिये जा रहा है, वहाँ हम स्त्री-पुरुषों सहित प्रकट हों । पाप देवता निर्ऋति और शत्रु वहाँ हमको वशीभूत न करें इस लिये तू मेरा अनुगमन कर मैं तेरे हाथ को पकड़ रहा हूँ ॥ १७ ॥ हे वनस्पते ! पाप से उत्पन्न शोक रूप तम को दूर करता हुआ तू मधुर शब्द कहता है । हम अपने पापों से पार हों । यह वानस्पत्य मेरी, और मुझे देवमार्ग प्राप्त कराने वाले चावल की भी हिंसा न करे ॥१८॥ हे ओदन ! तू घृतपृष्ठ हुआ परलोक में हमारे साथ प्रकट होने को हमारे पास आ और वर्षा ऋतु में प्रवृद्ध उपकरण

वाले सूप को प्राप्त हो। यह तुझसे तुष को पृथक् करे। तू सबके द्वारा सत्कार करने योग्य है ॥ १९ ॥ आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों लोकों को ब्राह्मण प्राप्त कराता है। हे दम्पति ! तुम चावलों को फटकना प्रारम्भ करो। यह धान भी उछलते हुये सूप को प्राप्त हों ॥ २० ॥

पृथग् रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलगइव वस्त्रा ॥२१॥
पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि ॥२२॥
जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥ २३ ॥
अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान्।
वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥ २४ ॥
पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान्।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥२५॥
आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम्।
शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥२६॥
उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः।
ता ओदनं दम्पतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥२७॥
संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः।
असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥२८॥
उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून्।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः ॥ २९ ॥
उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम्।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥ ३० ॥

पशु विभिन्न रूप वाले होते हैं, परन्तु तू एक ही रूप वाला है। तू पाषाण के द्वारा अपनी भूसी का त्याग कर ॥ २१ ॥ हे मूसल ! तू पृथिवी का बना है, इसलिये पृथिवी ही है। पृथिवी का और तेरा देह एक सा ही है। इस लिये मैं पृथिवी को ही पृथिवी पर मार रहा हूँ। हे ओदन ! मूसल को प्राप्त होने से तेरे अङ्ग में जो पीड़ा हो रही है, उससे तू तुष से पृथक होकर छूट जा। मैं तुझे मंत्र द्वारा अग्नि में अर्पित करता हूँ ॥ २२ ॥ माता जैसे अपने पुत्र को प्राप्त करती है वैसे ही मैं तुझ मूसल रूप पृथिवी को पृथिवी से मिलाता हूं। वेदी में भी ओखली रूप कुम्भी है, इस लिए व्यथित न हो। तू यज्ञ के आयुधों द्वारा घृत से युक्त की जा चुकी है ॥ २३ ॥ अग्नि पचन कर्म में तेरे रक्षक हों। इन्द्र पूर्व से, मरुद्गण दक्षिण से, वरुण पश्चिम से और सोम उत्तर दिशा की ओर से तेरी रक्षा करने वाले हों ॥२४॥ पुण्य कर्मों द्वारा शुद्ध हुए जल शुद्ध करने वाले हैं। वे मेघ द्वारा द्यौ में जाते और फिर पृथिवी में आकर मनुष्यों को प्राप्त होते हैं। प्राणी को सुखी करने वाले पाथ में स्थित होते हैं। अग्नि इन आगिरस होने वाले जलों को सब ओर से दीप्त करे ॥ २५ ॥ द्यौ से आने वाले यह जल पृथिवी की सेवा करते है और पृथिवी से पुनः अन्तरिक्ष में पहुँचते हैं। यह पवित्र जल पवित्रताप्रद हैं, यह हमको भी स्वर्ग की प्राप्ति करावें ॥ २६ ॥ यह श्वेत रंग वाले, दमकते हुये, अमृत के समान, प्रभु रूप हैं। हे जलो ! इस दम्पत्ति द्वारा डाले जाने पर ओदन को शोधते हुये पकाओ ॥ २७ ॥ प्राणापान के समान स्वरूप ओषधियों से युक्त पृथिवी का सेवन करते हैं और शोभन वर्ण वाले जीवों में प्रविष्ट असंख्य जल शुद्धता देते हुये सब में व्याप्त होते हैं ॥ २८ ॥ ताप देने पर यह जल शब्द करते, फेन और बूँदों को उड़ाते हुए युद्ध-सा करते हैं। हे जलो ! जैसे पति को देखकर स्त्री उससे युक्त होती है, वैसे ही तुम ऋत में होने वाले यज्ञ के निमित्त चावलों में मिश्रित होओ ॥ २९ ॥ हे ओदन की अधिष्ठात्री देवि ! मूसल की जड़ में व्यथित होते इन चावलों को उठाओ। यह जल से मिलें। हे यजमान ! तू जल को पात्रों द्वारा नाप रहा है। इधर यह चावल भी नप गये हैं, इन्हें जल में डालने की अनुज्ञा प्रदान कर ॥ ३० ॥

प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥ ३१ ॥
नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदयश्चक्षुषो वल्गवस्तु ।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥ ३२ ॥
वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥ ३३ ॥
षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥ ३४ ॥
धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद् वासयातः पर्यग्निधानात् ॥ ३५ ॥
सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥ ३६ ॥
उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैतत् ।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभिहिङ्कृणोत ॥ ३७ ॥
उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिञ्छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥ ३८ ॥
यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः पतिर्वा जायेत्वत् तिरः ।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥ ३९ ॥
यावन्तोः अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः ।
सर्वांस्तां उप पात्रे ह्वयेथां नाभि जानानाः शिशवः समायान् ॥ ४० ॥

कलुछे को लाओ। जो पक चुके हैं उन्हें ले लो । यह किसी की हिंसा न करते हुए प्रत्येक पर्व में ओषधि रूप फल को करें। जिन लताओं का राजा सोम है, वे लतायें क्षोभ करने वाली न हों ॥ ३१ ॥ ओदन के लिए नई कुशाएँ फैला दो । वह कुशा का आसन हृदय और नेत्रों को

सुन्दर लगे। देवता उस पर अपनी पंक्तियों सहित विराजमान होते हुए इस ओदन का सेवन करें॥ ३२॥ हे वनस्पते! कुशा बिछा दी हैं, तुम बैठो। देवताओं ने तुम्हें अग्निष्टोम के सदृश समझा हैं। स्वधिति ने त्वष्टा के समान इसे शोभन रूप दिया है, वह अब पात्रों में दिखाई देता है॥ ३३॥ इस निधि का रक्षक यजमान इस पक्व ओदन भक्षण का फल स्वर्ग में साठ वर्ष पश्चात् पावे। हे यज्ञ के अभिमानी देवता! इस यजमान को स्वर्ग प्राप्त कराते हुए इसके पितर, पुत्र आदि को भी इसके पास रखो॥ ३४॥ हे ओदन! तू धारण करने वाला है इस लिये भूमि के धारक स्थान में प्रतिष्ठित हो। तुझ अच्युत को देवता च्युत न करें। तुझे जीवित पुत्रों वाले जीवित दम्पति अग्निधान के द्वारा पुष्ट करें॥ ३५॥ तू सब लोकों पर विजय प्राप्त करता हुआ आ। सभी इच्छाओं को भले प्रकार तृप्त कर। दम्पत्ति कलछी को घुमाते हुए ओदन को निकाल कर पात्र में स्थित करें॥ ३६॥ तुम इसे परस कर फैलाया-सा करो, इसमें घृत डालो। हे देवगण! दूध पीने वाले बछड़े को देखकर पयस्वती गौऐं उसकी ओर शब्द करती हैं, वैसे ही इस तैयार ओदन की ओर शब्द करो॥ ३७॥ हे यजमान! ओदन परोस कर तूने इस लोक को फल युक्त कर लिया। इसके प्रभाव से स्वर्ग में यही ओदन अधिक बढ़ा हुआ प्राप्त हो। हे दम्पत्ति! यह सुन्दर महिमा वाला गमनशील ओदन तुम्हें स्वर्ग में वास दिलावे। देवता इस यजमान को देवताओं के पास पहुँचावें॥ ३८॥ हे जाये! तू इस ओदन को पकाती है। तू अपने पति से पहले चली जाय तो स्वर्ग में तुम दोनों मिल जाना। तुम एक ही लोक में रहो और वहाँ यह ओदन भी तुम्हारे साथ रहे॥ ३९॥ इस स्त्री के सब पुत्रों को इस पात्र के पास बुलाओ वे बालक अपनी नाभि को जानते हुए यहाँ आवें॥ ४०॥

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात्॥ ४१॥
निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गं त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत्॥ ४२॥

अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ।। ४३ ।।
आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ।। ४४ ।।
इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ।। ४५ ।।
सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पुरा मत् ।।४६।।
अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोऽन्वारभेथां वय उत्तरावत् ।। ४७ ।।
न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ।। ४८ ।।
प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ।। ४९ ।।
समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्यातपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ।। ५० ।।

वासक ओदन की मधु द्वारा मोटी हुई धारें घृत से भी युक्त हैं। वे अमृत की थाती रूप हैं, स्वर्ग में वे रुकी रहती हैं। निधि का रक्षक उसकी साठ वर्ष पश्चात् इच्छा करे ।। ४१ ।। यजमान इस निधि की कामना करे । हमारे द्वारा प्रदत्त धरोहर रूप वाला ओदन स्वर्गगामी होता हुआ अपने तीनों कांडों सहित स्वर्गारोही हो ।। ४२ ।। मेरे कर्म-फल में बाधक राक्षसों से अग्निदेव व्यथित करें। क्रव्याद् और पिशाच हमको न छूसें । हम इस राक्षस को यहाँ आने से रोकते हुये भागते हैं। आंगिरस और सूर्य इसे वश करें ।। ४३ ।। अङ्गिराओं और आदित्यों के लिये इस घृत युक्त मधु को प्रस्तुत करना है। ब्राह्मण के पवित्र हाथ स्वर्ग में फल रूप से जाने वाले

इसे स्वर्ग में पहुँचावें ॥ ४४ ॥ प्रजापति ने जिस हूयमान काण्ड द्वारा फल प्राप्त किया था, मैंने भी उस उत्तम काण्ड को पा लिया है । इसे घृत से सींचो, यह घृत युक्त भाग हम अङ्गिरा ऋषियों का ही है ॥ ४५ ॥ सत्य के निमित्त इस ओदन रूप धरोहर को हम देवताओं को सौंपते हैं । परस्पर कर्म के आदान-प्रदान रूप द्यूत में और समिति में भी यह हमसे पृथक न हो । इसे अन्य पुरुषों के लिये मत करो ॥ ४६ ॥ पाक क्रिया करने वाला मैं ही इसे दानादि रूप में कर रहा हूँ । हे यज्ञात्मक कर्म ! इस कार्य में मेरी पत्नी लगी है । हमारे यहाँ सुन्दर कुमारावस्था वाला पुत्र है । हम इस उत्तम यज्ञान्न का पाक और दान आदि कर्मों को करते हैं ॥ ४७ ॥ इस कर्म में कोई हेर फेर नहीं है, इसका कोई अन्य आधार भी नहीं है, यह अपने मित्रों सहित नापता हुआ भी नहीं आता । यह जो पूर्ण पात्र रखा गया है, वही पकाने वाले को फिर मिल जाता है ॥ ४८ ॥ हे यजमान ! प्रिय से भी प्रिय फल वाले कर्म को हम तेरे निमित्त करते हैं । तेरे द्वेषी पुरुष नर्क रूप तम को पावें । गौ, वृषभ, अन्न, आयु और पुरुषार्थ यह हमारे पास आते हुये, अपमृत्यु आदि को दूर भगावें ॥ ४९ ॥ ओषधियों का भक्षक अग्नि और जलों का सेवनकर्त्ता अग्नि अन्योन्य को जानने वाले हैं । यह और अन्य अग्नि भी इस कर्म के ज्ञाता हैं । देवताओं के तप और सुवर्ण तथा अन्य चमचमाते हुये पदार्थ पाककर्त्ता को मिलते हैं ॥ ५० ॥

एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ॥ ५१ ॥
यदक्षेषु वदा यत् समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।
समानं तन्तुमभि संवसानो तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ॥ ५२ ॥
वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत्पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ॥ ५३ ॥
तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् ।
अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥ ५४ ॥

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम् ॥ ५५ ॥
दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५६ ॥
प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५ ॥
उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे ति नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५८ ॥
ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र
ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५९ ॥
ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५६ ॥

यह पशु चर्म में आच्छादित दिखाई पड़ते हैं, इनकी त्वचा पहले पुरुष में थी। हे दम्पति ! क्षात्र शक्ति से तुम अपने को सम्पन्न करो और इस ओदन के मुख को वस्त्र से ढक दो ॥ ५१ ॥ द्यूत कर्म में अथवा युद्ध में धन की अभिलाषा से जो तुमने मिथ्या भाषण किया है, अतः समान तन्तुओं से निर्मित वस्त्र को ढकते हुए अपने दोष को उसमें प्रविष्ट करो ॥ ५० ॥ तू फल की वर्षा करने वाला हो। तू देवताओं के पास जाकर अपनी त्वचा को धुंए के समान उछाल। तू घृतपृष्ठ होता हुआ अनेक प्रकार से पूजित होता हुआ, समान उत्पत्ति वाला बन कर इस पुरुष को स्वर्ग में प्राप्त हो ॥ ५३ ॥ यह ओदन स्वर्ग में अपने को अनेक आकार का बना लेने में समर्थ होता है। जैसे आत्मा ज्ञानी को अनेक प्रकृति का बना लेता है और कृष्णा रुजती को शुद्ध करता जाता है, वैसे ही मैं तेरे रूप का अग्नि में होम करता हूँ ॥ ५४ ॥ हम तुझे पर्व, दिशा, अग्नि, असित सर्प और आदित्य को देते हैं। तुम हमारे यहाँ से जाने तक इसकी रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक हम को भाग्य रूप में प्राप्त कराओ। हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे। हम इस पके हुए ओदन सहित स्वर्गवासी होते हुए आनन्द को प्राप्त करें ॥ ५५ ॥ हम तुझे दक्षिण दिशा, इन्द्र, तिरश्चिसर्प और यम को देते हैं। तुम हमारे यहाँ से जाने तक इसकी रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक भाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ। हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे। इस पके हुए ओदन सहित हम स्वर्ग के आनन्द प्राप्त करें ॥ ५६ ॥ हम तुझे पश्चिम दिशा, वरुण, पृदाकु सर्प और अन्न को देते हैं। तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक इसकी रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक भाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ। हमारा बुढ़ापा ही इसे मृत्यु दे और मरने पर पके हुए इस ओदन सहित स्वर्ग में जाकर हम आनन्द प्राप्त करें ॥ ५७ ॥ हम तुझे उत्तर दिशा, सोम, स्वज नामक सर्प और अशनि को देते हैं। तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक इसकी रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक सौभाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ।

हमारा बुढ़ापा ही इसे मृत्यु दे। मरने पर हम इस पके हुए ओदन के साथ स्वर्ग में जाकर आनन्द प्राप्त करें ॥५८॥ हम तुझे ध्रुव विष्णु दिशा, कल्माष ग्रीव सर्प और इषुमती ओषधियों को देते हैं। तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक इसकी रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक सौभाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ। हमारा बुढ़ापा इसे मृत्यु प्रदान करे। मरने पर हम इस सुपक्व ओदन सहित स्वर्ग में पहुँच कर आनन्द प्राप्त करें ॥ ५९ ॥ हम तुझे ऊर्ध्व दिशा बृहस्पति, श्वित्र सर्प और इषुमान् वर्ष को देते हैं। हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक तुम इसकी रक्षा करो। इस वृद्धावस्था तक सौभाग्य रूप में प्राप्त कराओ। हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे। मरने पर हम इस सुपक्व ओदन सहित स्वर्गगामी हों और वहाँ आनन्द भोगें ॥ ६० ॥

४ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—कश्यपः। देवता—वशा। छन्द—अनुष्टुप्)

ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत।
वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् ॥ १ ॥
प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥ २ ॥
कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥ ३ ॥
विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम्।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥ ४ ॥
पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥ ५ ॥
यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥ ६ ॥
यदस्याः कस्मै चिद् भोगाय वालान् कश्चित प्रकृन्तति।

ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥ ७ ॥
यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥ ८ ॥
यदस्याः पल्पूलनं शकृद दासी समस्यति ।
ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥ ९ ॥
जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥ १० ॥

माँगने वाले ब्राह्मणों को 'देता हूं' कह कर उत्तर दे, फिर वह ब्राह्मण कहते हैं कि यह कर्म यजमान को सन्तानादि से सम्पन्न करने वाला हो ॥ १ ॥ जो पुरुष ऋषि आदि युक्त माँगने वाले ब्राह्मणों को देवताओं के निमित्त गोदान नहीं करता वह अपनी सन्तान का विक्रय करने वाला होता हुआ पशु-रहित हो जाता है ॥ २ ॥ वशा के कूटा (सींग रहित) नामक अङ्ग से अदानी के पदार्थ अशेष हो जाते हैं अदानी श्लोणा (लंगड़ी) से 'फाट' को पीड़ित करता है । बण्डा (विकल) से इसके गृह का दाह होता और काणा (एक आंख वाला) से धन चला जाता है ॥ ३ ॥ हे वशे ! तू दुरदम्ना कहाती है । गौ के स्वामी को वशा के अधिष्ठान से विलोहित दानन और सम्विद्य मिलता है ॥ ४ ॥ गौ के स्वामी को वशा के पाँवों के अधिष्ठान से विक्लिन्दु नाम की विपत्ति मिलती है । उसके सूंघने मात्र से बिना जाने ही इसके पदार्थ नष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥ इसके कानों का आप्रवण (दुःख देना) करने वाला देवताओं में काटा जाता है । जो अपने को लक्ष्म (चिह्न) करने वाला मानता है वह अपने को छोटा बना लेता है ॥ ६ ॥ किसी भोग के निमित्त इसके बालों को काटता तो इसके युवा पुत्र मृत्यु को प्राप्त होते हैं और शृंगाल इसके वत्सों का संहार करता है ॥ ७ ॥ गौ के स्वामी की उपस्थिति में यदि गौ के लोम को कौआ अपमानित करता है तो इसके पुत्र नष्ट होते हैं और क्षय रोग प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ यदि इसके गोबर आदि को दासी फैंकती है तो पुरुष उस पाप से नहीं छूटता और कुरूप हो जाता है

॥ ९ ॥ वशा देवताओं और ब्राह्मणों के लिए ही प्रकट होती है, इस लिए ब्राह्मणों को दान देना ही अपना रक्षण करना है ऐसा विद्वज्जन कहते हैं॥१०॥

य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥ ११ ॥
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२ ॥
यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥ १३ ॥
यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥ १४ ॥
स्वमेतदच्छायन्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥ १५ ॥
चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥ १६ ॥
य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ १७ ॥
यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ॥ १८ ॥
दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्वा चिकीर्षति ॥ १९ ॥
देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥ २० ॥

जो इसे परमप्रिय समझते हुए इसकी सेवा करते हैं उनके लिए यह ब्रह्मज्या होती है, यह विद्वानों का कथन है ॥ ११ ॥ जो पुरुष देवताओं की

गाय को ऋषि प्रवर युक्त ब्राह्मणों को नहीं देना चाहता, वह ब्रह्म-कोप के कारण देवताओं द्वारा नाश को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ यदि वशा इसके लिए उपभोग्य हो तो वह अन्य की कामना करे। जो पुरुष याचक को वशा नहीं देता तो यह अप्रदत्त वशा उसे नष्ट कर देती है ॥ १३ ॥ धरोहर के समान ही वशा ब्राह्मणों की होती है। वह चाहे जिसके घर प्रकट हो जाय, वह ब्राह्मण उसके सामने जाकर उसे माँगते हैं ॥ १४ ॥ वशा के सामने आने वाले ब्राह्मण अपने ही धन के सामने आते हैं। इन्हें वर्जित करना अपने ही को हानि पहुँचाने वाला है ॥१५॥ हे नारद ! यह धेनु अविज्ञात गदा रूप में तीन वर्ष तक भक्षण करे फिर इस धेनु को वशा मानता हुआ ब्राह्मणों की खोज करे ॥ १६ ॥ इस देवताओं की धरोहर रूप वशा को जो अवशा कहता है, वह भव और शर्व के बाणों का लक्ष्य होता है ॥ १७ ॥ जो इसके स्तनों और ऐनों को न जानता हुआ वशा का दान करता है तो यह उसे दोनों से फल देने वाली होती है ॥ १८ ॥ जो इसे माँगने पर भी नहीं देता है तो दुरदम्न वशा उसे जकड़ती है। इसे अपने पास ही रखना चाहता है उसके अभीष्ट पूर्ण नहीं होते ॥ १९ ॥ ब्राह्मण का मुख बनाकर देवता वशा माँगते हैं, न देने वाला मनुष्य उनके क्रोध का लक्ष्य होता है ॥ २० ॥

हेडं पशूनां न्येनि ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥ २१ ॥
यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२ ॥
य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३ ॥
देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४ ॥
अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥ २५ ॥

अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ।।२६।।
यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम ।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ।।२७।।
यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वीचोचरत् ।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ।।२८।।
वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ।।२९।।
आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याच्ञाय कृणुते मनः ।।३०।।

जो पुरुष देवताओं के धरोहर रूप भाग को अपना अत्यन्त प्रिय समझता है, वह ब्राह्मणों को वशादान न करने के कारण पशुओं का क्रोध प्राप्त करता है ।।२१।। गो के स्वामी से अन्य चाहे सैकड़ों ब्राह्मण वशा माँगें, परन्तु वशा विद्वान् की होती है—ऐसी देवोक्ति है ।। २२ ।। जो पुरुष विद्वान् को गो न देता हुआ अन्य को देता है उसके लिए पृथिवी देवताओं सहित दुर्गम होती है ।।२३।। जिसके सामने वशा प्रकट होती है, देवता उससे वशा माँगते हैं । यह जानकर नारद भी देवताओं सहित वहाँ पहुँच गये ।। २४ ।। ब्राह्मणों द्वारा माँगी गई वशा को जो पुरुष अत्यन्त प्रिय मानता हुआ नहीं देता तो वही वशा उसे सन्तान-हीन और अल्प पशुओं वाला कर देती है ।। २५ ।। ब्राह्मण अग्नि के लिए सोम, काम और मित्रा-वरुण के लिए माँगते हैं । वशा न देने पर ये उसे ही काटते हैं ।।२६।। गो का स्वामी जबतक गो के सम्बन्ध में कोई संकल्प न करे तब तक उसकी गौओं में विचरे, फिर उसके घर में वास न करे ।।२७।। जो संकल्प रूप वाणी के पश्चात् भी अपनी गौओं में विचरण करता है, वह देवताओं का अपमान करने वाला उनकेही द्वारा अपनी आयु और अपने ऐश्वर्यको नष्ट करता है ।। २८ ।। देवताओं की निधि रूप वशा अनेक प्रकार विचरण करती हुई

जब स्थान को नष्ट करना चाहती है तब विभिन्न रूपों को प्रकट करती है ।। २९ ।। जब वह अपने स्थान का नाश करने की इच्छा करती है तब वह ब्राह्मणों द्वारा मांगे जाने की इच्छा करती हुई अनेक रूप प्रकट करतीहै ।।३।।

मनसा सं कल्पयति तद् देवाँ अपि गच्छति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ।।३१।।
स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः ।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छन्ति ।।३२।।
वशा माता राजन्यस्य वथा संभूतमग्रशः ।
तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।।३३।।
यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये ।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत् ।।३४।।
पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ।।३५।।
सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ।।३६।।
प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ।।३७।।
यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् ।
अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ।।३८।।
महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि
अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ।।३९।।
प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत् प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात् ।।४०।।

वह जब इच्छा करती है तो उसकी इच्छा देवताओं के पास जाती

है, तब ब्राह्मण वशा को माँगने के लिए उसके पास आते हैं ॥ ३१ ॥ पितरों के लिए स्वधा करने से, देवताओं के लिए यज्ञ करने से और वशा दान से क्षत्रिय माता का क्रोध नहीं पाता ॥ ३२ ॥ राजन्य की माता वशा है, इनका समूह पहले प्रकट हुआ था। ब्राह्मणों को दान करने से पहले उसे अनर्पण कहते हैं ॥ ३३ ॥ ग्रहण किया घृत जैसे स्रुवा से अग्नि के लिए पृथक् होता है, वैसे ही ब्राह्मणों को वशा न देने वाला, अग्नि के लिए पृथक् होता है ॥ ३४ ॥ इस लोक में सुन्दरता से दुहाने वाली वशा इस यजमान के पास रहती है और दाता के सब अभीष्टों को प्रदान करती है ॥ ३५ ॥ यम के राज्य में यह वशा दाता की सब कामनाओं को देने वाली है और याचित वशा के न देने पर विद्वज्जन नरक प्राप्ति की बात कहते हैं ॥३६॥ क्रोध में भरी हुई वशा गोपति को खाती हुई-सी घूमती है। वह कहती है कि मुझ गर्भघातिनी को अपनी जानने वाला मूर्ख मृत्यु के बन्धनों में पड़े ॥ ३७ ॥ जो गर्भघातिनी वशा को अपनी मानता या उसका पचन करता है, बृहस्पति उसके पुत्र, पौत्रादि को लेने की इच्छा करते हैं ॥ ३८ ॥ यह वशा अन्य गौओं में ताप बढ़ाती हुई घूमती है। यदि स्वामी इसका दान नहीं करता तो यह उसके लिए विष का दोहन करती है ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणों को वशा दे देने पर पशुओं का प्रिय होता है। वशा का भी यह प्रिय होता है। वह देवताओं में हवि रूप से प्रदान की जाती है ॥४०॥

या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य।
तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥ ४१ ॥

तां देवा अमीमांसन्त वशेयामवशेति।
तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥४२॥
कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयाद ब्राह्मणः ॥ ४३ ॥
विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा।
तस्या नाश्नीयाद ब्राह्मणो य आशसेत भूत्याम् ॥४४॥

नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।
कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥ ४५ ॥

विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥४६॥
त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।
ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥ ४७ ॥
एतद् वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।
वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥ ४८ ॥

देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद् वै स पराभवत् ॥ ४९ ॥

उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥ ५० ॥

ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥ ५१ ॥
ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥५२॥

यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वशाम् ।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ॥ ५३ ॥

यज्ञ से प्रकट देवताओं ने वशा को बनाया । नारद ने तब विलप्ती भीमा को स्वीकार किया ॥४१॥ उस समय देवताओं ने यह कहा कि वह वशा अवशा है । परन्तु नारद ने उसे वशाओं में परम वशा बताया ॥ ४२ ॥ हे नारद ! तुम ऐसी कितनी वशाओं के ज्ञाता हो जो मनुष्यों में प्रकट होती हैं ? विद्वान् होने के कारण ही तुमसे पूछता हूँ । अब्राह्मण किसके प्राशन से बचे ? ॥ ४३ ॥ हे बृहस्पति ! जो अब्राह्मण ऐश्वर्य चाहे वह विलिप्त, तूतवशा और वशा का प्राशन न करे ॥४४॥ हे नारद ! तुम्हें नमस्कार है ।

विद्वान् की स्तुति के अनुकूल ही वशा है। इनमें भयंकर वशा कौन-सी है। जिसका दान न करने पर पराजय प्राप्त होती है ।।४५।। हे वृहस्पते ! ऐश्वर्य की प्रार्थना वाला अब्राह्मण विलिप्ती, सूर्यवशा और वशा का प्राशन न करे ।। ४६ ।। वशाओं के तीन भेद हैं विलिप्ती, सूतवशा और वशा । इन्हें ब्राह्मणों को दे दे तो वह प्रजापति के लिये क्षोभजनक नहीं होता ।।४७।। दान न करने वाले के घर में यदि भीमा वशा है तो उस वशा की याचना करने पर यह माने कि 'हे ब्राह्मणो ! तुम्हारे लिए यह हवि रूप है' ।।४८।। क्रोधित देवताओं ने वशा से कहा कि इसने हमको दान नहीं किया इसलिए यह दान न करने वाला पराजित होता है ।।४६।। इन्द्र की प्रार्थना करने पर भी यदि वशा को न दे तो उसके इस पाप के कारण देवता उसे अहंकार में व्याप्त कर मिटा देते हैं ।। ५० ।। जो वशा का दान न करने को कहते हैं वे मूर्ख इन्द्र के क्रोध से स्वयं को नष्ट करते हैं ।। ५१ ।। जो लोग गौ के स्वामी से न देने को कहते हैं वे मूर्ख रुद्र के आयुध के लक्ष्य होते हैं ।। ५२ ।। हुत या अहुत वशा का पचन करने वाला देवता और ब्राह्मणों का अपमान करने वाला होता है। वह इस लोक में बुरी गति को पाता है ।।५३।।

५ (१) सूक्त (पाँचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—कश्यपः । देवता—ब्रह्मगवी छन्द-अनुष्टुप्; पङ्क्तिः; उष्णिक्)

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तऋते श्रिता ।।१।।
सत्येनावृत्ता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ।।२।।
स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे-
प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ।।३।।
ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ।।४।।
तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ।।५।।
अप क्रामति सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः ।।६।।

श्रम के द्वारा रची हुई परब्रह्म में आश्रित इस धेनु को ब्राह्मण ने श्रम

से प्राप्त किया ॥१॥ यह सत्य, सम्पत्ति, और यश से परिपूर्ण रहती है ॥२॥ यह श्रद्धा से 'पर्यूढ़' स्वधा से परिहित, दीक्षा द्वारा रक्षित तथा यज्ञ से प्रतिष्ठित रहती है। इसकी ओर क्षत्रिय का दृष्टिपात करना मृत्यु के समान हैं ॥ ३ ॥ इसके द्वारा ब्रह्म पद मिलता है। इस गौ का स्वामी ब्राह्मण ही है ॥ ४ ॥ ब्राह्मण की ऐसी गौ के अपहरणकर्त्ता और ब्राह्मण को व्यथित करने वाले क्षत्रिय की लक्ष्मी, वीर्य और प्रिय वाणी पलायन कर जाती हैं ॥ ५६ ॥

५ (२) सूक्त

(ऋषि—कश्यपः। देवता—ब्रह्मगवी। छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्; उष्णिक्; पंक्ति)

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च
धर्मश्च ॥७॥
ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च-
द्रविणं च ॥८॥
आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च
चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥९॥
पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च ऋतं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं
च प्रजा च पशवश्च ॥१०॥
तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो
ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥११॥

ओज, तेज, बल, वाणी, इन्द्रियां, लक्ष्मी और धर्म ॥७॥ वेद, क्षात्रशक्ति, राष्ट्र, दीप्ति, यश, वर्च और धन ॥ ८ ॥ आयु, रूप, नाम, कीर्ति, प्राणापान, नेत्र और कान ॥ ९ ॥ दूध, रस, अन्न, अग्नि, ऋत, सत्य, इष्ट, पूर्त और प्रजा ॥ १० ॥ उस क्षत्रिय के यह सभी छिन जाते हैं जो ब्राह्मण की गौ का अपहरण कर उसकी आयु को क्षीण करता है ॥११॥

५ (३) सूक्त

(ऋषि—कश्यपः । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—गायत्री; अनुष्टुप्; उष्णिक्; जगती; बृहती)

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यघविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ॥१२॥
सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥ १३ ॥
सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥१४॥
सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्या दीयमाना मृत्योः
पड्वीश आ द्यति ॥ १५ ॥
मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥१६ ॥
तस्माद् वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥ १७ ॥
वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥ १८ ॥
हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवोपेक्षमाणा ॥ १९ ॥
क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ २० ॥
मृत्युर्हिङ् कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ २१ ॥
सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥ २२ ॥
मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥ २३ ॥
सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥ २४ ॥
शरव्या मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥ २५ ॥
अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ २६ ॥
अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥ २७ ॥

ब्राह्मण की यह धेनु विकराल होती है। कूल्बज से ढके हुए हिंसात्मक पाप के विष से युक्त होती हुई यह कृत्या रूप हो जाती है ॥ १२ ॥ इसमें सभी विकराल कर्म और मृत्युदायक कारण व्याप्त रहते हैं ॥१३॥ इसमें सब प्रकार के क्रूर कर्म और पुरुषों के सब प्रकार के वध व्याप्त रहते हैं ॥१४॥

ब्राह्मण से छीनी हुई ऐसी यह गौ ब्राह्मणत्व को अपमानित करने वाले व्यक्ति को मृत्यु के बन्धन में बांध देती है ॥१५॥ जो ब्राह्मण की आयु को न्यून करने वाले के लिए क्षीणताप्रद यह गौ सैकड़ों प्रकार से संहारात्मक अस्त्र होती है ॥१६॥ इस लिए विद्वान् पुरुष ब्राह्मणों की धेनु को घोर रूप में जाने ॥१७॥ वह अग्नि के समान ऊपर उठती और वज्र के समान दौड़ती है ॥१८॥ वह खुरों का शब्द करती हुई महादेव की आयुध रूप हो जाती है ॥१९॥ वह रंभाती हुई धेनु कड़कती है और तीक्ष्ण वज्र के समान हो जाती है ॥२०॥ हिं शब्द करती हुई धेनु मृत्यु के समान होती है और सब ओर पूंछ को घुमाती हुई उग्र रूप में हो जाती है ॥ २१ ॥ सब प्रकार से आयु को क्षीण करने वाली यह गौ कानों को हिलाती है । वह अपने मूत्र को त्यागती हुई क्षय की उत्पादिका हो जाती है ॥ २२ ॥ जब दुही जाती है तब मारक अस्त्र के समान होती है और दुही जाने पर शिर रोग रूप वाली हो जाती है ॥२३॥ परामृष्ट होने पर परस्पर युद्ध कराती और पास खड़ी होने पर विशीर्ण करती है ॥२४॥ पीटने पर दुर्गतिप्रद तथा मुख ढकने पर निशान करने वाली होती है ॥२५॥ बैठती हुई यह गौ अघविषा होती है और बैठी हुई मृत्युदायक व्याधि उत्पन्न करती है ॥२६॥ यह ब्राह्मण की गाय ब्राह्मण की हानि करने वाले का अनुगमन करती हुई उसके प्राणों का क्षय करती है ॥२७॥

५ (४) सूक्त

(ऋषि—कश्यपः । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द— गायत्री; अनुष्टुप्; त्रिष्टुप् बृहती, उष्णिक्)

वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥ २८ ॥
देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ॥ २९ ॥
पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥ ३० ॥
विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥ ३१ ॥
अघं पच्यमाना दुःष्वप्न्यं पक्वा ॥३२॥

मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥३३॥
असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ॥३४॥
अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥३५॥
शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥३६॥
अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥३७॥
अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥३८॥

यह ब्राह्मण की अपहृत गौ पुत्र पौत्रादि का बटवारा कराती हुई छेदन करने वाली है ॥ २८ ॥ हरण करते समय यह अस्त्र रूप तथा हरण किये जाने पर क्षीण करने वाली होती है ॥ २९ ॥ पाप रूप होने वाली यह धेनु कठोरता उत्पन्न करती है ॥ ३० ॥ प्रयस्यंती विष के समान और प्रयस्ता जीवन को संकट में डालने वाली होती है ॥३१॥ पचन काल में व्यसनप्रद और पकने पर दुःस्वप्न वाली होती है ॥३२॥ पर्याक्रियमाणा मूल से उखाड़ देती है और पराकृता क्षीण करती है ॥३३॥ उद्ध्रियमाणा शोक देने वाली होती है, उद्धृता सर्प के समान विष वाली होती है, गन्ध से चैतन्यता को हर लेती है ॥ ३४ ॥ उपहृता पराभूति होती है और उपह्रियमाणा अभूति होती है ॥ ३५ ॥ पिश्यमाना क्रोधित शर्व के समान होती है और पिशिता शिमिदा होती है ॥ ३६ ॥ प्राशन की जाती हुई धेनु दरिद्रता और प्राशन किये जाने पर बुरी गति देने वाली पापदेवी निर्ऋति बन जाती है ॥३७॥ ब्राह्मण को हानि पहुँचाने पर ब्राह्मण की धेनु इहलोक और परलोक दोनों से हीन कर देती है ॥ ३८ ॥

५ (५) सूक्त

(ऋषि—कश्यपः । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—पंक्ति, अनुष्टुप्; बृहती)

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥३९॥
अस्वगता परिह्णुता ॥४०॥
अग्निः क्रव्याद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥४१॥

सर्वास्यांगा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥४२॥
छिनत्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥४३॥
विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मजस्य
क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥४४॥
अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥४५॥
य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गमादत्ते ॥४६॥

इस धेनु का आशमन मारणात्म है, इसका आहनन कृत्या है और गोबर युक्त आधा पका हुआ चारा शपथ के समान है ॥ ३९ ॥ यह अपहृत धेनु अपने वशमें नहीं रहती ॥ ४० ॥ ब्राह्मण की धेनु क्रव्याद् अग्नि बन कर ब्रह्मज्य में प्रविष्ट हो उसे खाती है ॥ ४१ ॥ उसके सब अङ्ग और जोड़ों को छिन्न करती है ॥ ४२ ॥ इसके पिता के बांधवों का भी छेदन करती और माता के बांधवों को अपमानित कराती है ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण की गाय, क्षत्रिय द्वारा न लौटाई जाने पर ब्रह्मज्य के सब विवाहित बन्धुओं को नष्ट करती है ॥ ४४ ॥ यह उसे सन्तानहीन गृह-हीन करती है वह अपरापरण होकर क्षय को प्राप्त हो जाती है ॥ ४५ ॥ उपरोक्त दशा उस क्षत्रिय की होती है जो विद्वान् ब्राह्मण की गौ का अपहरण कर लेता है ॥ ४६ ॥

५ (६) सूक्त

(ऋषि—कश्यप । देवता-ब्रह्मगवी । छन्द—अनुष्टुप्, बृहती; उष्णिक्, गायत्री)

क्षिप्रं वै तस्याहनने गृधाः कुर्वत ऐलबम् ॥४७॥
क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः ।
पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलबम् ॥४८॥
क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ॥४९॥
क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत् तदासी दिदं नु तादिति ॥५०॥
छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥५१॥

आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ ५२ ॥
वैश्वदेवी ह्यु च्यसे कृत्या कूल्वजमावृता ॥५३॥
ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥ ५४ ॥
क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥ ५५ ॥
आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥ ५६ ॥
आदाय जीतं जीताय लोकेऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ॥ ५७ ॥
अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥ ५८ ॥
मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥ ५९ ॥
अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥६०॥
त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥६१॥

जो क्षत्रिय उस गाय को ले जाता है, उसकी नेत्रापत्ति युद्ध करते हैं ॥४७॥ उसे भस्म करने वाली चिता के पास केश वाली स्त्रियाँ पहुँच कर वक्ष को कूटती और अश्रु पात करती हैं ॥ ४८ ॥ उसके घरों में शीघ्र ही शृगाल अपने नेत्रों को घुमाते हैं ॥ ४९ ॥ उसके सम्बन्ध में यह कहा जाने लगता है कि उसका यह घर था ॥ ५७ ॥ तू इस अपहरणकर्त्ता का छेदन कर और उसे नष्ट कर डाल ॥ ५१ ॥ हे आंगिरसि ! तू इस अपहरणकर्ता ब्रह्मज्य का नाश कर ॥ ५२ ॥ तू कूल्वज से ढकी हुई विश्वदेवी कृत्या कही जाती है ॥ ५३ ॥ तू मन्त्र रूपी वज्र से भले प्रकार नष्ट करने वाली है ॥ ५४ ॥ तू मृत्यु रूप होती हुई दौड़ ॥ ५५ ॥ तू अपहरणकर्त्ता के तेज, कामना, पूर्त और आशीर्वादात्मक शब्दों का हरण करती है ॥ ५६ ॥ उस ब्राह्मण की हानि करने वाले को न्यून आयु करने के लिए पकड़ कर परलोकगामी करती है ॥ ५७ ॥ हे अघ्न्ये ! ब्राह्मण के शाप के कारण तू ब्रह्मज्य के पैरों के लिए बेड़ी रूप हो ॥ ५८ ॥ तू अस्त्र रूप बाणों के समूह को प्राप्त होती हुई उसके पाप के कारण अघविषा होजा ॥५९॥ हे अघ्न्ये ! तू उस देवहिंसक अपराधी के कार्य को विफल करने के लिए उसके सिर

को काट डाल ॥६०॥ तेरे द्वारा प्रमूर्ण और मर्दन किए हुए उस पाप चित्त वाले को अग्नि भस्म कर डालें ॥ ६१ ॥

५ (७) सूक्त

(ऋषि—कश्यपः । देवता—ब्रह्मगवी । छन्दः—अनुष्टुप्; गायत्री; पङ्क्ति; त्रिष्टुप्; उष्णिक्)

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥६२॥
ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्ये आ मूलादनुसंदह ॥६३॥
यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥६४॥
एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥६५॥
वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥६६॥
प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥६७॥
लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥६८॥
मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥६९॥
अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥७०॥
सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥७१॥

अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ॥७२॥
सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥७३॥

हे अघ्न्ये ! ब्रह्मज्य को काट, भस्म कर, उसे समूल भस्म कर ॥ ६२-६३ ॥ हे अघ्न्ये ! उस अपराधी देवहिंसक, कार्य में बाधा रूप ब्रह्मज्य के कन्धों को और सिर को भी तीक्ष्ण धार वाले वज्र से काट डाल जिससे वह अत्यन्त दूर के पापलोकों में गमन करे ॥ ६४-६५-६६-६७ ॥ इसके लोमों को काट कर चर्म उधेड़ दे ॥ ६८ ॥ इसके मांस को काट कर नसों को सुखा दे ॥ ६९ ॥ इसकी हड्डियों में दाह और मज्जा में क्षय

व्याप्त कर ॥ ७० ॥ इसके अवयवों और लोड़ों को ढीला करदे ॥ ७१ ॥ वायु इसे अन्तरिक्ष और पृथिवी से भी खदेड़ दें और क्रव्याद् अग्नि इसे भस्म करदे ॥ ७२ ॥ सूर्य भी इसे स्वर्ग से ढकेल दें और भस्म कर डालें ॥७३॥

॥ द्वादश काण्डं समाप्तम् ॥

त्रयोदश कांड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अध्यात्मम् रोहितः, आदित्यः, मरुतः, अग्निः; अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, पंक्तिः, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती)

उदेहि वाजिन् यो अपस्वन्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥१॥
उद्वाज आ गन् यो अप्स्वन्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः ।
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥२॥
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥३॥
रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम् ।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥४॥
आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत् ।

तस्मै ते द्यावा पृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः ॥५॥
रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान ।
तत्र शिश्रिये ऽज एकापादोऽदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन ॥ ६ ॥
रोहितोद्यावापृथिवी अदृंहत् तेन स्व स्तभितं तेन नाकः ।
तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ॥७॥
वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।
दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥८॥
यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥९॥
यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः ।
तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः ॥१०॥

हे सूर्य ! तुम अन्तरिक्ष में छुपे हो, उदय होओ । प्रिय और सत्य वाणी से युक्त होकर इस राष्ट्र में आओ । ऐसे इन सूर्य ने संसार को प्रकाशित किया वह तुम्हें राष्ट्र के भरणकर्त्ता के रूप में पुष्ट करें ॥ १ ॥ जल में रहने वाली जो प्रजाऐं और बलप्रद अन्न हैं, वे तुम्हारे पास आवें । तुम उन पर चढ़ो और सोम को धारण करते हुए, जल, ओषधि और दुपायों चौपायों को इस राष्ट्र में प्रविष्ट करो ॥२॥ हे मरुद्गण ! तुम इन्द्र के सखा हो । तुम शत्रु का नाश करो । तुम सुस्वादु पदार्थों से प्रसन्न होने वाले हो और सुन्दर वृष्टि को प्रदान करते हो । सूर्य तुम्हारी बात सुनें ॥ ३ ॥ सूर्य उदय होते हुए चढ़ रहे हैं । यह उत्पादकों के शरीरांग में पत्नियों के गर्भ रूप से उत्पन्न होते हैं । छः उर्वियों की प्राप्ति के लिये नित्य प्रति राष्ट्र को देखते हुए वे उर्वियों को प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ तेरे राष्ट्र पर सूर्य आगए इसलिए तू युद्ध का भय न कर । आकाश पृथिवी धन देने वाली ऋचाओं द्वारा तेरे निमित्त कामनाओं का दोहन करें ॥ ५ ॥ सूर्य ने आकाश पृथिवी को प्रकट किया, प्रजापति ने उसमें तन्तु को बढ़ाया । वहाँ एक पाद अज ने आश्रय लेकर आकाश पृथिवी को बल से युक्त किया ॥६॥ सूर्य ने आकाश

पृथिवी को दृढ़ किया उसने दुःख रहित स्वर्ग को स्थिर किया, उसी ने अन्तरिक्ष तथा अन्य सब लोकों को बनाया और देवताओं ने उसी से अमृतत्व प्राप्त किया ॥ ॥ रुह और प्ररुह को भले प्रकार प्रकट करने वाले सूर्य ने सब शरीरों को छुआ। वह सूर्य अपने महत्व से तेरे राष्ट्र को घृत दूध से सम्पन्न करें ॥८॥ जो तुम्हारी रोहण, प्ररोहण और आरोहण शील प्रजा और लता आदि हैं, जिनके द्वारा तुम अन्तरिक्ष के प्राणियों का भरण पोषण करते हो,उसके दूध के समान सार युक्त कर्म द्वारा मित्र बल से वृद्धि को प्राप्त हुए तुम सूर्य के राष्ट्र में सचेत रहो ॥९॥ जो प्रजाऐं तपोबल से प्रकट हुई हैं जो गायत्री रूप वत्स द्वारा यहाँ आई हैं, वह कल्याण करने वाले चित्त से तुम में रमें, इनका वत्स सूर्य तुम्हारे पास आगमन करे ॥१०॥

ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थादि विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः
तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥११॥
सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः ।
मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं
च मे वीरपोषं च धेहि ॥१२॥
रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा
श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमानाः स मा रोहैः
सामित्यै रोहयतु ॥१३॥
रोहितो यज्ञं व्य दधाद् विश्वकर्मणे तस्मात्
तेजांस्युप मेमान्यागुः ।
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥१४॥

आ त्वा रुरोह बृहत्युत पङ्क्तिरा ककुब् वर्चसा जातवेदः ।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आत्वारुरोह रोहितोरेतसा सह १५

अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम् ।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्व र्लोकान् व्या नशे ॥ १६ ॥
वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्
पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ॥ १७ ॥
वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नो वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि
रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥
वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्
पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ॥ १९ ॥
परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥ २० ॥

जब वे सूर्य ऊँचे होकर स्वर्ग में प्रतिष्ठित होते हैं तब वे सब रूपों को प्रकट करते हैं। उनकी ही तीक्ष्ण ज्योति से अग्नि ज्योतिर्मान् है। वे तृतीय लोक में प्रिय फलों को प्रकट करते हैं ॥ ११ ॥ सहस्रों सींग वाले घृत से आहुत, इष्टों की पूर्ति वाले, सोमपृष्ठ, सुवीर, जातवेदा अग्नि मेरा त्याग न करें। मुझे गौओं और पुत्र पौत्रादि की पुष्टि में प्रतिष्ठित करें ॥ १२ ॥ सूर्य, यज्ञ के प्रकट करने वाले और यज्ञ के मुख रूप हैं, वाणी श्रोत्र और मन से मैं उन सूर्य के लिये आहुति देता हूँ। प्रसन्न होते हुये सब देवता सूर्य के समीप जाते हैं। वे मुझे संग्राम के निमित्त ऊँचा उठावें ॥ १३ ॥ सूर्य ने विश्वकर्मा के लिये यज्ञ का पोषण किया, उस यज्ञ के द्वारा वह तेज मुझे प्राप्त हो रहे हैं। मैं तुम्हारी नाभि को लोक की मज्जा पर बताता हूँ ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! बृहती, पंक्ति और ककुप् छंदों ने तथा उष्णिहा और अक्षर ने तुम में प्रवेश किया है और वषट्कार भी तुम में प्रविष्ट हो गया। सूर्य भी तुम में

अपने तेज से प्रविष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ सूर्य पृथिवी के गर्भ को, आकाश और अन्तरिक्ष को भी ढक लेते हैं। यह सब संसार के वर्धक सभी स्वर्गों में व्याप्त होते हैं ॥ १६ ॥ हे वाचस्पते ! हमको पृथिवी, योनि, शय्या सुख देने वाली हों। प्राण हमसे मित्रता करता हुआ रमे ! हे प्रजापते ! अग्नि तुम्हें आयु और तेज से धारण करने वाले हों ॥ १७ ॥ हे वाचस्पते ! हमारे कर्म द्वारा जो पाँच ऋतुयें प्रादुर्भूत हुई उनमें हमारा प्राण मित्र भाव से स्थित रहे। हे प्रजापते ! तुम्हें सूर्य अपने तेज और आयु से धारण करें ॥ १८ ॥ हे वाचस्पते ! हमारा मन प्रसन्नता से युक्त रहे। तुम हमारे गोष्ठ में गौओं को प्रकट करो और हमारी योनियों में सन्तानों को उत्पन्न करो। हमारे साथ प्राण मित्र भाव से रहे। मैं आयु और तेज से तुम्हें धारण करता हूँ ॥ १९ ॥ हे राजन् ! सविता तुम्हें सब ओर से पोषण दे। अग्नि, मित्र और वरुण तुम्हें पुष्ट करें। तुम सब शत्रुओं को वशीभूत करते हुए इस राष्ट्र में आकर सत्य प्रिय वाणी को पुष्ट करो ॥ २० ॥

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित।
शुभा यासि रिणन्नपः ॥२१॥
अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥२२॥
इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥२३॥
सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम्।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥२४॥
यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव।
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ॥२५॥
रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात्।
सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ॥२६॥
वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा।

इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व ॥२७॥
समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥२८॥
हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति ।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥२९॥
अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।
अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोऽभिरादिषि ॥ ३ ॥

हे सूर्य ! तुम्हें पृषती प्रष्टि रथ में धारण करती हैं, जलों में चलते हुये कल्याण के निमित्त गमन करते हो ॥२१॥ चढ़ते हुए रोहित की रोहणी अनुचरा है वह सुन्दर वर्ण वाली बृहती और सुन्दर तेज वाली है, उसी से हम विभिन्न रूपों वाले प्राणियों पर विजय प्राप्त करते हैं। उसी से हम सब सेनाओं को वशीभूत करें ॥ २२ ॥ यह रोहिणी और रोहित का धाम है, इसी मार्ग से पृषती गमन करती है, उसे गन्धर्व ऊपर ले जाते है। चतुर व्यक्ति इसकी सावधानी से रक्षा करते हैं ॥ २३ ॥ सूर्य के घोड़े वेगवान् और ज्ञानयुक्त हैं, वे अमरत्व वाले रथ को सुगमता से खींचते हैं। उन फल से सम्पन्न करने वाले सूर्य पृषती स्वर्ग में प्रविष्ट हुए ॥ २४ ॥ वे रोहित अभीष्ट वर्षक हैं, तीक्ष्ण रश्मियों से युक्त हैं। जो अग्निदेव सूर्य की ओर रहते और पृथिवी आकाश को स्थिर रखते हैं, उन्हीं के बल से देवता सृष्टि को रचते हैं ॥ २५ ॥ वे सूर्य समुद्र से आकाश पर चढ़ते और रोहणशील वस्तुओं पर भी चढ़ते है ॥ २६ ॥ तू देवताओं की पयस्वती पूजिता गौ का मान करने से अनयस्पृक् है। अग्नि कुशल-मंगल करें और इन्द्र सोम को पीवें। तब तू शत्रुओं को रणक्षेत्र में खदेड़ डाल ॥ २७ ॥ यह अग्नि प्रदीप्त होकर घृत से प्रवृद्ध हुए हैं, इनमें घृताहुति दी गई हैं। वे शत्रुओं को हराने वाले हैं अतः मेरे शत्रुओं का संहार करें ॥ २८ ॥ इन सब शत्रुओं का अग्निदेव संहार करें। जो शत्रु सेना के सहित आकर हमको मारना चाहे उसे अग्निदेव भस्म करदें। हम क्रव्याद् अग्नि के द्वारा शत्रुओं को जलाते हैं ॥ २९ ॥

हे इन्द्र ! तुम भुजबल से युक्त हो इस लिये हमारे शत्रुओं को मारो और हे अग्ने ! तुम अपनी ज्वालाओं से उसे भस्म कर डालो ॥ ३० ॥

अग्नेसपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते ।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥ ३१ ॥

उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि ।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्स ब्रह्म सन्त ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ॥ ३४ ॥

ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः सविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥ ३५ ॥

उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।
तिरः समुद्रमति रोचसे अर्णवम् ॥ ३६ ॥

रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति सधनाजिति ।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेय ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि॥ ३७॥

यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः ॥ ३८ ॥

अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि ।
इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥ ३९ ॥

देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।
समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥ ४० ॥

हे अग्ने ! तुम हमारे शत्रुओं को पतित करो । हे बृहस्पते ! तुम उन्नत होते हुये समान जन्म वाले शत्रु को संतापमय करो । हे इन्द्राग्नि,

और मित्रावरुण देवताओ ! जो शत्रु हम से विरोध करें, वे पतित हो जाँय ॥३१॥ हे उदय होते हुए सूर्य ! तुम मेरे शत्रु को मारो। इन्हें पत्थरों से मार डालो। यह मृत्यु के समान घोर अन्धेरे को प्राप्त हों॥ ३२॥ विराट् के वत्स सूर्य अन्तरिक्ष पर चढ़ते हैं। सूर्य रूप वत्स जब ब्रह्म हो जाते हैं तब भी वे मन्त्र से प्रवृद्ध किये जाते हैं॥ ३३॥ हे राजन् ! तुम पृथिवी पर अधिष्ठित रहो, राष्ट्र और धन पर भी अधिष्ठित रहो। प्रजाओं के लिए छत्र के समान छाया करते रहो। तुम अमृत पर अधिष्ठित होते हुए, सूर्य से स्पर्द्धा करने वाले होओ और स्वर्ग पर आरोहण करो॥ ३४॥ राष्ट्र का भरण करने वाले जो देवता सूर्य के चारों ओर घूमते हैं, उनसे समान मति रखते हुए रोहित देव तुम्हारे राष्ट्र को सुपुष्ट करें॥ ३५॥ हे सूर्य ! यह मन्त्रपूत यज्ञ तुम्हारा वहन करते हैं और मार्ग में गमन करने वाले अश्व भी तुम्हें वहन करते हैं। तुम तिरछे होकर समुद्र को अत्यन्त शोभायमान करते हो॥३६॥ वसुजित्, गोजित्, संधनजित् नामक रोहित में आकाश पृथिवी आश्रित हैं। मैं उनके सात सहस्र प्रादुर्भावों का वर्णन करता हुआ उन्हें लोक की मज्जा का बंधन मानता हूँ॥ ३७॥ तुम अपने यश के द्वारा दिशा प्रदिशाओं में गमन करते हो। यश के द्वारा ही मनुष्यों और पशुओं में घूमते हो। मैं भी सविता देव के समान ही अखण्डनीया पृथिवी के अङ्क में यश से ही समृद्ध होऊँ॥ ३८॥ तुम लोक परलोक में रहते हुए भी यहाँ की सब बातों के ज्ञाता हो। तुम यहाँ और वहाँ के सब प्राणियों को देखते हो और सभी प्राणी द्यौ में प्रतिष्ठित सूर्य को यहाँ से देखते हैं॥ ३९॥ देवता होकर भी तुम देवताओं को कर्म में प्रेरित करते और अन्तरिक्ष में घूमते हो। समान अग्नि को प्रदीप्त करने वाले उत्कृष्ट विद्वान् उनको जानते हैं॥ ४०॥

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥४१॥
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति॥ ४२॥

आरोहन् द्यामसृतः प्राव मे वचः ।
उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥४३॥
वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमणं दिवि ।
यत् ते सधस्थं परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥
सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति ।
सूर्यो भूतस्यैक चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥ ४५ ॥
उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतावग्नी आधत्त हिम घ्रंसं च रोहितः ॥ ४६ ॥
हिमं घ्रंस चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् ।
वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४७ ॥
स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।
तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥ ४८ ॥
ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४९ ॥
सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्वन्यः समिध्यते ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५० ॥

एक पाँव से अन्न और दूसरे से बछड़े को धारण करती हुई शुभ्र वर्णा गौ उठती है। वह किसी अर्द्ध भाग में जाती है और पृथक् रहती है, यूथ में आकर नहीं रहती ॥ ४१ ॥ वह मध्यम से एकाकार हुई एकपदी होती है, मध्यम आदित्य के साथ दो पदी, चारों दिशाओं से मिलकर चतुष्पदी, अवान्तर दिशाओं से मिलकर अष्टपदी और दिशा-विदिशा और सूर्य से मिल कर नौपदी हो जाती है। वह मेघ का धारण करने वाली, अत्यन्त जल वाली, लोक की पंक्ति रूप है। ४२ ॥ हे सूर्य ! तुम अमृत हो, सूर्य लोक में चढ़ते हुए मेरे वचन की रक्षा करो । मंत्रमय यज्ञ और मार्गगामी अश्व तुम्हारा वहन करते हैं ॥ ४३ ॥ हे अविनाशी सूर्य ! तुम मण्डल में विचरण करने का

और आकाश में उपासकों सहित जो तुम्हारा निवास स्थान है उसे मैं भले प्रकार जानता हूँ ॥ ४४ ॥ सूर्य, आकाश, पृथिवी और जल के साक्षी रूप हैं, वे सब प्राणियों के दर्शनात्मक शक्ति हैं। वही आकाश और पृथिवी पर चढ़ते हैं ॥ ४५ ॥ उर्वियाँ परिधि बन गईं, वेदों के रूप में पृथिवी की कल्पना हुई। वहाँ इन अग्नियों, हिमों और दिनों को सूर्य प्रतिष्ठित किया ॥ ४६ ॥ सूर्यात्मक स्वर्ग की प्राप्ति-कामना वाले पुरुष हिम और दिन का आधान कर, पर्वतों को यूप बनाते हुए वर्षाज्य अग्नि का पूजन किया करते थे ॥ ४७ ॥ रोहित के स्वर्ग प्राप्त कराने वाले मंत्र से अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। उसी के द्वारा हिम, दिवस और यज्ञ का प्रादुर्भाव हुआ ॥ ४८ ॥ सूर्यात्मक स्वर्ग की कामना वाले पुरुष मंत्राहुत और मन्त्र-प्रवृद्ध अग्नियों को मंत्र से बढ़ाते हुए उन प्रदीप्त अग्नियों का पूजन करते हैं ॥ ४९ ॥ सत्य में अन्य अग्नि है, जल में भिन्न अग्नि प्रदीप्त होती है। सूर्यात्मक स्वर्ग की प्राप्ति चाहने वाले पुरुषों ने मन्त्रों द्वारा प्रवृद्ध उन अग्नियों का पूजन किया था ॥ ५० ॥

य वातः परि शुम्भति य वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः । ५१ ॥
वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।
घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ।५२॥
वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत् ॥ ५३ ॥
गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।
त्वयीदं सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च भाव्यम् ॥ ५४ ॥
स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत ।
तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यद् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणा-
भृतम् ॥ ५५ ॥

यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् । ५६ ॥

यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५७ ॥
यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति।
दुःष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥ ५८ ॥
मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥ ५९ ॥
यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः। तमाहुतमशीमहि ॥ ६० ॥

जिसे वायु, इन्द्र और ब्रह्मणस्पति सुशोभित करना चाहते हैं; ऐसे पुरुष ही सूर्यात्मक सूर्य की प्राप्ति-कामना करते हुए मन्त्र प्रवृद्ध अग्नियों को पूजते हैं ॥ ५१ ॥ पृथिवी को वेदी बनाकर, आकाश को दक्षिणा रूप देकर और दिन को ही अग्नि मानकर रोहित ने वर्षा रूपी घृत से जगत को आत्मा के समान बना लिया है ॥ ५२ ॥ पृथिवी को वेदी, दिन को अग्नि और वर्षा को घृत बनाया गया। स्तुतियों से समृद्ध हुए अग्नि ने ही इन पर्वतों को उन्नत किया ॥ ५३ ॥ स्तुतियों से उन्नत करते हुये रोहित ने पृथिवी से कहा कि भूत और भवितव्य जो कुछ हो तुझमें ही प्रादुर्भूत हो ॥५४॥ यज्ञ पहिले भूत और भवितव्य के रूप में ही हुआ जो कुछ रोचमान है, वह सब उसी से प्रकट हुआ और रोहित ने ही उसे पुष्ट किया ॥ ५५ ॥ जो सूर्य की ओर मूत्र त्याग करता है और जो गौ को अपने पाँव से छूता है, मैं उसके मूल को छिन्न करता हूँ, उसके ऊपर कभी छाया नहीं कर सकता ॥ ५६ ॥ जो मेरे और अग्नि के मध्य में होकर निकलता है या जो मेरी छाया को लाँघता है, मैं उसकी जड़ काट दूंगा उसके ऊपर कभी छाया नहीं कर सकता ॥५७॥ हे सूर्य ! हमारे तुम्हारे मध्य में जो बाधक होना चाहता है, उसे मैं पाप, दुःस्वप्न और दुष्कर्मों में स्थापित करता हूँ ॥५८॥ हे इन्द्र ! जिस यज्ञ विधि में सोम प्रयुक्त होता है, हम उस पद्धति से पृथक् न जाँय और हमारे देश में शत्रु न रहें ॥ ५९ ॥ जो यज्ञ देवताओं में सुविस्तीर्ण है, हम उस यज्ञ की वृद्धि करने वाले हों ॥ ६० ॥

२ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि— ब्रह्मा । देवता—अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः । छन्द— त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्, जगती; पंक्तिः; गायत्री)

उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः ॥ १ ॥

दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिसा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे ।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः ॥ २ ॥

यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मायया ।
तदादित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥ ३ ॥

विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ।
स्रुताद यमत्त्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥ ४ ॥

मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गां अति याहि शीभम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥ ५ ॥

स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ६ ॥

सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ७ ॥

सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ॥ ८ ॥

उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत् ।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥

उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वांल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः ॥ १० ॥

महान् कर्म वाले, सेंचन समर्थ, साक्षि रूप सूर्य की निर्मल रश्मियाँ आकाश में चमकती हुई सूर्य को ऊँचा करती है ॥ १ ॥ ज्ञानमयी दिशाओं में अपने तेज से शब्द कराने वाले, सुन्दर पक्ष वाले, रश्मियों से प्रकाश देने वाले, लोकों के रक्षक सूर्य का हम स्तवन करते हैं ॥ २ ॥ हे सूर्य ! तुम अन्नमय हवियों से पूर्व पश्चिम दिशाओं में गमन करते हो। अपने तेज से दिन और रात्रि को विभिन्न रूपों वाले बनाते हो। तुम संसार भर में अकेले ही सबसे महान् हो यह तुम्हारा अत्यन्त प्रशंसनीय यश है। ३ ॥ जिस तेजस्वी और भवसिंधु के तरणि रूप सूर्य को सप्त रश्मियाँ वहन करती हैं जिन्हें ब्रह्म समुद्र से ऊपर को सूर्य लोक में लाता है। हे सूर्य ! ऐसे तुम्हें हम 'आजि' मे प्रविष्ट होता हुआ देखते हैं ॥ ४ ॥ हे सूर्य ! तुम आकाश और पृथिवी में दिन रात्रि का मान करते हुये विचरते हो, तुम शीघ्रता से सुख पूर्वक दुर्गम स्थलों का उल्लङ्घन करो। तुम्हारे 'आजि' में प्रविष्ट होने पर कोई तुम्हें वश न कर सके ॥ ५ ॥ हे सूर्य ! तुम जिस रथ से दोनों छोरों को शीघ्र पाते हो, उस रथ का मङ्गल हो। तुम्हारे सौ, सात या अनेक हर्यश्व तुम्हें वहन करते हैं उनका भी कल्याण हो ॥ ६ ॥ हे सूर्य ! तुम अग्नि के समान ज्योति वाले वेगवान रथ पर चढ़ो तुम्हारे उस रथ को सौ, सात या अनेक हर्यश्व वहन करते हैं ॥ ७ ॥ सूर्य अपने गमन के लिए स्वर्णिम त्वचा वाले सात विशाल हरे घोड़ों को जोड़ते और अन्धकार को मिटाते हुए लोक से दूर उन्हें छोड़कर सूर्यलोक में चले जाते हैं ॥ ८ ॥ वे सूर्य महान् केतु के द्वारा आते हैं, वे ज्योति के आश्रय से अन्धकार को दूर करते हैं। वे सुन्दर वर्ण वाले अदिति के पुत्र सब भुवनों में विख्यात है ॥ ९ ॥ हे सूर्य ! प्रकट होते ही रश्मियों को विस्तृत करके सभी रूपवान पदार्थों का तुम पोषण करते हो। तुम गमन करते हुए दोनों समुद्रों और सभी लोकों को प्रकाशित करते हो ॥ १० ॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातो अर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्य हरितो वहन्ति ॥ ११ ॥
दिवि त्वात्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे।
स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥ १२ ॥

उभावन्तौ समर्पसि वत्सः संमातराविव ।
नन्वेतदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥ १३ ॥
यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः ।
अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः ॥ १४ ॥
तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नाप चिकित्सति ।
तेनामृतस्य भक्षं देवानां नव रुन्धते ॥ १५ ॥
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१६॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥१७॥
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनां अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥१८॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन ॥ १९ ॥
प्रत्यङ् देवानां विशःप्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे॥२०॥

अपनी माया के द्वारा बालकों के समान क्रीड़ा करते हुए यह दोनों समुद्र की ओर गमन करते हैं । इनमें से एक सब लोकों में प्रकाश भरता है और दूसरे को स्वर्णिम अश्व वहन करते हैं ॥ ११ ॥ हे सूर्य ! तीन तापों से मुक्त अग्नि ने तुम्हें मास समूह के निमित्त दिव्यलोक में प्रतिष्ठित किया, तुम वही हो । तुम तपते हुए आते और सब भूतों को प्रकाशित करते हो ॥ १२ ॥ बालक जैसे माता-पिता के पास सरलता से पहुँचता है, वैसे ही तुम दोनों समुद्रों के पास पहुँचे हो । तभी देवता पुरातन ब्रह्म को समझते हैं ॥ १३ ॥ जो मार्ग समुद्र तक गया है उसका सूर्य दान करते हैं । इनका पूर्व अन्य मार्ग है, वह अत्यन्त विस्तारमय और महान है । हे सूर्य ! तुम उस मार्ग को द्रुतवेग वाले अश्वों से प्राप्त करते हो तुम उससे सावधान रहते हुए देवताओं के अमृत-सेवन को नहीं रोकते ॥ १५ ॥ सभी उत्पन्न जीवों के जानने वाले सूर्य को सभी के दर्शन के निमित्त रश्मियाँ ऊपर उठाती हैं ॥१६॥ रात्रि की समाप्ति पर जैसे चोर भाग जाते है वैसे ही नक्षत्र भी सबको देखने वाले सूर्य के कारण रात्रि के साथ ही चले जाते हैं ॥ १७ ॥ सूर्य को ज्ञान देने वाली रश्मियाँ अग्नि के समान दमकती हुई हरेक व्यक्ति के पीछे दिखाई

देती हैं ॥ १८ ॥ हे सूर्य ! तुम नौका के समान हो । तुम सबको देखते, ज्योति प्रदान करते और विश्व को प्रकाशमय करते हो ॥ १९ ॥ हे सूर्य ! तुम प्रत्येक मानवी और दिव्य प्रजाओं के समक्ष प्रकट होते हो । सभी को देखने के लिए प्रत्यक्ष उदय होते हो ॥ २० ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ २१॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥ २२ ॥
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २३॥
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभि ॥२४॥
रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी ।
स योनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव ॥ २५ ॥
यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः ।
सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥ २६ ।
एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं समासते ॥ २७ ॥
अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि ॥ २८ ॥
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥ २९ ॥
रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्वन्तः ।
उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥ ३० ॥

हे पाप नाशक सूर्य ! तुम पूर्वोत्पन्न पुण्य कर्म वाले पुरुषों के मार्ग में जाने वाले पुण्य कर्म वालों को अपनी कृपा पूर्ण दृष्टि से देखते हो ॥ २१ ॥ हे सूर्य ! सब जीवों पर कृपा करने के लिए तुम उन्हें देखते हुए और रात्रि-दिन को बनाते हुए आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष में अनेक प्रकार घूमते हो ॥ २२ ॥ हे सूर्य ! तेजस्वी रश्मियों वाले रथ में सात हर्यश्व तुम्हें वहन

करते हैं। २३॥ सूर्य ने पवित्रताप्रद सात अश्वों को अपने रथ में युक्त किया है वह उनके द्वारा अपनी युक्तियों से गमन करते हैं। २४॥ सूर्य अपने तेज से स्वर्ग में चढ़ते हैं, वे योनि को प्राप्त होते और प्रकट होते हैं। वही देवताओं के स्वामी हुए हैं॥ २५॥ अनेक मुख वाले, सबके देखने वाले, सब ओर भुजा वाले, असाधारण देवता सूर्य अपनी गिरती हुई किरणों के द्वारा आकाश पृथिवी को प्रकट करते हुये अपनी भुजाओं से सबका भरण-पोषण करते है॥ २६॥ एकपाद् द्विपादों में, त्रिपदों में प्राप्त होता है फिर द्विपाद् षट्पादों में विक्रमण करता है। वह एकपद् ब्रह्म को इष्ट मानते हैं॥ २७॥ अज्ञान-रहित सूर्य चलते हुए जब विश्राम लेते हैं, तब अपने दो रूप बनाते हैं। हे सूर्य! तुम उदय होकर सब लोकों को वश करते हुये प्रकाशित होते हो॥ २८। हे सूर्य! तुम महान् हो, तुम्हारी महिमा भी महान् है, यह सब सत्य है॥ २९॥ हे सूर्य! तुम स्वर्ग में, अन्तरिक्ष में, पृथिवी में और जल में भी दमकते हो। तुम अपने तेज से दोनों समुद्रों को व्याप्त करते हो। तुम स्वर्ग पर विजय प्राप्त करने वाले पूज्य देवता हो।३०॥

अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत्॥ ३१॥
चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम्।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि॥ ३२॥
तिग्मो विभ्राजन् तन्वं शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः॥३३॥
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन्।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः॥ ३४॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ ३५॥
उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम्।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः॥ ३६॥

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः ।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥ ३७ ॥
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य सम्पश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ ३८ ॥
रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः ।
रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वराभरत् ॥ ३९ ॥
रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम् ।
रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥ ४० ॥

सूर्य दक्षिण की ओर जाते हुए शीघ्र ही मार्ग को पार करते हैं। यह व्यापक देव अत्यन्त ज्ञानी हैं। यह अपनी शक्ति से अधिष्ठित होते हुए अपने ज्ञान के बल से ही सचेष्ट विश्व को वश में करते हैं॥ ३१ ॥ महिमामय सूर्य ज्ञानवान् और पूज्य हैं, वे शोभनमार्ग से गमन करते हैं। आकाश पृथिवी अन्तरिक्ष को दमकाते हुए दिन और रात्रि को आश्रय देते हैं। इन्हीं के बल से सब पार होते हैं॥ ३२ ॥ यह सूर्य तिरछे दमकते हैं, यह शरीर को तपाते हैं, यह सुन्दर गमन वाले, ज्योतिर्मान, महिमावान और अन्न को पुष्ट करने वाले हैं। यह दिशाओं को प्रकट करते हैं॥ ३३ ॥ यह देवताओं के ध्वजारूप सूर्य दर्शनीय हैं। यह उदय होकर दिशाओं को प्रकाशित करते हैं। यह सब अन्धकारों को मिटाते हुए अपने प्रकाश से ही दिन प्रकट करते हैं। यह पापों को हटाने वाले हैं॥ ३४ ॥ रश्मियों का प्रशंसनीय समूह मित्रावरुण का चक्षु रूप है। सूर्य सब प्राणियों की आत्मा रूप हैं। यह सभी भूतों में प्रविष्ट सूर्य आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी को व्याप्त किये हुये हैं॥ ३५ ॥ ऊर्ध्वगामी, अरुण वर्ण वाले, शोभनगमन वाले सूर्य के हम आकाश के मध्य गमन करते हुये सदा दर्शन करें। हे सूर्य ! तुम ज्योतिर्मान को दुःखों से रहित अग्नि प्राप्त करते हैं॥ ३६ ॥ मैं भयभीत होकर आकाश में द्रुत गमन वाले सूर्य की स्तुति करता हुआ उनके आश्रय को प्राप्त होता हूँ। हे सूर्य ! हम तुम्हारी सुन्दर कृपा बुद्धि में रहें, हम हिंसा को प्राप्त न हों।

हमें दीर्घजीवन प्रदान करें ॥ ३७ ॥ इन पापों के नाशक, सुन्दर गमन वाले, स्वर्गगामी सूर्य के दोनों अयन सहस्रों दिनों तक भी नियम में रहते हैं। यह सूर्य सब देवताओं को अपने में लीन कर, भूतमात्र को देखते हुए चलते हैं ॥३८। रोहित काल थे, वही प्रजापति थे, वही यज्ञों के मुख रूप हैं और वही रोहित अब स्वर्ग का पोषण करते हैं ॥ ३९ ॥ वे स्वर्ग में तपने वाले रोहित अपनी रश्मियों के द्वारा समुद्र में और पृथिवी में विचरते हैं, वे दर्शन के योग्य हैं ॥ ४० ॥

सर्वा दिशः समचरद् रोहितोऽधिपतिर्दिवः ।
दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूत वि रक्षति ॥ ४१ ॥
आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
चित्रश्चिकित्वान् महिषो वात माया यावतो लोकानभि यद् विभाति।.४२
अभ्यन्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमान ।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥ ४३ ॥
पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव ।
विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४४ ॥
पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्यामन्तरिक्षम् ।
सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४५ ॥
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ ४६ ॥

वे स्वर्ग के अधिपति हैं, वे सब दिशाओं में घूमते और स्वर्ग से समुद्र में जाते हैं। यह सब जीवों की और पृथिवी की रक्षा करते हैं ॥४१॥ यह सूर्य और अभ्रों पर अपने दो रूप बनाते हैं। यह पूज्य, महत्त्ववान् और रोचमान हैं। यह सुन्दर गमन वाले, सभी लोकों को प्रकाशित करने वाले हैं॥४२॥ दिन रात्रियों के द्वारा सूर्य का एक रूप सामने आता और दूसरा गमनशील है। स्वर्ग मार्ग में चलने वाले, अन्तरिक्षवासी सूर्य का हम आह्वान करते हैं ॥ ४३ ॥ जिनकी दृष्टि कभी हीन नहीं होती, पृथिवी के पालनकर्त्ता

और महिमावान् सूर्य संसार के सब ओर व्याप्त हैं। वे जगत को देखते हैं, अत्यन्त ज्ञानी और पूज्य हैं। वे मेरे वचन को सुनें ॥ ४४ ॥ पृथिवी, समुद्र और अन्तरिक्ष में अपनी ज्योति द्वारा व्याप्त सूर्य सब के कर्मों को देखने वाले हैं। उनकी महिमा सब ओर फैली हुई है। वे सुन्दर विद्या वाले और पूज्य हैं। वे मेरे वचनों को सुनें ।।४५।। गो के समान आने वाली उषा के समय यह अग्नि मनुष्य की समिधाओं द्वारा जाने जाते हैं । इनकी ऊर्ध्वगामी रश्मियां स्वर्ग की ओर शीघ्रता से जाती हैं । मैं उन्हीं सूर्य का आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥ ४६ ॥

३ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि-ब्रह्मा। देवता-अध्यात्मम्, रोहित, आदित्यः। छन्द-कृतिः, अष्टिस्त्रिष्टुप्)

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १ ॥
यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २ ॥
यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ३ ॥
यः प्राणेन द्यावा पृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ४ ॥
यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः।
यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे।

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥५॥
यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः ।
यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥६॥
यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः ।
भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥७॥
अहोरात्रै विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥८॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहत प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥९॥
यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु ।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१०॥

इस आकाश पृथिवी को जिन्होंने प्रकट किया, जो सब लोकों को आच्छादित करते हैं, जिनमें छः ऊर्वियाँ और दिशायें रहती हैं, जिन दिशाओं को वे ही प्रकाशित करते हैं, उन क्रोधमय सूर्य का जो अपमान करता है या

विद्वान् ब्राह्मण की हिंसा करता है, उस ब्राह्मण को हे रोहितदेव ! तुम कम्पायमान करो, उसे क्षीण करते हुये बंधन में बाँध लो ।।१।। जिस देवता के प्रभाव से ऋतु अनुसार वायु चलती और समुद्र प्रभावित होते हैं, ऐसे क्रोध में भरे सूर्य का जो अपमान करता या विद्वान ब्राह्मण को हिंसित करता है, उस ब्रह्मज्य को ही रोहितदेव ! कम्पायमान करते हुये क्षीण करो और बंधन में बाँध लो ।। २ ।। जो मनुष्य में प्राण भरते हैं, जो मनुष्यों की हिंसा करते हैं, जिनके द्वारा सब प्राणी श्वास-प्रश्वास लेते हैं, उन क्रोध में भरे देवता का जो अपराध करता है, जो विद्वान ब्राह्मण को हिंसित करता है, उस ब्रह्मज्य को रोहितदेव ! कम्पायमान करो और क्षीण करते हुये बन्धन में डालो ।। ३ ।। जो देवता प्राण आकाश पृथिवी को तृप्त करता और अपमान से समुद्र के पेट को पालता है, उन क्रोध में भरे देवता के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! कम्पायमान करो और क्षीण करते हुये बन्धन में बाँध लो ।।४।। जिसमें विराट् परमेष्ठी वैश्वानर-पंक्ति, प्रजा और अग्नि सहित निवास करते हैं, जिसने उत्कृष्ट प्राण और महान् तेज को धारण किया है, उन क्रोधवन्त रोहितदेव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! कम्पित करते हुये क्षीण करो और अपने पाश में बाँध लो ।। ५ ।। पाँच दिशायें, छः उर्वियाँ चार जल और यज्ञ के तीन अक्षर जिसमें आश्रित हैं, जो आकाश पृथिवी के मध्य में अपने क्रोधित नेत्र से देखता है, उन क्रोधवन्त देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को ही रोहितदेव ! कम्पित करते हुये क्षीण करो और अपने पाश में बाँध लो ।।६।। जो ब्रह्मणस्पति हैं, जो अन्न के पालक और भक्षक भी हैं, जो भूत भविष्यत और लोक के स्वामी हैं, उन क्रोधयुक्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! कम्पायमान करते हुये क्षीण करो और पाशों में बाँध लो ।। ७ ।। जिन्होंने तीस दिन-रात्रि का समूह बनाकर तेरहवें अधिक मास को बनाया, ऐसे क्रोधयुक्त देव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! कम्पित करो और उसे क्षीण करते हुये अपने पाशों में बाँध लो ।। ८ ।। सूर्य की सुन्दर रश्मियाँ जल को सोखकर स्वर्ग में जातीं और दक्षिणायन में जल-स्थान से लौटती हैं ।

उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण में हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! कम्पित करो और क्षीण करते हुये अपने पाशों में बांध लो ॥९॥ हे कश्यप ! तुम्हारे रोचमान चित्रभानु में सात सूर्य साथ रहते हैं । ऐसे क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करो और उसे क्षीण करते हुये अपने पाशों में बांध लो ॥ १० ॥

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात्
ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥११॥
बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथन्तरमन्यतः सबले सध्रीची ।
यद् रोहितमजनयन्त देवाः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१२॥
स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१३॥
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य सम्पश्यन् याति भुवनानि विश्वा ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१४॥
अयं स देवो अप्स्वन्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्त्रिः ।
य इदं विश्वं भुवनं जजान ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।

उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १५ ॥
शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम् ।
यस्योर्ध्वा दिवं तन्वस्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १६ ॥
येनादित्यान् हरितः सम्वहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः ।
यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो व एवं विद्वासं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१७॥
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वासं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१८॥
अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांस ब्राह्मण जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १९ ॥
सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२०॥

जिसके अनुकूल रहकर बृहत आच्छादन करता और रथन्तर उसे धारण करता है, यह दोनों ही ज्योतियों से सदैव ढके रहते हैं। ऐसे क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पायमान करो और उसे क्षीण करते हुये अपने पाशों में बांध लो ॥११॥

देवताओं द्वारा रोहित को उत्पन्न करने के समय बृहत एक ओर रथन्तर और दूसरी ओर से पक्ष हुआ। यह दोनों ही बलवान और सध्रीची हैं। इन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! कम्पित करो और क्षीण करते हुए अपने बन्धन में बांध लो ॥१२॥ वह वरुण सायं समय अग्नि होता और प्रातः समय उदित होता हुआ मित्र हो जाता है। वह सविता रूप से अन्तरिक्ष में और इन्द्र रूप से स्वर्ग में स्थित रहता है। ऐसे क्रोधमय देव का जो अपराध करता है और विज्ञ ब्राह्मण की हिंसा करता है उसे हे रोहित ! तुम कँपाते हुए क्षीण करके पाशों में बांध लो ॥ १३ ॥ इस पापनाशक, स्वर्गगामी सूर्य के दोनों अयन सहस्रों दिन तक नियम में रहते हैं। यह सब देवताओं को स्वयं में लीन करके सब जीवों को देखते हुए चलते हैं। ऐसे क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक को हे रोहित ! तुम कँपाते हुए क्षीण करके अपने पाशों में बांध लो ॥ १४ ॥ सब लोकों को जिन्होंने प्रकाशित किया, वे देव जल में वास करते हैं। वही सहस्रों के मूल रूप और त्रित न-रहित अत्रि हैं। इन क्रोधित देव के अपराधी और विज्ञ ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पित करो और क्षीण करके पाशों में बांध लो ॥ १५ ॥ स्वर्ग में अपने तेज से दमकते हुए सूर्य को उनकी द्रुतगामिनी रश्मियां निर्मल रस प्राप्त कराती हैं, उनके ऊर्ध्व देह-भाग रूप रश्मियां स्वर्ग को तपाती हैं और जो स्वर्णिम रश्मियों द्वारा प्रकाश फैलाते हैं। उन क्रोधमय देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पित करो और क्षीण करते हुए पाशों में बांध लो ॥ १६ ॥ जिनके प्रभाव से सूर्य के अश्व सूर्य का वहन करते हैं और जिनके प्रभाव से विज्ञ पुरुष यज्ञादि कर्मों को प्राप्त होते हैं, जो एक ज्योति होते हुए भी अनेक रूप से प्रकाशमान हैं। ऐसे क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को रोहितदेव ! कँपाते हुए क्षीण करो और पाशों में बांध लो ॥ १७ ॥ सरकने वाली रश्मियां अन्य ज्योतियों को निस्तेज करके रथ चक्र वाले सूर्य के रथ में युक्त होती हैं। यह सूर्य सप्तर्षियों द्वारा नमस्कार प्राप्त करते हुए घूमते हैं। यह ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त इन तीन ऋतु वाले वर्ष को करते हैं। सब लोक इसी काल के

आश्रित हैं। ऐसे इन क्रोधित देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! कम्पित करते हुए क्षीण करो और उसे पाशों में बांध लो ॥१८॥ आठ प्रकार से बहने वाले वह्नि उग्र हैं, वे देवताओं के पालनकर्ता और बुद्धियों को उत्पन्न करते हैं और जल का परिमाण करते हुए वायु सब दिशाओं को शुद्ध करते हैं। ऐसे क्रोधित उन देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! कम्पित करते हुए क्षीण करो और पाशों से बांधो ॥ १९ ॥ गायत्री में, अमृत के गर्भ में और सब दिशाओं में पूजनीय जलतन्तु को वायु पवित्र करते हैं। उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पित करते हुए क्षीण करो और पाशों में बांध लो ॥ २० ॥

निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रंत्रेधा देवानां जनिमानि विद्म।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२१॥
वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२२॥
त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितोर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि।
किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवाः।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२३॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
योस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २४ ॥
एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात्।

चतुष्पाच्चक्रं द्विपदामभिस्वरे सम्पश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२५॥
कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः॥ २६॥

हे अग्ने! तुम्हारी तीनों उत्पत्तियों को हम जानते हैं। तुम्हारी तीन गतियाँ भस्म करने वाली हैं। हम तीनों लोक और स्वर्ग के तीन भेदों के भी ज्ञाता हैं। ऐसे उन क्रोधवन्त देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! तुम कम्पित करते हुए क्षीण करो और उसे पाशों में बांध लो ॥ २१॥ जो उत्पन्न होकर भूमि को आच्छादित करता और जल को अन्तरिक्ष में स्थित करता है, ऐसे उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! तुम कंपित करो और क्षीण करते हुए पाशों में बांध लो। २२॥ हे अग्ने! तुम ज्ञान यज्ञों में प्रदीप्त किये जाते हो और स्वर्ग में अर्चन-साधन रूप होते हो। क्या प्रतिनमनक मरुद्गण ने तुम्हारी पूजा की थी जो देवता रोहित से मिले थे? उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! तुम कम्पायमान करते क्षीण करो और पाशों में बांध लो। २३॥ बलप्रदाता, आत्मवत प्रेरक, जिनके बल की देवता आराधना करते हैं और जो प्राणिमात्र के ईश्वर हैं, ऐसे क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! तुम कंपित करो और क्षीण करते हुये अपने पाशों में बांधो ॥ २४॥ एक पाद द्विपादों में, द्विपाद त्रिपादों में और फिर द्विपाद् षट्पादों में विक्रमण करता है. वे एक पादात्मक ब्रह्म को पूजते हैं। ऐसे उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! तुम कम्पित करो और उसे क्षीण करते हुए अपने दृढ़ पाशों में बांध लो ॥ २५॥ काली रात्रि का पुत्र अर्जुन सूर्य हुआ, वह आकाश में चढ़ता है और वही रोहित रोहणशील पदार्थों पर चढ़ता है॥ २६॥

४ (१) सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अध्यात्मम् । छन्द—अनुष्टुप् गायत्री; उष्णिक्)

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ॥ १ ॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ३ ॥

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः महादेवः ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ४ ॥

सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ५ ॥

तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ६ ॥

पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः । ७ ॥

तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥ ८ ॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ९ ॥

तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ॥ १० ॥

स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ११ ॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥ १२ ॥

एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥

यही सूर्य आकाश की पीठ पर दमकते हुए आगमन करते हैं ॥ १ ॥ इन्होंने अपनी रश्मियों से आकाश को ढक लिया और वे रश्मियों से युक्त हुए आ रहे हैं ॥२॥ वही धाता, विधर्ता, वायु और उच्छ्रित आकाश हैं ॥३॥

वही ग्रर्यमा, वही वरुण, वही रुद्र, ग्रौर वही महादेव हैं ॥ ४ ॥ वही ग्रग्नि, वही सूर्य, ग्रौर वही महान् यम हैं ॥ ५ ॥ एक शिर वाले दश वत्स उन्हीं की ग्राराधना करते हैं ॥ ६ ॥ वह उदय होते ही दमकने लगते हैं ग्रौर पीछे से उनकी पूजनीय रश्मियाँ उनके चारों ग्रोर छा जाती हैं । ७॥ छीके के ग्राकार वाला उनका ही एक गण मारुत ग्रा रहा है ॥ ८ ॥ इन्होंने ग्रपनी रश्मियों से ग्राकाश को ढक लिया है, यह महान् इन्द्र के द्वारा किरणों से ग्रावृत्त हुए चले ग्रा रहे हैं ॥ ९ ॥ उनके विष्टभ नौ, कोश नौ प्रकार से ही ग्रवस्थित है ॥१०॥ वह स्थावर जङ्गम सब प्रजाग्रों के द्रष्टा ग्रौर सभी के साक्षी हैं ॥११॥ यह सब उसे ही प्राप्त होता है, वह एकवृत् केवल एक है । १२ ॥ सब देवता इन एक को ही वरण करते हैं ॥ १३ ॥

४ (२) सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ग्रध्यात्मम् । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्ति, ग्रनुष्टुप्; गायत्री, उष्णिक्)

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥१४॥
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १५ ॥
न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ।१६।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ।१७।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद । १८॥
स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १९ ॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २० ॥
सर्वे ग्रस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २१ ॥

कीर्ति, यश, ग्राकाश, जल, ब्रह्मवर्च, ग्रन्न ग्रौर ग्रन्न को पचाने की क्रिया उसे प्राप्त होती है जो इन एकवृत का ज्ञाता है ॥ १४-१५ ॥ इन एक-

वृत का ज्ञाता द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ नहीं कहाता । १६ । इन एक वृत का ज्ञाता पञ्चम, षष्ठ या सप्तम नहीं कहाता ॥१७॥ जो इन एक वृत का ज्ञाता है वह अष्टम नवम, नहीं कहलाता ॥ १८ । इन एक वृत का ज्ञाता स्थावर जङ्गम सभी को देखने वाला होता है ॥ १९ ॥ वह असाधारण एकवृत ही है, यह सब उसे ही प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ इनमें सभी देवता एकवृत कहाते हैं ॥ २१ ॥

४ (३) सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–अध्यात्मम् । छन्द–त्रिष्टुप्, गायत्री; पंक्तिः; अनुष्टुप्)

ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं-
चान्नाद्यं च य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २२ ॥
भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च । २३॥
य एतं देवमेकवृतं वेद । २४ ॥
स एव मृत्युः सोमृतं सोम्भ्वं स रक्षः ॥ २५ ॥
स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः ॥२६॥
तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते ॥ २७ ॥
तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ॥ २८ ॥

ब्रह्म, तप, कीर्ति, यश, जल, आकाश, ब्रह्मवर्च, अन्न और अन्न-पाचन की शक्ति ॥ २२ ॥ भूत, भविष्य, श्रद्धा, रुचि, स्वर्ग और स्वधा ॥ २३ ॥ एकवृत के ज्ञाता को उक्त सब प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ वही मृत्यु, अमृत, अभ्व और वही राक्षस हैं ॥ २५ । वही रुद्र, वसुओं में वसुवनि और नमस्कार युक्त वाणी में वही वषट्कार हैं । २६ ॥ सभी यातनाओं को देने वाले भी उन्हीं की अनुज्ञा में चलते हैं ॥ २७ ॥ चन्द्रमा सहित यह सब नक्षत्र भी उसी के वशीभूत रहते हैं । २८ ।

४ (४) सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–अध्यात्मम् । छन्द–गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक्; बृहती)

स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत ॥ २९ ॥

स वै राज्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ॥ ३० ॥
स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ॥ ३१ ॥
स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ॥ ३२ ॥
स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥ ३३ ॥
स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद् दिशोऽजायन्त ॥ ३४ ॥
स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ॥ ३५ ॥
स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ॥ ३६ ॥
स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥ ३७ ॥
स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ॥ ३८ ॥
स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥ ३९ ॥
स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥ ४० ॥
स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ॥ ४१ ॥
पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥ ४२ ॥
यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ॥ ४३ ॥
तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥ ४४ ॥
उपो ते बद्धे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥ ४५ ॥

उनसे दिन प्रकट हुआ और वह दिन से प्रकट हुए ॥ २९ ॥ रात्रि भी उन्हीं से प्रकट हुई और वह रात्रि से उत्पन्न हुए । ३० ॥ अन्तरिक्ष उनसे प्रकट हुआ और वह अन्तरिक्ष से प्रकट हुए ॥ ३१ ॥ वायु उनसे प्रकट हुआ और वे वायु से प्रकट हुए ॥ ३२ ॥ आकाश उनसे प्रकट हुआ और वे आकाश से प्रकट हुए ॥ ३३ ॥ दिशाऐं उनसे उत्पन्न हुई, वे दिशाओं से उत्पन्न हुए ॥ ३४ ॥ पृथिवी उनसे प्रकट हुई और वे पृथिवी से प्रकट हुए ॥ ३५ ॥ अग्नि उनसे प्रकट हुए और वे अग्नि से प्रकट हुए ॥ ३६ ॥ जल उनसे प्रकट हुए, वे जल से प्रकट हुए ॥ ३७ ॥ ऋचाऐं उनसे उत्पन्न हुई वे ऋचाओं से उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ यज्ञ उनसे प्रकट हुआ, वे यज्ञ से प्रकट हुए ॥ ३९ ॥

यज्ञ उनका है, वे यज्ञ एवं यज्ञ के शीर्ष रूप हैं ॥ ४० । वही दमकते और कड़कते हैं, वही उपल गिराते हैं ॥ ४१ ॥ तुम पापियों को, कल्याणकारी पुरुष को, असुर को और ओषधियों को उत्पन्न करते हो, कल्याणमयी वृष्टि रूप में बरसते और उत्पन्न हुओं को बढ़ाते हो ॥ ४२,४३ ॥ तुम मघवन् हो, तुम सैकड़ो देहों से युक्त हो और महिमा द्वारा महान् हो । ४४ ॥ तुम सैकड़ों बंधे हुओं के बांधने वाले तथा अन्त रहित हो ॥ ४५ ॥

४ (५) सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–अध्यात्मम् । छन्द–गायत्री, उष्णिक्, बृहती; अनुष्टुप्)

भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ॥ ४६ ॥
भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति-
त्वोपास्महे वयम् ॥ ४७ ॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ४८ ॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन । ४९ ॥
अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५० ॥
अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५१ ॥

वे इन्द्र नमुर से श्रेष्ठ हैं । हे इन्द्र ! तुम मृत्यु के कारणों से भी उत्कृष्ट हो ॥ ४६ ॥ हे इन्द्र ! तुम दान प्रतिबंधिका शक्ति से भी श्रेष्ठ हो, तुम वैभववंत और स्वामी हो । हम तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ ४७ ॥ हे इन्द्र ! मुझे यश, तेज और ब्रह्मवर्च से देखो । तुमको नमस्कार है ॥४८-४९॥ जल, पौरुष, महत्ता और सम्पन्नता के रूप में हम तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ ५० ॥ जल, अरुण, रजत, रज और सह रूप में हम तुम्हारी आराधना

करते हैं । तुम हमको प्रसन्नवान होकर देखो । हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ ५१ ॥

४ (६) सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–अध्यात्मम् । छन्द–अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्; बृहती)

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५२ ॥
प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५३ ॥
भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ ५४ ॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ५५ ॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५६ ॥

उरु, पृथु, सुभूः भुवः इस रूप में हम तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ ५२ ॥ प्रथ, वर, व्यच, लोक इस रूप में हम तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ ५३ ॥ भवद्वसु, इदद्वसु, संयद्वसु और आयद्वसु के रूप में हम तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ ५४ ॥ हे इन्द्र ! मुझे अन्न, यश, तेज और ब्रह्मवर्चस से देखो । तुम्हारे लिए मैं नमस्कार करता हूं ॥ ५५-५६ ॥

॥ त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ॥

चतुर्दश काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—सावित्री सूर्या । देवता—आत्मा; सोमः; विवाहः; वधूवासः संस्पर्शमोचनम्; विवाहमन्त्राशिषः । छन्द—अनुष्टुप्; पङ्क्तिः; त्रिष्टुप् जगती; बृहती; उष्णिक्)

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १ ॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योपधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥ ३ ॥

यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ४ ॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ५ ॥

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥ ६ ॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥ ७ ॥

स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ॥ ८ ॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादधात् ॥ ९ ॥
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् ॥ १० ॥

सत्य से ही पृथिवी, सूर्य और आकाश में चन्द्रमा स्थित हैं। सूर्य से आकाश स्थित है ॥ १ ॥ सोम से यह पृथिवी पूजित है, उन्हीं से सूर्य बल युक्त है इसीलिये यह सोम नक्षत्रों के पास रहते है ॥ २ ॥ जो सोम रूप ओषधि को पीसकर पीते हैं, वे अपने को सोम पीने वाला समझते हैं। यह सोमयाग ही सोम नहीं है। ज्ञानी जन जिस सोम को जानते हैं उसे साधारण प्राणी भक्षण नहीं कर सकते ॥ ३ ॥ हे सोम ! पुरुष तुम्हें पीते है फिर भी तुम वृद्धि को प्राप्त होते रहते हो। सम्वत्सरों से मास रूप वायु इस सोम की रक्षा करता है ॥ ४ ॥ हे सोम ! बृहतीछन्दात्मक कर्मों से और आच्छद् विधानों से तुम रक्षित हो और सोम कूटने के पाषाण के शब्द से ठहरते हो। पार्थिव जीव तुम्हारा सेवन नहीं कर सकते ॥ ५ ॥ जब सूर्या पति के पास गई, तब ज्ञान उपबर्हण, चक्षु अभ्यंजन और आकाश-पृथिवी कोश बने ॥६॥ रयोचिनी रैभ्या सूर्या के साथ गई। वह गाथाओं से सजकर सूर्या के परिधान को लेकर चलती थी ॥ ७ ॥ उस समय छन्द स्त्रीत्व के लक्षण केश जाल हुए, स्तुतियाँ प्रतिधि हुए, अग्नि पुरोगव और अश्विनीकुमार सूर्या के वर हुए ॥ ८ ॥ पति की कामना वाली सूर्या को जब सूर्य ने दिया तब सोम वधूयु हुए, अश्विनीकुमार वर हुए ॥ ९ ॥ जब सूर्या पति को मिली तब मन रथ हुआ, शुभ्रता वृषभ हुए और द्यौ गृह होगया ॥ १० ॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम्।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥ ११ ॥
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥ १२ ॥
सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्।

मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युह्यते ॥ १३ ॥
यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
क्वैकं चक्रं वामासीत क्वदेष्ट्राय तस्थथुः ॥ १४ ॥
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥ १५ ॥
द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥ १६ ॥
अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥ १७ ॥
प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयामिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥ १८ ॥
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसं भलायै ॥ १९ ॥
भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२०॥

ऋक् साम से अभिहित दो गो-साम प्राप्त हुए। आकाश के मार्ग ने उन्हें तेरे कानों के रूप में किया ॥ ११ ॥ हे सूर्य ! ज्योतिर्मान सूर्य और चन्द्रमा चक्र बने, व्यान अक्ष बना और तब मनस्मय रथ पर आरूढ़ होकर पति गृह को जाने लगी ॥ १२ ॥ सविता ने सूर्या को दहेज दिया। फाल्गुनी नक्षत्र में बैलों से रथ खिंचवाया जाता और मघा नक्षत्र में उन्हें चलाया जाता है ॥ १३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जब तुम सूर्या का वहन करने के लिए अपने तीन पहिये वाले रथ से आये थे, जब तुम से पूछा गया था कि तुम्हारा एक चक्र कहाँ गया ? तुम अपने-अपने कर्मों में लगे हुओं में से किसके पास ठहरे थे ? ॥ १४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! सूर्या को श्रेष्ठ समझ कर जब तुम उसे वरण करने को आये तब विश्वेदेवों ने तुम्हें जाना और नरक से बचाने वाले सूर्य ने पालक का वरण किया ॥ १५ ॥ हे सूर्ये ! तेरे दोनों चक्र ऋतु के

अनुसार ब्राह्मणों द्वारा जाने जाते हैं । तेरे एक गूढ़ चक्र के ज्ञाता भी विद्वान् ही हैं ॥ १६ ॥ सुन्दर बन्धुओं से युक्त रखने वाले और पति को प्राप्त कराने वाले देवता अर्यमा का हम पूजन करते हैं । ककड़ी के डंठल से पृथक् होने के समान मैं इस कन्या को यहाँ पृथक् करता हूँ, परन्तु इसे पतिकुल से पृथक् नहीं करता ॥ १७ ॥ मैं इसे पृथक् करता हूँ, पतिकुल से भले प्रकार युक्त करता हूँ । हे सिंचन शक्ति वाले इन्द्र ! यह कन्या सौभाग्यवती और सुपुत्री हो ॥ १८ ॥ सूर्य ने जिस वरुणपाश से तुझे बाँध रखा था, मैं तुझे उससे मुक्त करता हूँ । तू मधुरभाषिणी, सत्य रूप, श्रेष्ठ, कर्मोंके फल वाले लोकमें सुखी हो ॥ १६ ॥ सौभाग्य प्रदान करने वाले भग देवता तुझे हाथ पकड़ कर और अश्विनीकुमार तुझे रथ में ले जाँय । तू अपने घर को प्राप्त होती हुई पालन करने वाली तथा सब को वश करने वाली हो और सुन्दर वाणी कहती रहे ॥ २० ॥

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ २१ ॥
इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥ २२ ॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥ २३ ॥

नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥ २४ ॥

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥ २५ ॥

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥ २६ ॥
अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।

पतिर्यद् वध्वो वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥ २७ ॥
आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥ २८ ॥
तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति ॥ २९ ॥
स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् ।
प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥ ३० ॥

तू अपने घर में गार्हपत्य अग्नि के लिए सचेत रह, इस पति से अपने को स्पर्श करने वाली हो। तेरी सन्तान के लिये प्रिय वस्तुऐं बढ़ें तू आयु के पूर्ण होने तक बोलने वाली हो। २१ ॥ तुम दोनों साथ रहो पृथक् न होओ, जीवन पर्यन्त अनेक प्रकार के भोजन करो, पुत्रादि के साथ क्रीड़ा करो और मङ्गल से युक्त होते हुए सदा प्रसन्न रहो ॥ २२ ॥ यह सूर्य और चन्द्रमा शिशु के समान खेलते हुए पूर्व पश्चिम में गमन करते है। इनमें से एक, लोकों को देखता हुआ ऋतुओं को उत्पन्न करता और नये रूप में प्रकट होता है ॥ २३ ॥ हे चन्द्र ! तुम मास में स्थित हुए सदा नवीन रहते हो। अपनी कला को घटाते-बढ़ाते हुए प्रतिपदा आदि दिनों को करते हो। तुम उषाकाल में आगे आकर देवताओं को भाग देते और दीर्घजीवन प्रदान करते हो ॥ २४। यह कृत्यामी पति में प्रविष्ट होती है। हे वर ! तुम शामुल्य देते हुए ब्राह्मणों को धन दो। २५ । इस नीले लाल वस्त्र में कृत्या की आसक्ति उद्भूत होती है (इसके न देने पर) इस वधू के बांधव वृद्धि को प्राप्त होते हैं परन्तु पति अवरुद्ध हो जाता है ॥ २६ । वधू के वस्त्र से अपने अङ्गको ढकने वाले पति को पाप दोष लगता है और उसका शरीर घृणित होजाता है ॥२७॥ आशसन, विशसन और अधीविकर्त्तन सूर्या के इन रूपों को देखो, इन्हें ब्रह्मा ही सजाता है ॥ २८ ॥ यह वस्त्र प्यास लगाता है, कड़वा है, अपाष्ठवद् है और विष के समान है। सूर्या का ज्ञाता ब्रह्मा ही वधू के वस्त्र के योग्य है ॥ २९ ॥ जिस वस्त्र से प्रायश्चित् होता है, जिससे पत्नी मरण को प्राप्त नहीं होती, उस कल्याणकारी वस्त्र को ब्रह्मा धारण करता है ॥ ३० ॥

युवं भगं सं भरत समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥३१॥

इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ ।
शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाःक्रन्निह वो मनांसि ॥३२॥

इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम् ।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥३३॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु 'वर्चसा ॥३४॥

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् ।
यद् गोस्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥३५॥

येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा ।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥३६॥

यो अनिध्मो दीदयदप्स्वन्तर्यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्यावान् ॥३७॥

इदमहं रुशन्त ग्राभं तनूदूषिमपोहामि ।
यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥३८॥

आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः ।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वसुरो देवरश्च ॥३९॥

शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्घ्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं सं स्पृशस्व ॥४०॥

तुम दोनों सत्य बोलते हुए सौभाग्य को प्राप्त होओ । हे ब्रह्मणस्पते ! तुम इसके लिए पति को स्वीकार करो और वह भी स्वीकृत रूप वाणी को कहे ॥ ३१ ॥ तुम मत जाओ, यहाँ बैठो, यह कल्याणमयी धेनु हैं। तुम दोनों ही सन्तान से वृद्धि को प्राप्त होओ, विश्वे देवता तुम्हारे मनों को

उज्ज्वल बनावें ॥३२॥ यह गौऐं इसे मिलें। इस देव-भाग का विभाजन नहीं होता। तुम्हें पूषा, मरुद्गण, धाता और सविता देव भी इसकी प्रेरणा दें ॥ ३३ ॥ जिन मार्गों से हमारे मित्र गमन करते हैं, वे मार्ग कण्टक-रहित और सुगम हों। धाता तुम्हें तेजस्वी और सौभाग्यवान् बनावें ॥ ३४ ॥ जो वर्च गौओं में, पाशों में और सुरा में है, उस वर्च से हे अश्विद्वय ! तुम इसकी रक्षा करने वाले होओ ॥ ३५ ॥ हे अश्विद्वय ! जिस वर्च से सुरा और पाशों का अभिसिंचन हुआ और जिस वर्च से जघन महान् कन्याका, उस वर्च से मेरी रक्षा करो ॥३६॥ जो ज्वलित न होकर भी जलों में हिंसन कर्म से सम्पन्न है, जिसकी यज्ञों में ब्राह्मण स्तुति करते हैं और जो जलों के पोषक हैं, ऐसे तुम मधुर जलों को प्रदान करो, इसी के द्वारा इन्द्र प्रवृद्ध होते हैं ॥ ३७ ॥ शरीर के दूषित करने वाले मल को मैं पृथक् करता हूँ और कल्याण को देने वाले शोभन पदार्थों को ग्रहण करता हूँ ॥ ३८ ॥ ब्राह्मण इसके लिए स्नान करने वाले जलों को लावें, वीरों को मारने वाले जल इसे प्राप्त हों। हे पूषन् ! अर्यमा से यह अग्नि को प्राप्त करे। इसके श्वसुर और देवर इसकी प्रतीक्षा में हैं ॥ ३९ ॥ हे वधू ! तेरे लिए जल कल्याणमय हों, सुवर्ण सुख देने वाला हो, आक्रोश सुखदायी हो, तू कल्याण को प्राप्त करती हुई अपने पति-देह का स्पर्श कर ॥ ४० ॥

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥
आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥४२॥
यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥ ४३ ॥
सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ॥ ४४ ॥
या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्तॉं अभितोऽददन्त।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥ ४५ ॥

जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।
यामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥ ४६ ॥
स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मामं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुःसविता कृणोतु ॥ ४७ ॥
येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया धनेन च ॥ ४८ ॥
देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।
अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥ ४९ ॥
गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ ५० ॥

हे सैकड़ों कर्म वाले इन्द्र ! रथाकाश में तीन बार पवित्र करके मैंने अपाला को सूर्य के समान दमकती हुई त्वचा से युक्त किया है ॥ ४१ ॥ तू सन्तान, धन, सौभाग्य और प्रसन्नता की कामना वाली होकर पति के अनुकूल रह और इस अमृतमय सुख को अपने वश में कर ॥ ४२ ॥ अमृतवर्षी समुद्र नदियों के राज्य को पाता है, वैसे ही तू पतिगृह को प्राप्त होकर साम्राज्ञी के समान हो ॥ ४३ ॥ तू श्वसुर, देवर, ननद और सास सभी में साम्राज्ञी बन कर रह ॥ ४४ ॥ जिन स्त्रियों ने इस वस्त्र को कात, बुनकर विस्तृत किया है, वे देवियाँ तुझे वृद्धावस्था वाली बनावें । हे आयुष्मती ! तू इस वस्त्र को धारण कर ॥ ४५ ॥ कन्या रूप यज्ञ को जब पुरुष ले जाते हैं, सन्तानात्मक तन्तु वाला पुरुष कन्या का शोक करता है, और कन्यापक्ष के प्राणी उसके लिए रोते हैं । हे वधू ! इसे करने वाले पितरों को वाम करते हैं । इसलिए तू श्वसुर आदि वरपक्ष और उत्पादनकर्ता मातृपक्ष का आलिंगन कर ॥४६॥ मैं इस पाषाण को पृथिवी पर प्रतिष्ठित करता हूँ तू शोभन रूप वाली सबको प्रसन्न करने वाली इस पाषाण पर बैठ । सविता तेरी आयु वृद्धि करें ॥४७॥ हे जाये ! जिस लिए अग्नि ने इस भूमि के दांये हाथ को पकड़ा है, उसी प्रकार मैं तेरा हाथ ग्रहण करता हूँ । तू दुःखी न हो, मेरे साथ सन्तान और धन

सहित निवास कर ॥ ४८ ॥ सविता तेरे हाथ को ग्रहण करें, सोम तुझे सन्तानवती बनावें, अग्नि तुझे सौभाग्यवती करते हुए वृद्धावस्था तक पति के साथ रहने वाली बनावें ॥ ४९ ॥ हे वधु ! तू मेरे साथ वृद्धावस्था तक रहे, इसलिए तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ । तू सौभाग्यवती रहे । भग, अर्यमा, सविता और लक्ष्मी ने तुझे गृहस्थ धर्म के लिए मुझे प्रदान की है ॥५०॥

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥
ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥ ५२ ॥
त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥ ५३ ॥
इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥
बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥ ५५ ॥

इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥५६॥

अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥५७॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥५८॥

उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥५९॥

भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥ ६० ॥

सुकिंशुकं वहतु विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ॥ ६१ ॥
अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ॥ ६२ ॥
मा हिंसिष्टं कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि।
शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥ ६३ ॥
ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥ ६४ ॥

भग ने और सूर्य ने तेरा हाथ पकड़ा है, इसलिए तू धर्मपूर्वक मेरी भार्या है और मैं तेरा पति हूँ ॥ ५१ । बृहस्पति ने तुझे मेरे लिए दिया है। तू मुझ पति के साथ रहती हुई सन्तानवती हो और सौ वर्ष तक की आयु भोगती हुई मेरी पोष्या रह ॥ ५२ ॥ हे शुभे! त्वष्टा ने इस कल्याणकारी वस्त्र को बृहस्पति की आज्ञा से निर्मित किया है सविता और भग देवता सूर्या के समान ही इस स्त्री को इस वस्त्र द्वारा संतानादि से सम्पन्न करें ॥५३॥ अश्विद्वय, इन्द्राग्नि; मित्रावरुण, आकाश-पृथिवी, बृहस्पति, वायु, मरुद्गण, ब्रह्म और सोम देवता इस स्त्री की संतान से वृद्धि करें ॥ ५४ ॥ हे अश्विद्वय! बृहस्पति ने सूर्या के शिर का केशविन्यास किया था, उसी के अनुसार हम बृहस्पति ने सूर्या के शिर का केशविन्यास किया था, उसी के अनुसार हम वस्त्रादि द्वारा इस स्त्री को पति के निमित्त सजाते हैं ॥ ५५ । इस रूप को योषा धारण करती है। मैं योषा को जानता हूँ। मैं इसकी नवीन चाल वाली सखियों के अनुसार चलूंगा। यह केशविन्यास किस विद्वान् ने किया है ॥५६॥ मैं इसके मन रूप हृदय को जानता हुआ और इसके रूप को देखता हुआ, अपने से आबद्ध करता हूँ। मैं चौर्य कर्म नहीं करता। स्वयं मन लगा कर केशों को गूंथता हुआ वरुण-पाशों से मुक्त करता हूँ ॥ ५७ ॥ जिस सविता ने तुझे वरुण-पाश में बाँधा है, उससे मैं तुझे मुक्त करता हूँ! हे पत्नी! मैं तेरे साथ लोक के इस विस्तृत मार्ग को सरल बनाता हूँ। ५८ ॥ जल प्रदान करो, राक्षसों को मारो, इस स्त्री को पुण्य में प्रतिष्ठित करो। धाता ने इसे पति

दिया है, विद्वान् भग इसके सामने हों ॥ ५६ ॥ भग ने इसके चारों पद और चारों उप्पलों को रचा, मध्य में वध्रों को बनाया, वह हमको सुन्दर कल्याण के देने वाली हो ॥ ६० ॥ हे वधू ! तू वरणीय, दमकने वाले, सुदीप्त दहेज पर चढ़ और इसे पति और उसके पक्ष के सब पालकों के लिए कल्याणकारी बना ॥ ६१ ॥ हे बृहस्पते ! हे इन्द्र ! हे सवितादेव ! इस वधू को भ्राता, पति पशु आदि की क्षय करने वाली मत बनाओ। इसे पुत्र, धन आदि से सम्पन्न रूप में हमें प्राप्त कराओ ॥ ६२ ॥ हे देव ! इस वधू को वहन करने वाले रथ को हानि मत पहुँचाओ, हम शाला के द्वार पर इस वधू के मार्ग को कल्याण-मय बनाते हैं ॥ ६३ ॥ आगे, पीछे, भीतर, बाहर, मध्य में सब ओर ब्राह्मण रहें। तू देवताओं के निवास वाली रोग-रहित शाला को प्राप्त हो और पति गृह में मंगलमयी होती हुई प्रसन्न रह ॥ ६४ ॥

२ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—सावित्री सूर्या। देवता—आत्मा; यक्ष्मनाशनी; दम्पत्योः परिपन्थिनाशनी; देवाः। छन्द—अनुष्टुप्; जगती; अष्टिः त्रिष्टुप्; बृहती; गायत्री पंक्ति; उष्णिक्, शक्वरी)

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह।
स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥
पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ २ ॥
सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ३ ॥
सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्ग्नये।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ ४ ॥
आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अरंसत।
अभूत गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥ ५ ॥
सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम्।

सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥६॥
या ओषधयो या नद्यो यानि क्षेत्राणि या वना ।
तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥ ७ ॥
एमं पन्थाम रुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।
यस्मिन् वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥ ८ ॥
इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दम्पती वाममश्नुतः ।
ये गन्धर्वा अप्सरश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः ।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥ ९ ॥
ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥ १० ॥

हे अग्ने ! दहेज के साथ सूर्या को तुम्हारे लिये ही लाये थे। तुम हमको सन्तानवती पत्नी दो ॥ १ ॥ अग्नि ने आयु और तेज के सहित हमें पत्नी प्रदान की है, इसका पति भी दीर्घजीवी हो वह सौ वर्ष की आयु पावे ॥ २ ॥ तू पहले सोम की पत्नी हुई, फिर गंधर्व की और अग्नि तेरा तृतीय पति हुआ। मैं मनुज तेरा चतुर्थ पति हूँ ॥ ३ ॥ सोम ने तुझे गंधर्व को दी, गंधर्व ने अग्नि को और अग्नि ने तुझे मेरे लिए दे दी और धन तथा पुत्रों से भी सम्पन्न किया ॥ ४ ॥ हे उषाकालीन ऐश्वर्य वाले अश्विद्वय ! तुम्हारे हृदय में जो अभीष्ट रहते हैं, वह तुम्हारी कृपापूर्ण बुद्धि द्वारा हमको मिलें। तुम हमारे प्रिय तथा रक्षा करने वाले होओ। हम सूर्य की कृपा से ग्रहों में भोग करने वाले हों ॥ ५ ॥ तुम कल्याणकारी मन से वीरों से युक्त धन का पोषण करो। हे अश्विद्वय ! तुम इस तीर्थ को सुफल करते हुए मार्ग में प्राप्त दुर्मति आदि को दूर कर दो ॥ ६ ॥ हे वधु ! ओषधि, नदी, क्षेत्र और वन तुझे सन्तानवती बनावें, और तेरे पति की दुष्टों से रक्षा करें ॥ ७ ॥ हम इस सुख-मय वाहन वाले मार्ग पर चलते हैं, इसमें वीरों को हानि नहीं होती और अन्यों का धन प्राप्त होता है ॥८॥ मनुष्यो ! मेरी बात सुनो, वनस्पतियों में गंधर्व हैं अप्सराएँ हैं, वे इसे सुख देने वाली हों और इस दहेज रूप धन को

नष्ट न करें। इन आशीर्वादात्मक वाणी से यह दोनों उत्तम पदार्थों का उप-
भोग करें ॥ ६ ॥ चन्द्रमा के समान प्रसन्नताप्रद दहेज की ओर जो विनाशक
साधन आते हैं, वे जहां से आते हों वही उन्हें यज्ञीय देवता पहुँचावें ॥ १० ॥

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥ ११ ॥

सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु ॥ १२॥
शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥ १३ ॥
आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ॥१४॥
प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥
उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसावघ्न्यावशुनमारताम् ॥ १६ ॥
अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥
अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥ १८ ॥
उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।
शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥१९॥
यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥ २० ॥

दम्पति के समीप जो दस्यु आना चाहते हैं, वे इन्हें प्राप्त न कर सकें।

हम इस दुर्गम मार्ग को सुगमता से पार करें और हमारे शत्रु दुर्गति में पड़ें ।। ११ ।। मैं दहेज को मंत्रों, नेत्रों और नक्षत्रों के द्वारा दीप्त करता हूँ। इसमें विभिन्न प्रकार के जो पदार्थ हैं, उन्हें सवितादेव प्राप्त करने वालों को सुख देने वाले बनावें ।। १२ ।। इस स्त्री के लिये धाता ने घर रूप लोक बनाया है यह कल्याणी इसे प्राप्त हो गई है। इस वधू को अश्विद्वय, अर्यमा, भग और प्रजापति संतान से प्रवृद्ध करें । १३ ।। हे पुरुष ! तू उस उर्वरा नारी में बीज वपन कर। ऋषभ के समान तेरे वीर्य और दूध को धारण करने वाली यह तेरे निमित्त संतानोत्पत्ति करे ।। १४ ।। हे सरस्वति ! तू विष्णु के समान विराट् है इसलिये तू प्रतिष्ठित हो । हे सिनीवालि ! तू भग देवता की सुन्दर मति में रहती हुई संतान उत्पन्न कर ।।१५।। हे जलो ! अपनी कर्म की तरङ्गों को शांत करो, लगामों को ढीला करो। यह श्रेष्ठ कर्म वाले, न मारने योग्य वाहन 'अशुन' न करने लगें ।।१६।। हे वधू ! तू स्निग्ध दृष्टि रखती हुई, पति को क्षीण न करने वाली हो । तू वीर पुत्रों का प्रसव करती हुई और मन में प्रसन्न होती हुई सबको सुख देने वाली होती हुई इस घर को प्राप्त हो। हम भी तेरे द्वारा बढ़ें ।। १७ ।। हे वधू ! पति और देवर को हानि न पहुँचाने वाली, पशुओं का हित करने वाली, प्रजावती, शोभन कांति वाली, सुख देने वाली होती हुई, देवर का अहित चिंतन न करने वाली होती हुई तू अग्नि का पूजन कर ।। १८ ।। हे निऋति ! यहाँ से उठकर भाग। तू किस वस्तु की इच्छा से यहाँ उपस्थित हुई है ? मैं तुझे अपने घर से भगाता हुआ तेरा सत्कार करता हूँ । तू शत्रु रूपिणी शून्य की कामना से यहाँ आई, परन्तु तू विहार न कर ।। १९ ।। गृहस्थ रूप आश्रम में प्रविष्ट होने से पूर्व यह वधू अग्नि-पूजन कर रही है। हे स्त्री ! अब तू सरस्वती को और पितरों को नमस्कार कर ।। २० ।।

शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ।। २१ ।।
य बल्वजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन ।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ।। २२ ।।

उप स्तृणीहि बल्वजमधि चर्मणि रोहिते।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ॥ २३ ॥
आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः ॥ २४ ॥
वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः ।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ॥ २५ ॥
सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥ २६ ॥
स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥ २७ ॥
सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्मै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥ २८ ॥
या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥ २९ ॥
रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥ ३० ॥

इस स्त्री के लिये मृगचर्म रूप आसन में मंगल और रक्षा को व्याप्त कर । यह भग देवता प्रसन्न रहें । हे सिनीवालि, यह स्त्री संतानोत्पत्ति करती रहे ॥ २१ ॥ तुम्हारे द्वारा रखे गये तृण और मृगचर्म पर यह प्रजावती और पति-कामा कन्या चढ़े ॥ २२ ॥ रोहित मृग के चर्म पर 'बल्वज' को विस्तृत करो, उस पर प्रतिष्ठित होकर यह प्रजावती स्त्री अग्नि देव का पूजन करे ।२३। हे स्त्री, इस मृगचर्म पर चढ़कर अग्नि देव के पास बैठ । यह देवता सब राक्षसों को मारने में समर्थ हैं । तू इस गृह में अपनी प्रथम सन्तान को उत्पन्न कर यह तेरा ज्येष्ठ पुत्र कहायेगा ॥२४॥ इस माता से अनेक पुत्र प्रकट होकर गोद में बैठें । हे सुन्दर कल्याण वाली स्त्री ! तू अग्नि के पास बैठ कर इन

सब देवताओं को सुशोभित कर ॥२५॥ तू कल्याणमयी, पति को सुख देने वाली, घर का कार्य चलाने वाली,श्वसुर और सास के लिए सुखमयी होती हुई गृह-प्रवेश कर ॥२६॥ तू पति को सुख देने वाली हो, घर के लिए मङ्गलमयी हो,श्वसुर के लिए कल्याण करने वाली हो, तू सब सन्तानों को सुख दे और उनका पोषण करती रह ॥२७॥ यह वधू कल्याणमयी है, सब मिलकर इसे देखो। इसके दुर्भाग्य को दूर करते हुए सौभाग्य प्रदान करो ॥२८॥दूषित हृदय वाली स्त्रियाँ तथा वृद्धाएं इसे तेज प्रदान करती हुई चली जांय ॥ २६ ॥ मन को अच्छा लगने वाले बिछौने युक्त इस सुन्दर पर्यंक पर सूर्या सुख की प्राप्ति के लिए चढ़ी थी ॥ ३० ॥

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥३१॥

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्व स्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ॥३२॥

उत्तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।
जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥३३॥
अप्सरसः सधमाद मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥३४॥

नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः ।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ॥३५॥
राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम ।
अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ ३६ ॥
सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः ।
मर्यइव योषामधि रोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥३७॥
तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ।

या न ऊरू उशती विश्र याति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥ ३८ ॥
आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु । ३९ ॥
आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४०॥

हे स्त्री ! तू प्रसन्नता से इस पर्यंक पर चढ़ और पति के लिए संतानोत्पत्ति कर । तू समान बुद्धि से सम्पन्न रह और नित्य उषाकाल में जागने वाली हो ॥३१॥ देवताओं ने भी पूर्वकाल में पर्यंक पर आरोहण कर अपने अङ्गों को पत्नी के अङ्गों से युक्त किया था । हे स्त्री ! तू सूर्या के समान ही पति के संग रहती हुई सन्तानवती हो ॥ ३२ ॥ हे विश्वावसो ! यहाँ से उठ, हम तुझे नमस्कार करते हैं । पितृगृह जाती हुई 'जामिम' ही तेरा भाग है उसी की उत्पत्ति को तू जान ॥ ३३ ॥ प्राणियों के प्रसन्न होने वाले स्थान में हविर्धान और सूर्य को देखकर अप्सराऐं हर्षित होती हैं, वही तेरी उत्पत्ति का स्थान है इसलिए वहीं जा । मैं तुझे नमस्कार पूर्वक गंधर्वों के गमन के साथ ही प्रेरित करता हूँ ॥३४॥ गंधर्व के क्रोधमय नेत्र को नमस्कार ! हे विश्वावसो! हमारे मन्त्र और नमस्कार को स्वीकार करते हुए तुम अप्सराओं से इस नारी को दूर रखो ॥ ३५ ॥ हम हर्षप्रदायक हों । हम गंधर्वों को ऊर्ध्वगामी करते हैं । वह देवता परम सधस्थ को प्राप्त होगया । जहाँ आयु विस्तृत होती है, हम भी उस स्थान को प्राप्त हो गये हैं ॥ ३६ ॥ तुम दोनों माता-पिता बनने के निमित्त ऋतुकाल में मिलो । वीर्य द्वारा माता-पिता बनो । मानवी विधि से आरोहण करो और संतानोत्पत्ति करो ॥ ३७ ॥ हे पूषन् ! जिसमें बीज वपन होता है, उस कल्याणी स्त्री को प्रेरित करो । वह प्रेम करती हुई अग विस्तृत करके सन्तानोत्पादन के कर्म में संलग्न हो ॥ ३८ ॥ तू जाया का स्पर्श कर । प्रसन्न होते हुए तुम दोनों प्रजोत्पत्ति कर्म करो । सविता तुम्हारी आयु वृद्धि करें ॥ ३९ ॥ अर्यमा तुम्हें दिन रात्रि से मिलावें, प्रजापति तुम्हारे लिए प्रजोत्पत्ति करें । हे वधू ! तू अमंगलों से पृथक् रहती हुई इस गृह में प्रविष्ट हो और दुपाये चौपाये सभी को सुख देने वाली बन ॥ ४० ॥

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद् वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥४१॥
यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥ ४२ ॥
स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥ ४३ ॥
नवं वसानाः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः ।
आण्डात् पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ॥ ४४ ॥
शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४५ ॥
सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥ ४६ ॥
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतंपुनः ॥ ४७ ॥
अपास्मत् तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्यस्मिन् तां स्थाणावध्या सजामि ॥ ४८ ॥
यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि ॥ ४९ ॥
या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥ ५० ॥

देवताओं ने मनु सहित इस वधु के वस्त्र को दिया था । जो इस वाधूय वस्त्र को विद्वान् ब्राह्मण के लिए प्रदान करता है वह राक्षसों का नाश करने में समर्थ होता है ॥ ४१ ॥ जो वर का वस्त्र और वाधूय वस्त्र ब्रह्मभाग मानकर मुझे दिया गया है, हे बृहस्पति तुम इन्द्र और ब्रह्मा की सहमति से इसे मुझे प्रदान कर चुके हो ॥ ४२ ॥ हम दोनों ही हास्य से प्रसन्नता को और

सुख से बोध को प्राप्त हों । हम सुन्दर गति वाले हों और पुत्रादि से सम्पन्न रहते हुए उपाओं को पार करते रहें ॥ ४३ ॥ मैं नवीन सुन्दर और सुरभित परिधान धारण कर उपाकालों को जीवित रहता हुआ पाऊँ । अण्ड से पक्षी के मुक्त होने के समान मैं भी सब पापों से छूट जाऊँ ॥ ४४ ॥ सुशोभित आकाश पृथिवी के मध्य चेतन अचेतन प्राणी वास करते हैं, यह विशाल कर्म वाले आकाश-पृथिवी और यह सात प्रकार के प्रवाहित जल हमको पाप से छुड़ावें ॥ ४५ ॥ सूर्या, देवगण, मित्र, वरुण सभी भूतों के जो जानने वाले हैं उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४६॥ 'जन्तुओं' के निमित्त जो 'अभिश्रिप'के बिना 'आतर्दन' करता है, जो पुरूवसु विह्रुत का निकालने वाला है और मघ्वा 'संधि' को मिलाता है ॥ ४७ ॥ नीला, पीला, लाल धुँआ हमारे पास से दूर हो । भस्म करने वाली पृपातकी को स्थाणु में रखता हूँ ॥४८॥ उपवासन की समस्त कृत्याएँ और वरुण के समस्त पाश, वृद्धि और असमृद्धि को स्थाणु में रखता हूँ ॥ ४९ ॥ हे वनस्पते ! मेरा वस्त्र से सजा हुआ देह दमकता रहे तू उसके आगे नीवी कर, हम नाश को प्राप्त न हों ॥ ५० ॥

ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।
वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ॥ ५१ ॥
उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ ५२ ॥
बृहस्पतिनाव सृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५४ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५५ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५६॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५७ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥
यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ५९ ॥
यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६० ॥

किनारे, सिच्. तन्तु, ओतु और पत्नियों द्वारा बुना हुआ वस्त्र हमको सुख देने वाला और कोमल स्पर्श वाला हो ॥ ५१ ॥ पितृगृह से पतिगृह को गमन करने वाली यह कन्यायें कामना करती हुई दीक्षा को छोड़ती हैं ॥५८॥ बृहस्पति की यह ओषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट की गई है, हम उसे गौओं के वर्च में मिलाते हैं ॥ ५३ ॥ बृहस्पति की रची हुई यह ओषधि विश्वे-देवताओं द्वारा पुष्ट की गई है; हम इसे गौओं के तेज से सम्पन्न करते हैं ॥५४॥ बृहस्पति द्वारा रचित यह ओषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट की गई है, हम इसे गौओं के सौभाग्य से युक्त करते हैं ॥ ५५ ॥ बृहस्पति द्वारा रचित यह ओषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट की गई है, हम इसे गौओं में वर्तमान यश से जोड़ते हैं ॥ ५६ ॥ बृहस्पति द्वारा रचित यह ओषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पोषित हुई है, हम इसे गौओं में वर्तमान दुग्ध से मिश्रित करते हैं ॥ ५७ ॥ बृहस्पति द्वारा प्रयुक्त यह ओषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट हुई है, हम इसे गोरस से मिलाते हैं ॥५८॥ कन्या के जाने से दु.खी हुए केश वाले पुरुष तेरे घर में रोते हुये घूमे हैं । उस पाप से अग्निदेव तुझे छुड़ावें ॥ ५९ ॥ तेरी पुत्री अपने केशों को फैलाकर रोई है, उस पाप से सविता और अग्नि तुझे छुड़ावें ॥६०॥

यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६१ ॥
यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम् ।

अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६२ ॥
इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ६३ ॥
इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ६४ ॥
यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥ ६५ ॥
यद् दुष्कृत यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् ।
तत् सभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥ ६६ ॥
संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६७ ॥
कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।
अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥ ६८ ॥
अङ्गादङ्गाद वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।
तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्वन्तरिक्षम् ।
अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत् पितृंश्च सर्वान् ॥ ६९ ॥
सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् ।
स त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥ ७० ॥

तेरी भगिनियाँ अथवा अन्य युवतियाँ दुखित हुईं, रोती हुई तेरे घर में घूमी हैं, उस पाप से सविता और अग्नि तुझे छुड़ावें ॥ ६१ ॥ तेरे घर, संतान और पशुओं में दुःख फैलाने वालों ने जो दुःख फैलाया है, उस पाप से अग्नि और सविता तुझे छुड़ावें ॥ ६२ ॥ खीलों की आहुति देती हुई यह वधू कामना करती है कि मेरा पति दीर्घजीवी और सौ वर्ष की आयु वाला हो ॥ ६३ ॥ हे इन्द्र ! इन पति-पत्नी को चकवी-चकवे के समान प्रीति दो । इन्हें सुन्दर गृह और संतान से युक्त रखो । यह जीवन-भर

विभिन्न भोगों को भोगते रहें ॥ ६४ ॥ संधान, उपधान या उपवासनजो दोष लगा है और विवाह कर्म में जिन्होंने कृत्या की है, इन सब पापों को स्नान करने के स्थान में स्थित करते हैं ॥ ६५ ॥ विवाह के समय या दहेज में जो दोष बना है, उसे हम मधुर बोलने वाले के कम्बल में स्थित करते हैं ॥ ६६ ॥ कम्बल में दुरित और संमल में मल को स्थित करके यह यज्ञीय पुरुष शुद्ध हो गये । अब देव हमें पूर्ण आयु करें ॥ ६७ ॥ यह कृत्रिम रूप से बनाया गया सैकड़ों दाँतों वाला कंघा इसके शीर्ष स्थान पर पहुँचता हुआ सिर के मैल को हटावे ॥ ६८ ॥ इसके अङ्ग-अङ्ग से संहारक दोष को दूर करता हूँ, परन्तु वह दोष मुझे न लगे। पृथिवी, आकाश, अन्तरिक्ष, देवगण और जल को भी वह दोष न लगे। हे अग्ने ! यह दोष पितरों और उनके अधिष्ठात्री देवता यमराज को भी न लगे॥ ६९ ॥ हे जाये ! पृथिवी के दूध के समान सारतत्व से और औषधियों के सार तत्व से मैं तुझे आबद्ध करता हूँ। तू प्रजा और धन से सम्पन्न होती हुई धन प्रदायिनी बन ॥ ७० ॥

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥ ७१ ॥

जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।
अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ ७२ ॥

ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन् ।
ते अस्य वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥ ३७ ॥

येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा ।
तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ॥ ७४ ॥

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ ७५ ॥

हे जाये ! मैं साम हूँ तू ऋक् है, मैं आकाश हूँ तू पृथिवी है, मैं

विष्णु रूप और तू लक्ष्मी रूप है । हम यहाँ साथ-साथ निवास करते हुए संतानोत्पत्ति करें ॥ ७१ ॥ हम दोनों को नदियाँ प्रकट रखें । हम मंगलमय दान के दाता पुत्र को पावें । हम विस्तृत अन्न प्राप्ति के लिये दोनों संयुक्त रहते हुये प्राणो से अहिंसित रहें । ७२ ॥ वधू को देखने की इच्छा से इस दहेज के समीप आने वाले पितर इस शीलवती वधू को संतानयुक्त कल्याण प्रदान करने वाले हों । ७३ ॥ पहिले रस्सी के समान बाँधने को जो नारी इस मार्ग को प्राप्त हुई थी, उस पहिले न चले हुये मार्ग में इस वधू को संतान और धन के द्वारा ले जायें । यह महिमावती वृद्धि को प्राप्त होती रहे ॥ ७४ ॥ हे सुबुद्धे ! जगाई जाने पर तू सौ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त करने के लिए जाग । गृह-पत्नी बनने के लिये घर चल । सविता देव तुझे दीर्घ जीवन दे ॥ ७५ ॥

॥ इति चतुर्दशं काण्डं समाप्तम् ॥

पंचदश कांड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—पंक्ति, बृहती; अनुष्टुप्; गायत्री)

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् ॥ १ ॥
स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् ॥ २ ॥
तदेकमभवत् त तल्ललामभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् ।
तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत ॥ ३ ॥

सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् । ४ ॥
स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत् । ५ ॥
स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ॥ ६ ॥
नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥ ७ ॥
नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं
विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥ ८ ॥

चलते हुए ही व्रात्य (समूहपति) ने प्रजापति को प्रेरणा दी ॥ १ ॥ प्रजापति ने अपने में सुवर्ण (आत्मा) को देखा और तब उसने सब को उत्पन्न किया ॥ २ ॥ प्रजापति ही ज्येष्ठ, महत्, ललाम, ब्रह्म, तप और सत्य हुआ उसी से यह उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ वह वृद्धि को प्राप्त हुआ, वही महान् और महादेव हुआ ॥ ४ ॥ वह देवताओं का स्वामी हुआ, वही ईशान हुआ ॥ ५ ॥ वह सब समूहों का स्वामी एक 'व्रात्य' हुआ, उसने जो धनुष उठाया, वही इन्द्र धनुष कहलाया ॥ ६ ॥ उसका पेट नीला और पीठ लाल रङ्ग की है ॥ ७ ॥ अप्रिय शत्रु को वह नीले से घेरता और द्वेष करने वाले को लाल से विदीर्ण करता है, ब्रह्मवादी यह बताते हैं ॥ ८ ॥

२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्; पङ्क्ति, गायत्री; जगती, बृहती; उष्णिक्)

स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १ ॥
तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन् ॥ २ ॥
बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य
आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ ३ ॥
बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च देवानां
प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि ॥ ४ ॥
श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री

केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ ५ ॥
भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ ६ ॥
मातरिश्वा च पावमानश्च विपथवाहौ वातः
सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ ७ ॥
कीर्तिश्च यशश्च पुरः सरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या
यशो गच्छति य एवं वेद ॥ ८ ॥

वह उठकर पूर्व दिशा की ओर चल दिया ॥ १ ॥ बृहत् साम, रथन्तर साम, सूर्य और सब देवता उसके पीछे चले ॥ २ ॥ ऐसे विद्वान् ब्राह्मण का निन्दक बृहत्साम, रथन्तर साम, सूर्य और विश्वेदेवाओं की हिंसा करता है ॥ ३ ॥ (उसका सत्कार करने वाला ' बृहत्साम, रथन्तर, सूर्य और सब देवताओं को प्रिय, पूर्व दिशा में अपना प्रिय धाम बनाता है ॥ ४ ॥ श्रद्धा पुंश्चली, विज्ञान-वस्त्र, दिन पाग, रात्रि केश, मित्र मागध हरित प्रवर्त, कल्मणि उसकी मणि होती है ॥ ५ ॥ भूत भविष्यत् परिष्कन्द और मन विपथ होता है ॥ ६ ॥ मातरिश्वा और पवमान विपथवाह, रेष्मा कोड़ा और वायु सारथी होता है ॥ ७ ॥ कीर्ति और यश पुरःसर होते हैं । इस प्रकार जानने वाले को कीर्ति और यश मिलता है ॥ ८ ॥

स उदतिष्ठत् स दक्षिणां दिशमनु व्यचलत् ॥ ६ ॥
तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च
पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १० ॥
यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय च
पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ ११ ॥
यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य
च पशूनां च प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि ॥ १२ ॥
उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री
केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १३ ॥

अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी
रेष्मा प्रतोदः ।
कीर्तिश्च यशश्च पुरः सरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या
यशो गच्छति य एवं वेद ॥ १४ ॥

वह उठकर दक्षिण दिशा की ओर चला ॥ ९ ॥ यज्ञायज्ञिय, साम, यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य उसके पीछे पीछे चले ॥ १० ॥ ऐसे व्रात्य का निन्दक यज्ञायज्ञिय, साम, यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य का अपराधी होता है ॥ ११ । (उसका सत्कार करता है तो) यज्ञायज्ञिय, साम, यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य की प्रिय दक्षिण दिशा में उसका भी प्रिय धाम होता है ॥ १२ । विज्ञान वस्त्र, दिन पगड़ी, रात्रि केश, उषा पुंश्चली, मन्त्र मागध और हरित प्रवर्त, कल्मणि मणि होती है ॥ १३ ॥ अमावस्या, पूर्णिमा उसके परिष्कन्द होते हैं ॥ १४ ॥

स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १५ ॥
तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥ १६ ॥
वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञ आ-
वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ १७ ॥
वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः-
प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥ १८ ॥
इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री-
केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १९ ॥
अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ।
कीर्तिश्च यशश्च पुरः सरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति-
य एवं वेद ॥ २० ॥

वह उठा और पश्चिम दिशा में गमन किया ॥ १५ ॥ जल, वरुण, वैरूप, वैराज उसके पीछे चले ॥ १६ ॥ ऐसे व्रात्य का निन्दक जल, वरुण, वैरूप, वैराज का अपराधी होता है ॥ १७ ॥ (सत्कार करने वाला) जल, वरुण, वैरूप, वैराज का प्रिय और उसका दक्षिण में प्रियधाम होता है ॥१८॥ पृथिवी पुंश्चली, विज्ञान वस्त्र, दिन पगड़ी, रात्रिकेश, हास्य मागध, हरित प्रवर्त, कल्मणि मणि होती है ॥१९॥ रात्रि और दिवस परिष्कंद होते है । २०॥

स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिसमनु व्यचलत् ॥ २१ ॥
तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्यचलन् ॥२२॥
श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञ आ
वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ २३ ॥
श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमाय च राज्ञः
प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि ॥ २४ ॥
विद्युत पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री
केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ २५ ॥
श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दो मनो विपथम् ॥ २६ ॥
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः
सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ २७ ॥
कीर्तिश्च यशश्च पुरः सरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो
गच्छति य एवं वेद ॥ २८ ॥

वह उठा और उत्तर की ओर गमन किया ॥२१॥ सप्तऋषि, सोम श्यैत, और नौधस उसके अनुगत हुए ॥ २२ ॥ ऐसे व्रात्य का निन्दक सप्तर्षि, सोम, श्यैत, नौधस का ही अपराधी होता है ॥ २३ ॥ (व्रात्य का प्रशंसक) उत्तर में सप्तर्षि सोम, श्यैत और नौधस का प्रिय धाम उसका होता है ॥ २४ ॥ विद्युत पुंश्चली, विज्ञान वस्त्र, दिन पगड़ी, रात्रिकेश, स्तनयित्नु मागध, हरित प्रवर्त और कल्मणि मणि होती है ॥ २५ ॥ श्रुत विश्रुत परिष्कंद और मन विपथ होता है ॥ २६ ॥ वात सारथी, रेष्मा कीड़ा, मातरिश्वा और

पवमान विपथवाह होते हैं ॥ २७ ॥ कीर्ति और यश पुरःसर होते हैं, ऐसा जानने वाला कीर्ति और यश को प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः छन्दः—गायत्री; उष्णिक्; जगती; बृहती; अनुष्टुप्; पङ्क्तिः; त्रिष्टुप्)

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् व्रात्य
किं नु तिष्ठसीति ॥ १ ॥
सोऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥ २ ॥
तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥ ३ ॥
तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥ ४॥
बृहच्च रथन्तरं चानूच्ये आस्तां यज्ञायज्ञियं च
वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥ ५ ॥
ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥ ६ ॥
वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥७॥
सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः ॥ ८ ॥
तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥ ९ ॥
तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पाः प्रहाय्या
विश्वानि भूतान्युपसदः ॥ १० ॥
विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥

वह वर्ष भर तक खड़ा रहा, तब देवताओं ने पूछा कि हे व्रात्य ! यह तप क्यों कर रहे हो ॥ १ ॥ उसने उत्तर दिया मेरे निमित्त आसन्दी (चौकी) बनाओ ॥ २ ॥ तब देवताओं ने उसके लिए—आसन्दी को बनाया ॥ ३ ॥ उसके ग्रीष्म और वसन्त दो पाद हुए और शरद् वर्षा नामक भी दो पाद हुए ॥ ४ ॥ बृहद् और रथन्तर दो अनूच्य तथा यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य

तिरश्च्य हुए ॥ ५ ॥ ऋचा और प्रांचा तन्तु हुए और यजु तिर्यक् हुए ॥ ६ ॥ वेद आस्तरण और ब्रह्म उपबर्हण हुआ ॥ ७ साम आसाद और उद्गीथ उपश्रय हुआ ॥ ८ ॥ उस आसन्दी पर व्रात्य चढ़ा ॥ ९ ॥ देवता उसके परिष्कन्द हुए, सत्य संकल्प प्रहृय्य और सब भूत उपसद हुए ॥ १० ॥ इसके बात के जानने वाले के सकल भूत उपसद होते हैं ॥ ११ ॥

४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—जगती; अनुष्टुप्; गायत्री; पङ्क्तिः; त्रिष्टुप्; बृहती; उष्णिक्)

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥
वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥ २ ॥
वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथन्तरं
चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥

वसन्त ऋतु के दो महीनों को देवताओं ने पूर्व दिशा से रक्षक नियुक्त किया और बृहत्साम तथा रथन्तर साम को अनुष्ठाता किया ॥ १-२ ॥ ऐसे जानने वाले की पूर्व की ओर से वसंत ऋतु दो महीने रक्षा करते तथा बृहत् और रथन्तर उसके अनुकूल होते हैं ॥ ३ ॥

तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥ ४ ॥
ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च
वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥ ५ ॥
ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च
वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ६ ॥

दक्षिण दिशा की ओर से ग्रीष्म ऋतु के दो महीनों को देवताओं ने रक्षक बनाया और यज्ञायज्ञिय तथा वामदेव्य को अनुष्ठाता किया ॥ ४-५ ॥ ऐसा जानने वाले की दक्षिण दिशा की ओर से ग्रीष्म ऋतु के दो महीने रक्षा करते हैं और यज्ञायज्ञिय वामदेव्य उसके अनुकूल होते हैं ॥ ६ ॥

तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥ ७ ॥
वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥
वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च
वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ९ ॥

पश्चिम दिशा की ओर से वर्षा ऋतु के दो महीनों को देवताओं ने रक्षक नियुक्त किया और वैरूप-वैराज को उसका अनुष्ठाता बनाया ॥ ७-८ ॥ ऐसा जानने वाला पश्चिम की ओर से वर्षा ऋतु के दो मासों द्वारा रक्षित होता है और वैरूप-वैराज उनके अनुकूल रहते हैं ॥ ९ ॥

तस्मा उदीच्या दिशः ॥ १० ॥
शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैतं च
नौधसं चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥
शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च
नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १२ ॥

उत्तर दिशा की ओर से शरद् ऋतु के दो मासों को देवताओं ने रक्षक नियुक्त किया और नौधस तथा श्यैत को उसका अनुष्ठाता बनाया ॥१०-११॥ ऐसा जानने वाला पुरुष उत्तर दिशा की ओर से शरद् ऋतु के दो महीनों द्वारा रक्षित होता है और नौधस तथा श्यैत उसके अनुकूल होते हैं ॥ १२ ॥

तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥ १३ ॥
हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥ १४ ॥
हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु
तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १५ ॥

ध्रुव दिशा की ओर से हेमन्त ऋतु के दो महीनों को देवताओं ने रक्षक नियुक्त किया और पृथिवी तथा अग्नि को उसका अनुष्ठाता बनाया

॥ १४ ॥ ऐसा जानने वाला पुरुष ध्रुव दिशा की ओर से हेमन्त के दो मासों द्वारा रक्षित रहता है और पृथिवी अग्नि उसके अनुकूल रहते हैं ॥ १५ ॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥१६॥

शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥१६॥
शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानुतिष्ठतो
य एव वेद ॥१८॥ (६) [११४]

देवताओं ने शिशिर ऋतु के दो मासों को ऊर्ध्व दिशा की ओर से रक्षक नियुक्त किया और आकाश तथा सूर्य को उसका अनुष्ठाता बनाया ॥१६-१७॥ ऐसा जानने वाला पुरुष शिशिर ऋतु के दो महीनों द्वारा रक्षित रहता है तथा आदित्य और आकाश दोनों उसके अनुकूल रहते हैं ॥ ८॥

सूक्त ५

(ऋषि-अथर्वा ॥ देवता-रुद्र ॥ छन्द-गायत्री,त्रिष्टुप्;अनुष्टुप्;पंक्ति बृहती)

तस्मै प्राच्या दिशा अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१॥
भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं
शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ३ ॥ (१)

उसके लिए पूर्व दिशा के कोने से बाण का सन्धान करने वाले भव को देवताओं ने उसका अनुष्ठाता बनाया ॥१॥ पूर्व दिशा के कोने से भव इसके अनुकूल रहते और भव, शर्व ईशान भी अनुकूल रहते हैं ॥२॥ ऐसा जानने वाले के समान पुरुषों और पशुओं को वे हिंसित नहीं करते ॥३॥

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारम
कुर्वन् ॥ ४ ॥
शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून न समानान् हिनस्ति य
एवं वेद ॥ ५ ॥ (२)

उसके निमित्त दक्षिण दिशा के कोण से व ण प्रक्षेप करने वाले शर्व को देवताओं ने अनुष्ठाता बनाया ।४। इस प्रकार जानने वाले पुरुष के लिए शर्व दक्षिण कोण में अनुकूल रहते हैं और उसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नही करते ॥ ५ ॥

तस्मै प्रचीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारम-कुर्वन् ॥६॥

पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठ'त नैनं शर्वो न भवो नेशानः। नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥७॥ (३)

उसके लिए पश्चिम दिशा के कोने मे वाण प्रक्षेप करने वाले पशुपति को देवताओं ने अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार जानने वाले पुरुष के लिए पशुपति पश्चिम दिशा के कोने में अनुकूल रहते हैं और इसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करते ॥ ७ ॥

तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारम-कुर्वन् ॥८॥

उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः। नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद। ९ ॥ (४)

उत्तर दिशा के कोण से देवताओं ने वाण प्रक्षेप करने वाले उग्रदेवको अनुष्ठाता बनाया ।८॥ इस प्रकार जानने वाले पुरुष के उग्रदेव उत्तर दिशा के कोण में अनुकूल रहते हैं और उसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करते ॥९॥

तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १० ॥

रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाय दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति

नैनं शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥ ५)

ध्रुव दिशा के अन्तर्देश से बाण प्रक्षेप करने वाले रुद्र को देवताओं ने अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ १० ॥ इस प्रकार जानने वाले पुरुष के रुद्रदेव ध्रुव अन्तर्देश में अनुकूल रहते हैं और इसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करते हैं ॥११॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १२ ॥

महादेव एनमिष्वासऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ १३ ॥ (६)

ऊर्ध्वदिशा के कोण से बाण प्रक्षेप करने वाले महादेव को देवताओं ने अनुष्ठाता किया ।१२।। वे महादेव, इस प्रकार जानने वाले पुरुष के लिए ऊर्ध्वकोण में अनुकूल रहते हैं और इसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करते ॥ १३ ॥

तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारम कुर्वन ॥१४॥

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठानु तिष्ठति नैनं शर्वो व भवो नेशानः एवं वेद ॥ १५ ॥

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य ॥१६॥ (७)

सब दिशाओं के कोणों में बाण प्रक्षेप करने वाले ईशान को देवताओं ने अनुष्ठाता बनाया ॥ १४ ॥ सब दिशाओं के कोणों में ईशान इस प्रकार जानने वाले के अनुकूल रहते और इसके समान वयस्क पुरुषों तथा पशुओं की हिंसा नहीं करते । भव शर्व भी इसे नष्ट नहीं करते ॥१५॥

सूक्त ६

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—पंक्तिः; त्रिष्टुप्, बृहती जगती, उष्णिक्, अनुष्टुप्)

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ॥ १ ॥

तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्य चलन् ॥ २ ॥

भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥ (१)

वह व्रात्य ध्रुव दिशा की ओर चल पड़ा ॥ १ ॥ पृथिवी, अग्नि, ओषधि, वनस्पति और वनस्पतियों में जो ओषधि हैं, वे सब उसके अनुगत हुए ॥ २ ॥ इस प्रकार जानने वाला पृथिवी, अग्नि, ओषधि, वनस्पति और वनस्पत्यात्मक ओषधि का प्रिय धाम होता है ॥ ३ ॥

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ॥ ४ ॥

तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ॥ ५ ॥

ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चंद्रस्य च नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥ (२)

वह ऊर्ध्व दिशा की ओर चल पड़ा ॥ ४ ॥ सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ऋत, सत्य उसके अनुगत हुए ॥ ५ ॥ इस प्रकार जानने वाला सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ऋत, सत्य का प्रिय-धाम होता है ॥ ६ ॥

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ॥ ७ ॥

तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ॥ ८ ॥

ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥ (३)

उसने उत्तम दिशा की ओर गमन किया ॥ ७ ॥ साम, यजु, ऋचाएं

ग्रोर ब्रह्म उसके पीछे चले ॥ ८ ॥ इस प्रकार जानने वाला साम, यजु, ऋचा ग्रोर ब्रह्म का प्रिय धाम होता है ॥ ९ ॥

स बृहतीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १० ॥
तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥ ११ ॥
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥ (४)

उसने बृहती दिशा में गमन किया ॥ १० ॥ तब पुराण, इतिहास, मनुष्यों की प्रशंसात्मक गाथाऐं उसके पीछे-पीछे चले ॥ ११ ॥ इस बात के जानने वाला पुराण, इतिहास ग्रोर गाथाग्रों का प्रियधाम होता है ॥ १२ ॥

स परमां दिशमनु व्यचलत् ॥ १३ ॥
तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १५ ॥ (५)

उसने परम दिशा को प्रस्थान किया ॥ १३ ॥ ग्राह्वानीय, गार्हपत्य ग्रोर दक्षिणाग्नि उसके ग्रनुगामी हुए ग्रोर यज्ञ, यजमान, पशु भी पीछे-पीछे चले ॥ १४ ॥ इस बात के जानने वाला ग्राह्वानीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, यज्ञ, यजमान ग्रोर पशुग्रों का भी प्रिय धाम होता है ॥ १५ ॥

सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥ १६ ॥
तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानव्यचलन् ॥ १७
ऋतूनां च वै स ग्रार्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१८॥ (६)

वह ग्रनादिष्ट दिशा की ग्रोर चल पड़ा ॥१६॥ ऋतुऐं, पदार्थ, लोक, मास, पक्ष, दिवस ग्रोर रात्रि उसके पीछे चले ॥ १७ ॥ इसे जानने वाला पुरुष ऋतु, पदार्थ, लोक, मास, पक्ष, दिन-रात्रि का प्रिय धाम होता है ॥ १८ ॥

सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावर्त्स्यंन्नमन्यत ॥ १६ ॥
तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् ॥ २० ॥
दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २१ ॥ (७)

उसने अनावृत दिशा की ओर गमन किया और वहाँ रहना ठीक नहीं माना ॥१६॥ उसके पीछे इडा, इन्द्राणी, दिति, और अदिति चलीं ॥ २० ॥ इसे जानने वाला पुरुष इडा, इन्द्राणी, दिति, अदिति का प्रिय धाम होता है ॥ २१ ॥

स दिशोऽनु व्यचलत् तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः । २२ ॥
विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २३ ॥ (८)

उसने दिशाओं की ओर गमन किया और विराट् आदि सब देवता उसके अनुगामी हुए ॥ २२ ॥ इस प्रकार जानने वाला विराट् आदि सब देवताओं का प्रियधाम होता है ॥ २३ ॥

स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ॥ २४ ॥
तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ॥२५॥
प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २६ ॥ ६ [१६]

वह सभी अन्तर्देशों की ओर चला ॥ २४ ॥ प्रजापति परमेष्ठी, पिता और पितामह भी उसके पीछे चले ॥२५॥ इस प्रकार जानने वाला, प्रजापति परमेष्ठी, पिता और पितामह का प्रियधाम होता है ॥ २६ ॥

७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—गायत्री; बृहती; उष्णिक्, पंक्तिः)

स महिमा सद्रु र्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रोऽभवत् ॥ १ ॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्य वर्तयन्त ॥ २ ॥
ऐनमापो गच्छत्यैनं श्रद्धा गच्छत्यैनं वर्षं गच्छति य एवं वेद ॥३॥
तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ॥ ४ ॥
ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैनमन्नं गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ॥ ५ ॥

वह पृथिवी के अन्त पर स्द्र महिमा होकर गया और समुद्र बन गया ॥ १ ॥ प्रजापति परमेष्ठी पिता, पितामह, जल और श्रद्धा यह सभी वर्षा रूप होकर उसके अनुकूल वर्तने लगे ॥ २ ॥ इस प्रकार जानने वाले को जल, और श्रद्धा यह सभी वर्षा रूप होकर उसके अनुकूल वर्तने लगे । इस प्रकार जानने वाले को जल, श्रद्धा वर्षा प्राप्त होती है । ३ ॥ लोक, यज्ञ, अन्न, अन्नाद्य और श्रद्धा अपनी सत्ता में प्रादुर्भूत होकर उसके चारों ओर व्यवस्थित हुए ॥ ४ ॥ इस प्रकार जानने वाले को लोक, यज्ञ, अन्न, अन्नाद्य और श्रद्धा प्राप्त होती है ॥ ५ ॥

८ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता— अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—उष्णिक्; अनुष्टुप्, पंक्ति)

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥ १ ॥
स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् ॥ २ ॥
विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च-
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

वह रञ्जन करता हुआ राजा बना ॥ १ ॥ वह प्रजाओं के बंधुओं के, अन्न और अन्नाद्य के अनुकूल वर्तने लगा ॥ २ ॥ इस प्रकार जानने वाला प्रजाओं का, अन्न अन्नाद्य का प्रिय धाम होता है ॥ ३ ॥

९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्; व्रात्यः । छन्द—जगती; गायत्री; पंक्ति)

स विशोऽनु व्यचलत् ॥ १ ॥
तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् ॥ २ ॥
सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

उसने प्रजाओं के अनुकूल व्यवहार किया ॥ १ ॥ सभा, समिति, सेना और सुरा उसके अनुकूल हुए ॥ २ ॥ इस प्रकार जानने वाला, सभा, समिति सेना और सुरा का प्रिय धाम हो जाता है ॥ ३ ॥

१० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—बृहती; पंक्तिः; उष्णिक्)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥
श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते-
तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥ २ ॥
अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥ ३ ॥
बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्र विशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥ ४ ॥
अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ॥ ५ ॥
इयं वा उ पृथ्वी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥ ६ ॥
अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥ ७ ॥
ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥ ८ ॥
यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्मवेद ॥ ९ ॥
ऐनामिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥ १० ॥

य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥ ११ ॥

ऐसा विज्ञ व्रात्य जिस राजा का अतिथि हो ।१।। तो उसका सम्मान करे । ऐसा करने से राष्ट्र और क्षात्र शक्ति को वह नष्ट नहीं करता ॥ २ ॥ फिर ब्राह्मबल और क्षात्र शक्ति कहने लगे कि हम किसमें प्रविष्ट हों ? ॥३। ब्राह्मबल बृहस्पति में और क्षात्र शक्ति इन्द्र में प्रविष्ट हो । ४ ॥ तब ब्राह्मबल बृहस्पति में और क्षात्र बल इन्द्र में प्रविष्ट हो गया ॥ ५ ॥ आकाश ही इन्द्र है, पृथिवी ही बृहस्पति है ॥ ६ ॥ आदित्य क्षात्रबल और अग्नि ब्राह्मबल है । ७ ॥ जो पृथिवी को बृहस्पति और अग्नि को ब्रह्म जानता है वह ब्राह्म-बल और ब्रह्मवर्च को प्राप्त होता है ॥ ८-९ ॥ जो आदित्य को क्षत्र और द्यौ को इन्द्र जानता है उसे इन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं ॥ १०-११ ॥

११ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द— पंक्तिः; शक्वरी; बृहती, अनुष्टुप्)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य-
तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्त-
थास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥ २ ॥
यदेनमाह व्रात्य क्वाऽवात्सीरिति पथ एव तेन देवयानानवरुन्द्धे । ३॥
यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे ॥ ४ ॥
यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥ ५ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विति प्रियमेव तेनाव रुन्द्धे ॥६॥
ऐनं प्रियं गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विति वशमेव तेनाव रुन्द्धे ॥८॥
ऐनं वशो गच्छति वशी वशिनां भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति निकाममेव-

तेनाव रुन्द्धे ॥ १० ॥
ऐनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

ऐसा विज्ञ व्रात्य जिसके घर में अतिथि हो ॥ १ ॥ तब उसे स्वयं आसन देकर कहे—"हे व्रात्य ! तुम कहाँ निवास करते हो ? यह जल है ! हमारे घर के व्यक्ति तुम्हें सन्तुष्ट करें । तुम्हें जो प्रिय हो, जैसा तुम्हारा वश हो, जैसा तुम्हारा निकाम हो, वैसा ही हो । २ ॥" यह कहने पर कि हे व्रात्य ! तुम कहाँ रहोगे ? देवयान मार्ग ही खुल जाता है ॥ ३ ॥ इससे यह कहने वाला कि 'हे व्रात्य ! यह जल है ।' अपने लिए जल को ही खोल लेता है ॥ ४ ॥ यह कहने वाला कि 'हमारे व्यक्ति तुम्हें तृप्त करें' अपने ही प्राणों को सींचता है ॥ ५ ॥ यह कहने वाला कि 'जो तुम्हें प्रिय होगा वही होगा' अपने ही प्रिय कार्यों का उद्घाटन करता है ॥ ६ ॥ ऐसा जानने वाला प्रिय पुरुष को प्राप्त होता हुआ प्रिय को भी प्रिय हो जाता है ॥७॥ यह कहने वाला कि 'तुम्हारा वश है वैसा ही हो, अपने लिए उससे वश को ही खोल लेता है ॥ ८ ॥ इस प्रकार जानने वाले को वश प्राप्त होता है वह वश करने वालों को भी वश में कर लेता है ॥ ९ ॥ यह कहने वाला कि 'तुम्हारा निकाम हो वैसा ही हो, अपने लिए कामनाओं को खोल लेता है ॥ १० ॥ इस प्रकार जानने वाले को अभीष्ट प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

१२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम् व्रात्यः । छन्द—गायत्री; बृहती; अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्)

तद् यस्यैवं विद्वान व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्नि-
होत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्याति सृज होष्यामीति ॥ २ ॥
स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात् ॥ ३ ॥
स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति । ४ ॥

प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥ ५ ॥
न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥ ६ ॥
पर्यस्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा
व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ७ ॥
अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ८ ॥
न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥ ९ ॥
आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥ १० ॥
नास्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा
व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ११ ॥

अग्निहोत्र के अधिश्रित होने और अग्नियों के उद्धृत होने पर यदि विज्ञ व्रात्य घर पर आवे ॥ १ ॥ तब उसे स्वयं अभ्युत्थान देता हुआ कहे कि "हे व्रात्य ! मुझे होम करने की आज्ञा दो ! ॥ २ ॥ उसके आज्ञा देने पर आहुति दे, अन्यथा न दे ॥ ३ ॥ ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा पर जो आहुति देता है, वह पितृयान मार्ग और देवयानमार्ग को जान लेता है ॥ ४-५ ॥ इसकी आहुति देवताओं को ही पहुँचती हैं । ६ ॥ ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा पर आहुति देता है तो लोक में सब ओर इसका आयतन अवशिष्ट रहता है ॥ ७ ॥ ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा न होने पर भी यदि आहुति देता है ॥ ८ ॥ तो वह पितृयान मार्ग या देवयान मार्ग किसी को भी नहीं जान पाता ॥९॥ जो ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा बिना आहुति देता है तो वह आहुति व्यर्थ हो जाती है और वह देवताओं द्वारा नष्ट कर दिया जाता है ॥ १० ॥

१३ सूक्त

(ऋषि— अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्, गायत्री, बृहती, पङ्क्तिः, जगती)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ १ ॥

ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ २ ॥
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ३ ॥
येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ४ ॥
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ५ ॥
ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे । ६ ॥
तद् यस्यैव विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थी रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ७ ॥
ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ८ ।
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ॥ ९ ॥
य एवापरिमिताः पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ १० ॥
अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥११॥
कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत् ॥ १२ ॥
अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां
देवतां परि वेवेष्मीत्येनं परि वेविष्यात् ॥ १३ ॥
तास्यामेवास्य तद् देवतायां हुत भवति य एवं वेद ॥ १४ ॥

जिसके घर में ऐसा विद्वान् व्रात्य रात्रि में अतिथि होता है । १ ॥ वह उसके फल से पृथिवी के सभी पुण्य लोकों को जीतता है ॥ २ ॥ जिसके घर में ऐसा विद्वान् व्रात्य द्वितीय रात्रि में भी रहता है ॥ ३ ॥ तो उसके फल द्वारा वह अन्तरिक्ष के सब पुण्य लोकों को जीत लेता है ॥ ४ ॥ यदि ऐसा विद्वान् व्रात्य तीसरी रात भी रहता है ॥ ५ ॥ तो उसके फल से वह आकाश के समस्त पुण्य लोकों को अपने लिए खोल लेता है ॥ ६ । जिसके घर में ऐसा व्रात्य चौथी रात रहता है ॥ ७ ॥ तो उसके फल से वह पुण्यात्मा पुरुषों के पुण्य लोकों को खोल लेता है ॥ ८ ॥ जिसके घर में ऐसा विज्ञ व्रात्य अनेक रात्रियों तक निवास करता है ॥ ९ ॥ उसके फल से वह असंख्य पुण्य लोकों को खोल लेता है ॥ १० ॥ जिसके घर व्रात्य बनने वाला अव्रात्य आवे ॥ ११ ॥ तो क्या उसे भगा दे ? उसको

भी भगाना उचित नहीं ।। १२ ।। 'मैं इस देवता को बसाता हूँ मैं इस देवता से जल की याचना करता हूँ मैं इस देवता को परोसता हूँ' यह मानता हुआ परोसना आदि कार्य करे । १३ ॥ (अर्थात् यदि कोई अज्ञानी अथवा अविद्वान अतिथि आ जाय तो भी परम्परा की रक्षा के विचार से उसका साधारण रूप से सम्मान करो) जो इस बात को जानता है उसकी आहुति इस देवता में स्वाहुत होती है ।। १४ ।।

१४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्, पंक्ति, त्रिष्टुप्)

स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्य-
चलन्मनोऽन्नादं कृत्वा ॥ १ ॥
मनसान्नादेनान्नमत्ति य एव वेद । २ ॥
स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्यचलद्
बलमन्नादं कृत्वा ॥ ३ ॥
बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ४ ॥
स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद वरुणो राजा
भूत्वानुव्यचलदपोऽन्नादीः कृत्वा ॥ ५ ॥
अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एव वेद ॥ ६ ॥
स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत्
सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥ ७ ॥
आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥
स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्यचलद
विराजमन्नादीं कृत्वा ॥ ९ ॥
विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १० ॥

जब वह पूर्व दिशा के लिए चला, तब बली होकर आयु के अनुकूल चलते हुए अपने मन को अन्नाद बनाया ॥ १ ॥ जो इसे जानता है वह अन्नाद मन से अन्न को खाता है ॥ २ ॥ जब वह दक्षिण दिशा की ओर चला तब बल को अन्नाद बनाता हुआ स्वयं इन्द्र बनकर गमनशील हुआ ॥३॥ इस प्रकार जानने वाला अन्नाद बल से अन्न का सेवन करता है ।४॥ जब वह पश्चिम दिशा की ओर चला तब जल को अन्नाद बनाता हुआ वरुण बनकर चला ॥ ५ ॥ इस बात का ज्ञाता अन्नाद जल से अन्न को खाता है ।६॥ जब वह उत्तर दिशा की ओर चला तब सप्तर्षियों द्वारा दी गई आहुति को अन्नाद बनाकर सोम होकर चला ॥ ७ । इस बात का ज्ञाता अन्नाद आहुति से अन्न का भक्षण करता है ॥ ८ ॥ जब वह ध्रुव दिशा की ओर चला तब विराट् को अन्नाद बनाकर स्वयं विष्णु रूप में चला ॥ ९ ॥ इसका ज्ञाता अन्नाद विराट् से अन्न को खाता है ॥ १० ॥

स यत् पशूननु व्यचलद् रुद्रो भूत्वानु व्यचलदोषधीरन्नादीः कृत्वा ॥ ११ ॥
ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ १२ ॥
स यत् पितृनन् व्यचलद् यमो राजा भूत्वानु व्यचलत् स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ॥१३॥
स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१४॥
स यन्मनुष्याननु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्यचलत स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १५ ॥
स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१६॥
स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानु व्यचलद् वषट्कारमन्नादं कृत्वा ॥ ७॥
वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १८ ॥
स यद् देवाननु व्यचलदीशानो

भूत्वानुव्यचलन्मन्युमन्नादं कृत्वा ॥ १९ ॥
मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २० ॥
स यत् प्रजा अनु व्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानु व्यचलत्
प्राणमन्नाद कृत्वा ॥ २१ ॥
प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २२ ॥
स यत् सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् परमेष्ठी
भूत्वानुव्यचलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा ॥ २३ ॥
ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति एव वेद ॥ २४ ॥

जब वह पशुओं की ओर चला तब औषधियों को अन्नाद बनाकर रुद्र बनता हुआ चला ॥ ११ ॥ इस प्रकार जानने वाला अन्नाद औषधियों से अन्न को खाता है ॥ १२ ॥ जब वह पितरों की ओर चला तब स्वधा को अन्नाद बनाता हुआ यम होकर चला ॥ १३ ॥ इस प्रकार का ज्ञाता स्वधाकार अन्नाद से अन्न खाता है । १४ ॥ जब वह मनुष्यों की ओर चला तब स्वाहा को अन्नाद बनाकर अग्नि होता हुआ चला ॥ १५ ॥ इसे जानने वाला स्वाहाकार अन्नाद के द्वारा अन्न-सेवन करता है । १६ । जब वह ऊर्ध्व दिशा की ओर चला तब वषट्कार को अन्नाद बनाकर बृहस्पति होता हुआ चला ॥ ७ ॥ इस बात का ज्ञाता वषट्कार रूप अन्नाद के द्वारा अन्न भक्षण करता है ॥ १८ ॥ जब देवता की ओर चला तब यज्ञ को अन्नाद बनाकर ईशान बनता हुआ चला ॥ १९ ॥ इस प्रकार जानने वाला अन्नाद यज्ञ के द्वारा अन्न को खाता है ॥ २० ॥ जब वह प्रजाओं की ओर चला तब प्राण को अन्नाद बनाकर प्रजापति रूप में चला ॥ २१ ॥ इस प्रकार जानने वाला अन्नाद प्राण से अन्न-भोजन करता है ॥ २२ ॥ जब वह सब अन्तर्देशों की ओर चला तब ब्रह्म को अन्नाद बनाकर प्रजापति होता हुआ चला ॥ २३ ॥ इस प्रकार जानने वाला पुरुष अन्नाद ब्रह्म के द्वारा अन्न-भोजन करता है ॥ २४ ॥

१५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—पंक्तिः; बृहती, अनुष्टुप्, गायत्री)

तस्य व्रात्यस्य ।१॥
सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥२॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ॥३॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥४॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥५॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः ॥ ७ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः ॥ ८ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो
नाम ता इमाः प्रजाः ॥ ९ ॥

उस व्रात्य के सात प्राण, सात अपान और सात ही व्यान हैं ॥ १-२ ॥ इसका प्रथम ऊर्ध्व प्राण अग्नि है ॥ ३ । इसका द्वितीय प्रौढ़ प्राण आदित्य है ॥ ४ ॥ इसका तृतीय प्राण अभ्यूढ चन्द्रमा है ॥ ५ ॥ इसका चतुर्थ प्राण विभू पवमान है ॥ ६ ॥ इसका पञ्चम प्राण योनि जल है ॥ ७ ॥ इसका षष्ठ प्राण प्रिय नामक है यह पशु हैं ॥ ८ । इसके सप्तम प्राण का नाम है अपरिमित यह प्रजा हैं ॥ ९ ॥

१६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—उष्णिक्; त्रिष्टुप्; गायत्री)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी ॥ १ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयोऽपानः साष्टका ॥ २ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ॥ ३ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा श्रद्धा ॥ ४ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमोऽपानः सा दीक्षा ॥ ५ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठोऽपानः स यज्ञः ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा दक्षिणाः ॥ ७ ॥

इस व्रात्य का प्रथम अपान पौर्णमासी है ॥ १ ॥ इसका द्वितीय अपान अष्टका है ॥ २ ॥ इसका तृतीय अपान अमावस्या है ॥ ३ ॥ इसका चतुर्थ अपान श्रद्धा है ॥ ४ ॥ इसका पञ्चम अपान दीक्षा है ॥ ५ ॥ इसका षष्ठ अपान यज्ञ है ॥ ६ ॥ इसका सप्त अपान दक्षिणा है ॥ ७ ॥

१७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्; व्रात्यः । छन्द—उष्णिक्; अनुष्टुप्; पंक्तिः, त्रिष्टुप्;)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः ॥ १ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् ॥ २ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ॥ ३ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ॥ ४ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतवः ॥ ५ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तवाः ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सरः ॥ ७ ॥
तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः संवत्सरं वा एतदृतवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च ॥ ८ ॥
तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत् पौर्णमासीं च ॥ ९ ॥
तस्य व्रात्यस्य । एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव ॥ १० ॥

इन व्रात्य का प्रथम व्यान भूमि है ॥ १ ॥ इसका द्वितीय व्यान अन्तरिक्ष है ॥२॥ इसका तृतीय व्यान द्यौ है ॥ ३ ॥ इसका चतुर्थ व्यान नक्षत्र हैं ॥४॥ इसका पंचम व्यान ऋतुयें हैं ॥५॥ इसका षष्ठ व्यान आर्तव हैं ॥ ६ ॥ इसका सप्तम व्यान सम्वत्सर है ॥ ७ ॥ देवगण इसके समान अर्थ को प्राप्त होते तथा सम्वत्सर और ऋतु भी इसका अनुमान करते है ॥ ८ ॥ अमावस और पूर्णिमा जो आदित्य में प्रवेश करती हैं, एक आहुति ही इनका अविनाशत्व है ॥ ६।१० ॥

१८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—पंक्तिः बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥
यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः ॥२॥
योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः ॥ ३ ॥
अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ॥ ४ ॥
अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ॥ ५ ॥

इस व्रात्य का दक्षिण चक्षु आदित्य है और बाम चक्षु चन्द्रमा है ॥१-२॥ इसका दक्षिण श्रोत्र अग्नि और बाम श्रोत्र पवमान है ॥ ३ । इसकी नासिका दिवस और रात्रि हैं, शीर्ष कपाल दिति और अदिति हैं तथा शिर सम्वत्सर है ॥ ४ ॥ यह व्रात्य दिन में सब को पूजने योग्य होता है, रात्रि में भी प्रकृष्ट रूप से पूजनीय होता है । ऐसे व्रात्य को नमस्कार है ॥ ५ ॥

॥ इति पंचदशं काण्डं समाप्तम् ॥

षोडश काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—प्रजापतिः । छन्दः—बृहती; त्रिष्टुप्; गायत्री; पंक्तिः; अनुष्टुप्; उष्णिक्)

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥ १ ॥
रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥ २ ॥
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥ ३ ॥
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥ ४ ॥
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥
अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥ ६ ॥
योप्स्वग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम ॥ ७ ॥
यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥ ८ ॥
इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥ ९ ॥
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥ १० ॥
प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुःष्वप्न्यं वहन्तु ॥ ११ ॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥१२॥
शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्चं आ धत्त देवीः ॥ १३ ॥

जलों में जो वृषभ के समान जल है वह अति सृष्टा हुआ और दिव्य अग्नियाँ अति सृष्ट हुईं ॥ १ ॥ भङ्ग करने वाला, नाशक, पलायनशील, मन को दबाने वाला, दाहोत्पादक, खोदने से प्राप्य, आत्मा और देह को दूषित करने वाला जो जल है, उससे अपने वैरियों को संयुक्त करता हुआ मैं उसका

अतिसर्जन करता हूं, मैं उसे स्पर्श नहीं करूंगा ॥ २।३।४ ५ ॥ मैं तुम जलों के श्रेष्ठ भाग को समुद्र की ओर प्रेरित करता हूं ॥६॥ शरीर के बल को अपहृत कर जलों के भीतर लेजाने वाले अग्नि का भी मैं अपसर्जन करता हूं ॥ ७ ॥ हे जलो ! जो अग्नि तुममें प्रविष्ट हुआ है, वह तुम्हारा भीषण अंश है ॥ ८ ॥ जो तुम्हारा अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त अंश है उसे इन्द्रियों के द्वारा खींचे ॥६॥ जल हमारे पाप को दूर करे, पाप हमसे पृथक् हो ।१०। यह जल हमारे पाप और दुःस्वप्न को बहा ले जाय ॥११॥ हे जलो ! कृपा की दृष्टि से मुझे देखो और कल्याण करने वाले अपने अंश से मेरी त्वचा को छुओ ॥ १२ ॥ हम जल में व्याप्त मंगल करने वाले अग्नियों को आहूत करते हैं । यह दिव्य जल मुझ में क्षात्रबल वाली शक्ति को सम्पन्न करें ॥ १३ ॥

२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वाक् । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक, बृहती, गायत्री)

निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ॥ १ ॥
मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥ २ ॥
उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥ ३ ॥
सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥ ४ ॥
सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः॥५॥
ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥ ६ ॥

मैं दूषित 'अर्म' रोग से मुक्त रहूं, मेरी वाणी बलवती और मधुमती रहे ॥ १ ॥ औषधियो ! तुम मधुर रस से पूर्ण रहो, मेरी वाणी भी मधुर रस से पूर्ण हो ॥ २ ॥ मैं इन्द्रियों के पालक मन और मुख का आह्वान करता हूं ॥ ३ ॥ मेरे कान कल्याणकारी बातों को सुनें, मैं मंगलमयी प्रशंसात्मक बातों को सुनूं ॥ ४ ॥ मेरे श्रोत्र उत्तम प्रकार से सुनना और निकट से सुनना न छोड़ें, मेरे नेत्र गरुण के नेत्र के समान होते हुये दर्शन शक्ति से युक्त रहें ॥ ५ ॥ तू ऋषियों का प्रस्तर है, देवरूप प्रस्तर को नमस्कार हो ॥ ६ ॥

३ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-ब्रह्मादित्यौ। छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥ १ ॥
रजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा
हासिष्टाम् ॥ २ ॥
उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा
हासिष्टाम् ॥ ३ ॥
विमोकश्च माद्रंपविश्च मा हासिष्टामाद्रंदानुश्च मा मातरिश्वा
च मा हासिष्टाम् ॥ ४ ॥
बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥ ५ ॥
असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥ ६ ॥

मैं धनों का मूर्धा रूप रहूँ। अपने समान व्यक्तियों में मस्तक रूप होऊँ ॥ १ ॥ रज, यज्ञ, मूर्धा, विधर्मा मेरा त्याग न करें। ॥ २ ॥ उर्व, चमस, धरुण और धर्ता मुझसे वियुक्त न हों ॥ ३ ॥ विमोक, आद्रंपवि, आद्रंदानु और मातरिश्वा मुझसे पृथक् न हों ॥ ४ ॥ हर्षद, अनुग्रहप्रद, मन को लगाने वाले बृहस्पति मेरी आत्मा हैं ॥ ५ ॥ दो कोश तक की भूमि मेरी हो, मेरी हृदय संतप्त न हो। मैं धारक शक्ति द्वारा समुद्र के समान गहन होऊँ ॥ ६ ॥

४ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-ब्रह्मादित्यौ। छन्द-अनुष्टुप्, उष्णिक, गायत्री)

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥ १ ॥
स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥ २ ॥
मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ॥ ३ ॥
सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो
मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥ ५ ॥
स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ॥ ६ ॥
शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥ ७ ॥

मैं धनों का नाभि रूप होऊँ, अपने समान पुरुषों में भी मैं नाभि समान रहूँ ॥ १ ॥ मरणधर्मी मनुष्यों में श्रेष्ठ उषा अमृतत्व वाली और सुन्दरतापूर्वक प्रतिष्ठित होने वाली है ॥ २ ॥ प्राण मुझे न छोड़े, अपान भी मुझे छोड़कर न जाय ॥ ३ ॥ सूर्य दिन से रक्षा करें, अग्नि पृथिवी से रक्षा करें, वायु अन्तरिक्ष से, यम मनुष्यों से और सरस्वति पार्थिव पदार्थों से रक्षा करने वाले हों ॥ ४ ॥ प्राणापान मुझे न छोड़ें, मैं प्रकट रहूँ ॥ ५ ॥ उषा काल से और रात्रि से मेरा मङ्गल हो मैं सर्व गणों और जलों का उपभोग करने वाला होऊँ ॥ ६ ॥ पशुओ ! तुम भुजाओं से युक्त होओ, मेरे निकट स्थित होओ। वरुण मेरे प्राणापान को पोषित करें और अग्नि मेरे बल को दृढ़ करें ॥ ७ ॥

५ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—यमः । देवता-दुःष्वप्ननाशनम् । छन्द-गायत्री,बृहती)

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥ २ ॥
तं त्वा स्वप्न तथा स विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥४॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि॥ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥
तं त्वा स्वप्न तथा स विद्म स नः स्वप्न दुःष्वन्यप्न्यात् पाहि ॥६॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा स विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥७॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥८॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥९॥
तं त्वा स्वप्न तथा स विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥१०॥

हे स्वप्न ! तू ग्राह्य पिशाची से उत्पन्न हुआ यम को प्राप्त कराने वाला है । मैं तेरी उत्पत्ति का जानने वाला हूँ ॥१॥ हे स्वप्न ! तू अन्त करने वाला मृत्यु है ॥ २ ॥ हे स्वप्न ! हम तुझे जानते हैं, तू दुःस्वप्न से हमको बचा ॥ ३ ॥ हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देवते ! हम तुम्हारे जन्म के ज्ञाता हैं तुम निर्ऋति के पुत्र हो और यम को प्राप्त कराने वाले हो ॥ ४ ॥ हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देवते ! हम तुम्हारे जन्म के ज्ञाता हैं । तुम अभूति के पुत्र और यम के कारण रूप हो ॥ ५ ॥ हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देव ! हम तुम्हारे जन्म को जानते हैं । तुम निर्भूति के पुत्र और यम के कारण रूप हो ॥ ६ ॥ हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देव ! हम तुम्हारे जन्म को जानते हैं । तुम पराभूति के पुत्र और यम के कारण रूप हो ॥७॥ हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देव ! हम तुम्हारे जन्म को जानते हैं । तुम देवजामियों के पुत्र और यम के कारण रूप हो ॥ ८ ॥ हे स्वप्न ! तुम अन्त करने वाली मृत्यु हो ॥ ९ ॥ तुमको हम अच्छे प्रकार जानते हैं, दुःस्वप्न से तुम हमारी रक्षा करो ॥१०॥

६ सूक्त

(ऋषि-यमः । देवता-दुष्वप्ननाशनम्, उषा । छन्द-अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती, जगती, उष्णिक् गायत्री.)

अजैष्माद्यासनामाद्या भूमानागसो वयम् ॥ १ ॥

उषो यस्माद् दुःष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥
द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ॥ ३ ॥
यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ॥ ४ ॥
उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्युषसा संविदाना ॥ ५ ॥
उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना
संविदानः ॥ ६ ॥
तेमुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ॥ ७ ॥
कुम्भीका दूषीकाः पीयकान् ॥ ८ ॥
जाग्रःद्दुष्वप्न्यं स्वप्नेदुःष्वप्न्यम् ॥ ९ ॥
अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥१०॥
तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद्
विथुरो न साधुः ॥ ११ ॥

हम विजय प्राप्त करें, भूमि प्राप्त करें और पाप-रहित हों ॥ १ ॥ हम दुःस्वप्न से भयभीत हुये हैं, उसका भय मिट जाय ॥ २ ॥ हे मंत्र शक्ति के अधिष्ठाता देव ! हमसे द्वेष करने वाले के समीप इस भय को ले जाओ। हमको कोसने वाले को यह भय प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥ हम अपने वैरी के पास इस भय को प्रेरण करते हैं ॥ ४ ॥ उषा वाणी से समान मत वाली हो और वाणी उषा से समान मत रखे ॥ ५ ॥ उषा के पति वाचस्पति से समान मत रखें और वाचस्पति उषस्पति से एक मत हों ॥ ६ ॥ वे दूषित नाम वाली कुम्भीकों,पीयकों, को शत्रु पर प्रेरित करें ॥ ७-८ ॥ सोते समय दुःस्वप्नों से प्राप्त होने वाले फलों को, जागते हुये दुःस्वप्नों से प्राप्त होने वाले फलों से भूतकालीन उत्तम संकल्पों को और शत्रु के पाशों को खोलता हूँ ॥ ९-१० ॥ हे अग्ने ! देवगण इन सबको शत्रु के पास ले जाँय । यह भयभीत होता हुआ पुंसत्वहीन हो और सज्जन न रह पावे ॥ ११ ।

७ सूक्त

(ऋषि—यमः । देवता—दुःष्वप्ननाशनम् । छन्द—पंक्ति, अनुष्टुप्,
उष्णिक्, गायत्री, बृहती, त्रिष्टुप्)

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि
पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि । १।
देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥
वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥
एवानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥
योस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥५॥
निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥६ ।
सुयामंश्चाक्षुप ॥ ७ ।
इदमहमामुष्यायणेमुष्याः पुत्रे दुःष्वप्न्यं मृजे ॥८॥
यददोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥ ६ ॥
यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥
यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥ ११ ॥
तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥ १२ ॥
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

मैं इसे अभिचार कर्म से, अभूति से, निर्भूति, पराभूति से, ग्राह्या से और मृत्यु रूप अन्धकार से विदीर्ण करता हूँ ॥ १ ॥ मैं इसे देवताओं की भयङ्कर आज्ञाओं के समक्ष उपस्थित करता हूँ ॥ २ ॥ मैं इसे वैश्वानर के दाढ़ों में डालता हूँ ॥ ३ । वह इसे निगल जाँय ॥ ४ ॥ हमारे द्वेषी से आत्मा द्वेष करे और जिससे हम द्वेष करते हैं वह आत्मा से द्वेष करे ॥ ५ ॥ उस द्वेष करने वाले को हम आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष से दूर करते हैं ॥ ६ ॥ हे चाक्षुप ! दुःस्वप्न से प्राप्त होने वाले फल को अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र में भेजता हूँ ॥ ७-८ ॥ पूर्व रात्रि में अमुक-अमुक कर्म को

मैं कर चुका हूँ । जाग्रतावस्था, सुषुप्तावस्था, दिन, रात्रि या नित्य प्रति मैं जिस पाप-दोष को प्राप्त होता हूँ, उसी के द्वारा इसे नष्ट करता हूँ ॥ ६-१०-११ ॥ हे देव ! उस शत्रु को हिंसित करो, फिर हर्ष युक्त होते हुए उसकी पसलियों को भी तोड़ दो ॥ १२ ॥ वह प्राण-हीन हो, जीवित न रहे ॥ १३ ॥

८ सूक्त

(ऋषि—यमः । देवता—दुःस्वप्ननाशनम् । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, त्रिष्टुप्; जगती; पंक्तिः; बृहती).

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं-
ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं-
प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ १ ॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ २ ॥
स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥ ३ ॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-
स्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः-
प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ५ ॥

शत्रुओं को मार कर लाए हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे ही हैं ॥१॥ अमुक गोत्रि, अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से हटाते हैं ॥२॥ वह ग्राह्या के पाश से मुक्त न हो पावे ॥ ३ ॥ मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधा मुख करके नीचे गिराता हूँ ॥ ४ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाए हुए, जीते हुए पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर

हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले, अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से हटाते हैं, वह निऋ ति के पाश से मुक्त न हो । मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर औंधे मुख डालता हूं ॥ ५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं-
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ६ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-
स्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ७ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-
स्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ८ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-
स्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स देवजामीनां पाशान्मा मोचि । तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ९ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व-

रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वारा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १० ॥

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए, जीते हुए पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग पशु प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं, वह अभूति के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर औंधे मुख डालता हूँ ॥ ६ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाए हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले, अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं, वह निर्भूति के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ ७ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाए हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले; अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह पराभूति के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधा मुख करके डालता हूँ ॥ ८ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह देवजामि के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधा करके गिराता हूँ ॥ ६ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु प्रजा और सब वीर हमारे हैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं । वह बृहस्पति के बंधन से मुक्त न हो । मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ १० ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ११ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसौ यः ।
स ऋषीणां पाशान्मा मोचि । तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १२ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स आर्षेयाणां पाशान्मा मोच । तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १३ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १४ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि

वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १५ ॥

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह प्रजापति के बंधन से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ ११ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं, सत्य, तेज, ब्रह्म, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह ऋषियों के बंधन से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ १२ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले, अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर भेजते हैं। वह आर्षेयों के बंधन से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ १३ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुये सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह आङ्गिराओं के बंधन से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ १४ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा, और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं, वह आंगिरसों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ १५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।

सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १६ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-
स्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १७ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व-
रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १८ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-
स्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स
वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १९ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-
स्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स ऋतूनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ २० ॥

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं ।

सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं । वह अभर्वाओं के पाश से मुक्त न हो । मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ १६ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं । वह आथर्वणों के पाश से मुक्त न हो । मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ १७ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं । वह वनस्पतियों के पाश से मुक्त न हो । मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ १८ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं । वह वानस्पत्यों के पाश से मुक्त न हो । मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ १६ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं । वह ऋतुओं के पाश से मुक्त न हो । मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ २० ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स आर्तवानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२१॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स मासानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२२॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२३॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२४॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२५॥

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं । सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक दूर करते हैं । वह ऋतुओं के पदार्थों के

पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूं ॥ २१ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह मासों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूं ॥२२॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह अर्धमासों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूं ॥ २३ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह दिन-रात्रियों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, और आयु को लपेटकर उसे औंधे मुख गिराता हूं ॥ २४ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह गत दिन के संयत भागों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूं॥ २५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माक यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम्।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२६॥
जितस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकंः प्रजा अस्माकं वीरा

अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२७॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२८॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२९॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ॥ ३० ॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ ३१ ॥
स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥ ३२ ॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥३३॥

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, प्रजा, और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह द्यावापृथिवी के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज,वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर

उसे औंधे मुख गिराता हूं ॥ २६ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह इन्द्राग्नि के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ २७ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुये सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे है। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह मित्रावरुण के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूं ॥ २८। शत्रुओं का विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह राजा वरुण के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ २६ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। ३० । अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से पृथक् करते हैं ॥ ३१ ॥ वह मृत्यु के पादबंधक के पाशों से मुक्त न हो ॥ ६२ ॥ उसके वर्च, तेज, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ ३३ ।

६ सूक्त

(ऋषि—यमः। देवता-प्रजापतिः, मन्त्रोक्ताः, सूर्यः। छन्द—अनुष्टुप्; उष्णिक्; पङ्क्ति)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥१॥
तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके ॥ २ ॥
अगन्म स्वः स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥
वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान्

भूयासं वसु मयि धेहि ॥ ४ ॥

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए तथा जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। मैं शत्रुओं की सेना पर अधिष्ठित होऊँ ॥ १ ॥ अग्नि और सोम इसी बात को कह रहे हैं, पूषा मुझे पुण्यलोक में प्रतिष्ठित करें ॥ २ ॥ हम स्वर्ग को प्राप्त हों, सूर्य की ज्योति से उत्तम प्रकार से स्वर्ग लोक को प्राप्त हों ॥३॥ मैं धनी एवं सत्कार पाने के योग्य हूँ । मैं परम धनी होने के लिये धन पर अधिकार करूँ। हे देव ! मुझ में धन को पुष्ट करो ॥ ४ ॥

॥ इति षोडशं काण्डं समाप्तम् ॥

सप्तदश काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आदित्यः । छन्द—जगती, अष्टि, धृति, शक्वरी, कृतिः, प्रकृतिः, ककुप, बृहती, अनुष्टुप; त्रिष्टुप)

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं सधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥ १ ॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् ॥ २ ॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥ ३ ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहाजितं स्वर्जितं गोजितं सधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥ ४ ॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ॥५॥
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
द्विषश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥६॥
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो
बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥७॥
मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वन्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र ।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥८॥
त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥९॥
त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१०॥

सहमान (अन्य को दबाने वाले तेज से युक्त), शत्रुओं में से उस तेज को जीतने वाले, स्वर्ग के विजेता, शत्रुओं के गवादि पशुओं को जीतने वाले, जलों के जीतने वाले इन्द्र (रूप सूर्य को) त्रिकाल कर्मों द्वारा आहूत करता हूं. उनकी कृपा से मैं आयु से सम्पन्न होऊँ ॥१॥ विपासहि, सहमान्, सासहान, सहीयान्, तेज के विजेता, स्वर्ग और गौओं के विजेता, जलों के विजेता इन्द्र (सूर्य) को मैं आहूत करता हूँ । मैं उनकी कृपा से देवताओं का प्रिय होऊँ ॥ २ ॥ विपासहि, सहमान, सासहान, सहीयान्, तेज के विजेता, स्वर्ग, गो और जलों के विजेता इन्द्रात्मक सूर्य को मैं आहूत करता हूँ । उनकी कृपा से मैं संतानादि का प्रिय होऊँ ॥ ३ । विपासहि, सहमान, सासहान, सहीयान्, तेज के विजेता, स्वर्ग, गो और जलों के विजेता इन्द्रात्मक सूर्य को मैं आहून करता हूँ । उनकी कृपा से मैं पशुओं का प्रिय होऊँ ॥४॥ विपासहि, सहमान, सासहान, सहीयान्, तेज के विजेता, स्वर्ग, गो और जलों के जीतने वाले इन्द्रात्मक सूर्य को आहूत करता हूँ । उनकी कृपा से मैं समान पुरुषों का प्रिय होऊँ ॥५॥ उदय होने पर सब प्राणियों को अपने-अपने कर्म में लगाने वाले सूर्य ! तुम उदय होओ तुम सबके दबाने वाले हो, मुझे वर्च प्राप्त कराने को उदय होओ । तुम्हारी कृपा से मुझसे द्वेष रखने वाले मेरे आधीन हों । मैं तुम्हारा उपासक शत्रुओं के वश में कभी न होऊँ । हे विष्णु रूप सूर्य ! तुम अपनी किरणों से विश्व को व्याप्त करने वाले हो । तुम हमें अनेक प्रकार के पशुओं से पूर्ण करो और देह के अन्त होने पर हमें परम व्योम में स्थापित करो ॥ ६ ॥ हे सूर्य ! उदय होओ, सब के दबाने वाले तेज से मुझे युक्त करो । जो प्राणी मेरे सामने दिखाई देते हैं अथवा जो नहीं दिखाई देते हैं, उन दोनों प्रकार के प्राणियों में मुझे उत्कृष्ट बुद्धि वाला करो । हे विष्णु रूप सूर्य ! ऐसा तुम्हारा ही प्रभाव है, अन्य का नहीं । मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से पूर्ण करते हुये अन्त में परम व्योम और सुधा में स्थापित करो ॥ ७ ॥ हे सूर्य ! जलों में पाशधारी राक्षस तुम्हें अन्तरिक्ष के जलों में न रोकें । तुम अपने यश से अन्तरिक्ष पर चढ़े हो । तुम हमें सुख दो । हम तुम्हारी कृपा पूर्ण बुद्धि में रहें । हे विष्णु रूप सूर्य ! तुम अत्यन्त पराक्रमी हो । मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करते हुए

देहान्त में परम व्योम और सुधा में स्थापित करो ॥८॥ हे अत्यन्त ऐश्वर्यवान् सूर्य ! ऐश्वर्य सिद्धि के लिये तुम सर्पादि की हिंसा से रहित रात्रि और दिवस द्वारा हमें रक्षित करो। तुम अत्यन्त पराक्रम वाले हो, मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करते हुए देहान्त में परम व्योम और सुधा में स्थापित करो ॥ ६ ॥ हे ऐश्वर्य सम्पन्न सूर्य ! हमको महान् सुख दो। अपने कल्याणमय रक्षा-साधनों से हमें सुखी करो। तुम्हारे द्वारा रक्षित मनुष्य बारम्बार आवागमन का क्लेश नहीं पाता। तुम्हें अपना स्थान प्रिय है। हमारे द्वारा स्तुत होते और सोम पान करते हुए हमारी रक्षा करो। हे सूर्य ! तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो। मुझे अनेक प्रकार पशुओं से सम्पन्न करते हुए देहान्त में परम व्योम और सुधा में स्थापित करो ॥ १० ॥

त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ११ ॥

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षञ्छर्म यच्छ तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१२॥

या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने
स्वर्विदि। ययेन्द्र तन्वान्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा शर्म यच्छ
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१३॥

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुरृषयो नाधमानास्तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१४॥

त्वं तृत त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो
बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ।।१५।।
त्व रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ।।१६।।
पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्व नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ।। ७।।
त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्य यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्व नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ।।१८।।
असति सत् प्रतिष्ठित सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहित भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ।।१९।।
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि ।
स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ।।२०।।

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रात्मक सूर्य ! तुम संसार को जीतने वाले हो । तुम पुरुहूत हो । इस समय सुन्दर आह्वान वाले इस स्तोत्र को स्वीकार करो और हमको सुख दो । हम तुम्हारी कृपामयी बुद्धि में रहें । तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो । मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करते हुए देहान्त पर परम व्योम और सुधा में स्थापित करो ।। ११ ।। हे इन्द्रात्मक सूर्य ! तुम

आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी में किसी से भी नहीं दबते हो। क्योंकि तुम असीमित शक्ति से सम्पन्न गायत्री मन्त्र द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते रहते हो। तुम्हारे अपरिमित पराक्रम हैं। मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से पूर्ण करो और मरने पर परम व्योम में, सुधा में स्थापित करो ॥ १२ ॥ हे इन्द्रात्मक सूर्य ! तुम अपनी जलों में स्थित आभा से हमें सुख दो, जलों में विद्यमान ओषधि आदि के सार रूपों से भी हमें सुखी करो। पृथिवी में जो तुम्हारा रूप है, उसके द्वारा हमें अन्नादि का सुख दो और अन्तरिक्ष में व्याप्त अपने रूप से हमें वृष्टि आदि सुख दो। तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो। हमें अनेक प्रकार के पशुओं से पूर्ण करो और देह के अन्त होने पर परम व्योम में, अमृत धाम में स्थापित करो ॥ १३ ॥ हे इन्द्रात्मक सूर्य ! अभीष्ट फलों की इच्छा करते हुए पुरातन कालीन ऋषि तुम्हें स्तोत्रादि से प्रवृद्ध करते रहते थे। तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो। हमें अनेक प्रकार के पशु आदि से पूर्ण करो और मरने पर दुःखादि क्लेशों से रहित परम व्योम के अमृतमय स्थान में प्रतिष्ठित करो ॥ १४ ॥ हे इन्द्रात्मक सूर्य ! तुम अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर अपरिमित धाराओं वाले मेघ को प्राप्त होते हो। यह मेघ ओषधि आदि को बढ़ाने वाला और यज्ञ का साधन रूप होने से साक्षात् यज्ञ ही है। तुम्हारे अपरिमित प्रभाव हैं। हमें अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करो और मरने पर परम व्योम के अमृत में प्रतिष्ठित करो ॥ १५ ॥ हे सूर्य ! तुम चारों दिशाओं के रक्षक हो। तुम अपने प्रकाश से आकाश और पृथिवी को प्रकाशित करते हो। तुम जल को जानते हुए उसके मार्ग में व्याप्त होते हो। तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो। मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करो और मृत्यु के पश्चात् परमाकाश के अमृत स्थान में प्रतिष्ठित करो ॥ १६ ॥ हे सूर्य ! तुम पाँच रश्मियों द्वारा ऊपर को मुख करके ऊर्ध्व लोकों को प्रकाशित करते हो। ऐसा करते हुए तुम पृथिवी को एक किरण से प्रकाशित करने की निन्दा को प्राप्त होते हो। तुम्हारे अपरिमित प्रभाव हैं। मुझे अनेक रूप वाले पशुओं से सम्पन्न करो और मरने पर परमाकाश के सुधा में स्थापित करो ॥ १७ ॥ हे इन्द्रात्मक सूर्य ! पुण्यात्माओं को मिलने वाले पुण्यलोक तुम ही हो। तुम्हीं प्राणियों के

रचयिता हो, इसीलिए यजमान तुम्हारे निमित्त ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों को करते हैं तुम अनेक प्रभावों से सम्पन्न हो। मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करो और मरने पर परमाकाश के अमृत में प्रतिष्ठित करो ।। १८ ।। असत् में सत् स्थापित है अर्थात् ब्रह्म में भूत स्थापित है। हे सूर्य ! तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो। मुझे अनेक प्रकार के पशु आदि से युक्त करो और मृत्यु के पश्चात् परमाकाश के अमृत में प्रतिष्ठित करो ।। १९ ।। हे सूर्य ! तुम ही शुक्र हो। सब लोगों को प्रकाशित करने वाले तेज से तुम ज्योतिर्मान् रहते हो। मैं तुम्हारे ऐसे ही रूप की उपासना करता हूं। मैं भी उसी प्रकार के तेज से युक्त होऊं। २० ।।

रुचिरसि रोचोऽसि। स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ।।२१।।

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ।।२२।।

अस्तयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ।।२३।।

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ।। २४ ।।

आदित्य नावमारुक्ष शतारित्रां स्वस्तये।
अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय। २५।।

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये।
रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय ।।२६।।

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ।। २७ ।।

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥ २८ ॥
ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥ २९ ॥
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥ ३० ॥

हे सूर्य ! तुम दीप्ति रूप हो, जैसे संसार को प्रकाशित करने वाली
दीप्ति से चमकते हो, वैसे ही मैं पशुओं से और ब्रह्मवर्च से दमकता रहूँ ।२१।
हे सूर्य ! तुम उदयाचल को प्राप्त होते हुए को नमस्कार है । अर्द्धोदित और
पूर्णोदित को नमस्कार है । एकदेशोदित विराट्, अर्द्धोदित स्वराट् और
पूर्णोदित सम्राट् को नमस्कार है ॥ २२ ॥ अस्त होते हुए (अर्द्धास्त) एवं
अस्त को प्राप्त हुए और पूर्णरूप से अस्त हुए आदित्य को नमस्कार है ।
विराट्, स्वराट्, सम्राट् रूप सूर्य को नमस्कार है ॥२३॥ सब लोकों को पूर्ण-
तया तप्त करने वाले आदित्य अपने रश्मिजाल सहित, मेरे पशुओं को दबाते
हुए उदित हो गए । हे सूर्य ! तुम्हारी कृपा से मैं द्वेष करने वालों के वश में न
पड़ूँ । तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो । मैं अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न
होऊँ । मरने पर मुझे सुधायुक्त परम व्योम में प्रतिष्ठित करो ॥ २४ ।
हे आदित्य ! व्योमरूपी समुद्र से पार होने के लिए तुम वायुरूपी पतवार
लेकर रथरूपी नौका पर संसार के कल्याण के लिए आरूढ़ हुए हो । तुम मेरी
भिताप से रक्षा करते हुए दिन के पार उतार चुके हो । ऐसे ही मुझे रात्रि के
पार भी पहुँचाओ ॥२५॥ हे सूर्य ! तुम व्योमसिंधु से तरने के लिए वायुरूपी
पतवार को लेकर संसार के कल्याणार्थ रथरूप नौका पर आरूढ़ हुए हो ।
तुमने मुझे कुशल-पूर्वक रात्रि के पार पहुँचा दिया है । उसी प्रकार अब दिन
के भी पार पहुँचाओ । २६॥ प्रजापतिरूप सूर्य के दृढ़ तेजरूप कवच से मैं ढका
हूँ । मैं जीर्ण होकर भी दृढ़ अङ्गों वाला तथा रोग रहित रहता हुआ अनेक
प्रकार के भोगों का उपयोग करता रहूँ । मैं शारीरिक बलों से युक्त रहता
हुआ प्रजोत्पत्ति में समर्थ रहूँ । मैं दीर्घ आयु को पाता हुआ लौकिक और

वैदिक कर्मों को करता हुआ, सूर्य का कृपा-पात्र रहूँ ॥२७॥ मैं कश्यपरूप सूर्य के मन्त्रमय कवच से आच्छादित हूं। मैं तेज से और रक्षात्मक रश्मियों से रक्षित हूं। इसलिए मेरी हिंसा के लिए देवताओं और मनुष्यों द्वारा प्रयुक्त आयुध मेरे पास न आ सकें ॥२८॥ मैं सत्य से, सूर्यात्मक ब्रह्म से, ऋतुओं से और सब प्राचीन कालीन पदार्थों से रक्षित हूं, इसलिए नरक का कारण रूप पाप मेरे पास न आवे। मैं मन्त्राभिमन्त्रित जल से, जल में छिपे प्राणी के अदृश्य रहने के समान अदृश्य होता हूं। मैं पाप आदि से बचने को मन्त्रमय जल द्वारा अपने को रक्षित करता हूं ॥२९॥ अपने आश्रित के अग्निदेव रक्षक हैं, वे भय से मेरी रक्षा करें। मारक मृत्यु के पाशों से उदय होते हुए सूर्य मेरी रक्षा करें। उषा मृत्यु के पाशों को दूर करे। प्राण मुक्त आयु की कामना वाले में सचेष्ट रहें। इन्द्रियाँ भी चेष्टा करती रहें ॥३०॥

॥ इति सप्तदशं काण्डं समाप्तम् ॥

अष्टादश काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—यम, मंत्रोक्ताः; रुद्रः, सरस्वती, पितरः ॥ छन्दः – त्रिष्टुप्; पंक्तिः; जगती, उष्णिक, अनुष्टुप; बृहती;)

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥१॥
न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥ ३ ॥
न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥ ४ ॥
गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥ ६ ॥
को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥ ७ ॥
यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥ ८ ॥
न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥ ९ ॥

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि ॥ १० ॥

(यमी वाक्य) समान प्रसिद्धि वाले मित्र यम को सख्यभावानुकूल करती हूँ । समुद्र तटवर्ती द्वीप में गमन करते हुए यम, पुत्र को मुझमें स्थापित करें । हे यम ! तुम्हारी ख्याति सब लोकों में है तुम सदा तेज से दीप्त रहो॥१॥ (यम) मैं समान उदरोत्पन्न तेरा मित्र हूँ । परन्तु मैं भाई-बहिन के समागमात्मक मित्र भाव की इच्छा नहीं करता । क्योंकि , एक उदररूप वाली होकर भी पत्नीत्व की कामना करती है, ऐसे मित्र भाव को मैं स्वीकार नहीं करता । शत्रुओं को दबाने वाले, महाबली रुद्र के पुत्र मरुद्गण भी इसकी निन्दा करेंगे ॥२॥ (यमी) हे यम ! मरुद्गण मेरे निवेदित मार्ग की इच्छा करते हैं । अतः अपने मन को मेरी ओर लगाओ, फिर सन्तान को उत्पन्न करने वाले पति

बनते हुए भ्रातृभाव को छोड़कर मुझमें प्रविष्ट होओ ॥ ३ ॥ हे यमी ! असत्य बात को हम सत्य बोलने वाले कैसे कहें । जलधारक सूर्य भी अन्तरिक्ष में अपनी भार्या सहित स्थित हैं । अतः अभिन्न माता-पिता वाले हम दोनों उन्हीं के सामने तेरा इच्छित पूर्ण करने में समर्थ न होंगे । ४ । हे यम ! सन्तानोत्पादक देव ने ही हम दोनों को माता के उदर में ही दाम्पत्य बन्धन में बांध दिया है, उस देव के कर्मफल को निष्फल कौन कर सकता है ? त्वष्टा-देव के गर्भ में ही हमारे दम्पतिकारणरूप कर्म को आकाश और पृथिवी दोनों जानते हैं । इसलिए यह असत्य नहीं है ॥५॥ हे यमी ! सत्य के भार वहन के निमित्त अपने वाणी रूप वृषभ को कौन नियुक्त करता है ? कर्मवान्, तेजस्वी, क्रोध और लज्जा से हीन, अपने शब्दों से श्रोताओं के हृदय में बैठने वाला जो पुरुष सत्य वचनों की वृद्धि करता है वह उसके फल से दीर्घजीवी होता है ॥६॥ हे यम ! हमारे प्रथम दिन को कौन जान रहा है, कौन देख रहा है ? फिर कौन पुरुष इस बात को दूसरे से कह सकेगा ? दिन मित्र देवता का स्थान है, यह दोनों ही विशाल हैं । इसलिए मेरे अभिमत के प्रतिकूल मुझे क्लेश देने वाले तुम, अनेक कर्मों वाले मनुष्यों के सम्बन्ध में किस प्रकार कहते हो ? ॥७॥ मेरी इच्छा है कि पति को शरीर अर्पण करने वाली पत्नी के समान यम को अपना देह अर्पित करूँ और ये दोनों पहिये जैसे मार्ग में संश्लिष्ट होते हैं, उसी प्रकार मैं भी होऊँ ॥८॥ हे यमी ! देवदूत बराबर विचरण करते रहते हैं, वे सदा सतर्क रहते हैं इसलिए हे मेरी धर्म-मति को नष्ट करने की इच्छा वाली, तू मुझे छोड़कर अन्य किसी की पत्नी बन और शीघ्रता से जाकर उसके साथ रथ-चक्र के समान संश्लिष्ट हो ॥ ९ ॥ यम के निमित्त यजमान दिन रात्रि आहुति दें, सूर्य का प्रकाशक तेज नित्यप्रति इसके निमित्त उदय हो । आकाश पृथिवी जैसे परस्पर संश्लिष्ट हैं, वैसे ही मैं इसके भ्रातृत्व से पृथक् होती हुई उससे संश्लिष्ट होऊँ ॥ १० ॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ ११ ॥
किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।

कामभूता बह्व्ते तद् रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ॥ १२ ॥
न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा सं पपृच्याम् ।
अन्येन मत् प्रमुदःकल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥ १३ ॥
न वाउते तनूं तन्वा सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥ १४ ॥
बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परिष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ॥१५॥
अन्यमू षु यम्यन्य उ त्वां परिष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥१६॥
त्रीणि-च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ॥ १७ ॥
वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियां ऋतून् ॥१८॥
रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो विवोचति ॥१९॥
सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥ २० ॥

संभवतः आगे चलकर ऐसे ही दिन रात्रि आयें जब बहिन अपने अबन्धुत्व द्वारा भार्यात्व को पाने लगेंगी । पर अभी ऐसा नहीं होता, अतः हे यमी ! तू सेचन समर्थ अन्य पुरुष के लिये अपना हाथ बढ़ा और मुझे छोड़कर उसे ही पति बनाने की कामना कर॥११॥वह बन्धु कैसा, जिसके विद्यमान रहते भगिनी इच्छित कामना से विमुक्त रह जाय । वह कैसी भगिनी जिसके समक्ष बन्धु संतप्त हो । इसीलिये तुम मेरी इच्छानुसार आचरण करो॥१२॥हे यमी! मैं तेरी इस कामना को पूर्ण करने वाला नहीं हो सकता और तेरे देह से स्पर्श नहीं कर सकता । अब तू मुझे छोड़कर अन्य पुरुष से इस प्रकार का सम्बन्ध

स्थापित कर। मैं तेरे भार्यात्व की कामना नहीं करता ॥ १२। हे यमी ! तेरे शरीर का स्पर्श नहीं कर सकता। धर्म के ज्ञाता, बन्धु-भगिनी के ऐसे सम्बन्ध को पाप कहते हैं। मैं ऐसा करूँ तो यह धर्म मेरे हृदय, मन और प्राण का भी नाश कर देगा ॥१४॥ हे यम ! तेरी दुर्बलता पर मुझे दुःख है। तेरा मन मुझमें नहीं है, मैं तेरे हृदय को नहीं समझ सकी। जैसे लगाम के वश में पड़ा अश्व अन्यत्र नहीं जा सकता। वैसे ही तू किसी अन्य स्त्री से सम्बन्धित होगा ॥१५॥ हे यमी ! रस्सी जैसे अश्व से युक्त होती है, व्रतति जैसे वृक्ष को जकड़ती है, वैसे तू अन्य पुरुष से मिल। तुम दोनों परस्पर अनुकूल मन वाले होओ और फिर तू अत्यन्त कल्याण वाले सुख को प्राप्त हो ॥ १६ ॥ संसार को आच्छादन करने वाले जल आदि के आच्छादन का देवताओं ने यत्न किया। जल तत्व प्रिय दर्शन वाला और विश्व का द्रष्टा है। वायु तत्व भी दर्शनीय और विश्वद्रष्टा है, ओषधि तत्व भी ऐसा ही है। इन तीनों को देवताओं ने पृथिवी का भरण करने को प्रतिष्ठित किया ॥ १७ ॥ महान् अग्निदेव यजमान के लिये यज्ञ आदि द्वारा आकाश से जल-वृष्टि करते हैं। यह अपनी बुद्धि द्वारा सबको ऐसे ही जान लेते हैं, जैसे वरुण अपनी बुद्धि से सबको जानते हैं। वही अग्नि यज्ञ में पूजनीय देवताओं को पूजते हैं ॥१८॥ जलधारक सूर्य की स्वभूता वाणी और अन्तरिक्ष में विचरण-शील सरस्वती मेरे द्वारा अग्नि का स्तवन करें और मेरे स्तोत्ररूप नाद में मन की रक्षा करें। फिर देवमाता अदिति मुझे फल में स्थापित करें। बन्धु के समान हितकारी अग्नि मुझे उत्कृष्ट यजमान करें ॥ १९ ॥ अध्वर्युओं ने देवताओं का आह्वान करके अग्नि को देवताओं के लिये हवि-वहन के लिए प्रकट किया। तभी यह कल्याणमयी मंत्ररूप वाणी और सूर्य वाली उषा यज्ञादि की सिद्धि के लिये प्रकट होती है ॥ २० ॥

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥२१॥

सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥२२॥

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥ २३ ॥
यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् ॥ २४ ॥
श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥ २५ ॥
यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥२६॥
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ७ ॥
प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥ २८ ॥
द्यावा क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥ २९ ॥
देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ।३०॥

जब सोम के लाये जाने पर यज्ञ निष्पादक अग्नि का वरण किया जाता है तब सोम और अग्नि के सिद्ध होने पर अग्निष्टोम आदि कर्म भी सम्पूर्ण होते हैं ॥२१॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ को सुन्दरता से सम्पन्न करते हो। जैसे हरी घास आदि को खाने वाला पशु अपने पालक को सुन्दर दिखाई देता है, वैसे ही घृतादि से अपने को पुष्ट करने वाले यजमान के लिये तुम दर्शनीय होते हो। क्योंकि तुम स्तुत्य तुल्य होकर यजमान की प्रशंसा करते हुये हवि को देवताओं के पास पहुँचाते हो ॥ २२ ॥ हे अग्ने ! आकाश रूप पिता और पृथिवी रूप माता को यज्ञ के लिये प्रेरित करो। जैसे सूर्य अपने प्रकाश को प्रेरित करते हैं वैसे ही तुम अपने तेज को प्रेरित करो। यह

यजमान जिन देवताओं की कामना करता है, उनकी अग्नि स्वयं कामना करते हैं। वे इच्छित पदार्थ देने की बात कहते हुये यज्ञ के लिये यजमान के पास आते हैं॥ २३ ।। हे अग्ने ! जो यजमान तुम्हारी कृपा का अन्यों से वर्णन करता है, वह यजमान तुम्हारी कृपा से सर्वत्र प्रसिद्ध होता है। वह यजमान अन्न, अश्वादि से युक्त होता हुआ चिरकाल तक ऐश्वर्य में प्रतिष्ठित रहता है ॥ २४ ॥ हे अग्ने ! तुम इस देवस्थान यज्ञ गृह में हमारे आह्वान को सुनो। जलद्रावक रथ को उन देवताओं के निमित्त जोड़ो। देवताओं की पालक रूप आकाश पृथिवी को भी लाओ। यहाँ आने से कोई भी देवता न बचे ।२५। हे अग्ने ! तुम पूजनीय हो। जब स्तोत्रों और हवियों की देवताओं में संगति हो तब तुम स्तुति करने वालों को रत्न देने वाले होओ और बहुत सा धन प्रदान करने वाले होओ ॥ २६ ॥ उषाकाल के साथ ही अग्नि प्रकाशित होते हैं यह दिनों के साथ भी प्रकाशित रहते हैं यही अग्नि सूर्य होकर उषा को और किरणों को प्रकाशित करते हैं। यही सूर्यात्मक अग्नि आकाश पृथिवी को सब ओर से प्रकाशित करते हैं ॥ २८ ॥ यह अग्नि नित्य उषा काल में प्रकाशित होते और दिन के साथ भी प्रकाश युक्त रहते हैं। यही सूर्यात्मक अग्नि अनेक प्रकार से प्रवृत रश्मियों में भी प्रकाश भरते हैं। यह आकाश पृथिवी को भी प्रकाश से व्याप्त करते हैं ॥२८॥ आकाश पृथिवी मुख्य और सत्य वाणी हैं। जब अग्निदेव यजमान के पास यज्ञ, सम्पन्न करने के लिये बैठें तब वे आकाश पृथिवी स्तुति सुनने के योग्य हों ॥ २९ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रचण्ड ज्वालाओं से सम्पन्न हो। यज्ञ से पूज्य देवताओं को अपने वश में करते हुये, उनके पूजन की इच्छा करते हुये उन्हें हवि पहुँचाओ तुम धूम रूप ध्वजा वाले, समिधाओं से दीप्त होने वाले, देवाह्वाक तथा पूजा के पात्र हो। तुम हमारी हवियों को पहुँचाओ ॥ ३० ॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे।
अहा यद् देवा असुनीतिमायन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥३१॥
स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥ ३२ ॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे यदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ३३।
दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ३४ ॥
यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा । ३५ ।
यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥ ३६ ॥
सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ॥ ३७ ॥
शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।
मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ ३८ ॥
स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥ ३९ ॥
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ।' ४० ॥

आकाश पृथिवी के अधिष्ठात्री देवताओ ! जल वर्षा की वृद्धि के लिए तुम्हारा स्तवन करता हूँ । हे आकाश पृथिवी ! मेरी स्तुति सुनो और ऋत्विज जब अपने बल को यज्ञ कर्म में लगावें तब तुम जल प्रदान द्वारा हमारी वृद्धि करो ॥ ३१ ॥ अमृत के समान उपकार करने वाला जल जब किरणों से प्रकट होता और ओषधियाँ आकाश-पृथिवी में व्याप्त होती हैं और जब अग्नि दीप्तियाँ अन्तरिक्ष में क्षरणशील जल का दोहन करती हैं तब हे अग्ने ! तुम्हारे द्वारा प्रकट उस जल का सब अनुगमन करते हैं ॥ ३२ ॥ देवताओं में क्षात्र बल वाला यम हमारे हव्य का कुछ भाग ग्रहण करे । कहीं हमसे यम के प्रसन्न करने वाले कार्य का अति-

अमण हो गया हो तो यहाँ देवाह्वाक अग्नि विराजमान हैं वही हमारे अपराध को दूर करेंगे। हमारे पास स्तुति के समान हवि भी है, उससे अग्नि को सन्तुष्ट करके यम सम्बन्धी अपराध से मुक्त हो सकेंगे ॥ ३३ ॥ यहाँ यम का नाम लेना उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसकी भगिनी ने इसके भार्यात्व की कामना की थी। फिर भी जो इन यम की स्तुति करे, हे अग्ने! तुम इस निन्दा का विस्मरण कराते हुए उस स्तोता की रक्षा करो ॥ ३४ ॥ जिन अग्नि के यज्ञ निर्वाहक रूप से प्रतिष्ठित होने पर देवता प्रसन्न होते हैं और जिनके कारण मनुष्य सूर्य लोक में निवास करते हैं, जिन अग्नि के द्वारा ही देवताओं ने प्रकाशमान तेज को लोकत्रय में प्रतिष्ठित किया है तथा अन्धकार नाशक रश्मियों को जिनसे लेकर चन्द्रमा में स्थापित किया है। ऐसे तेजस्वी अग्नि की सूर्य और चन्द्रमा निरन्तर पूजा करते हैं ॥ ३५ ॥ वरुण के जिस स्थान में देवता घूमते हैं, उस स्थान को हम नहीं जानते। देवगण इस स्थान में वरुण से हमारे निर्दोष होने की बात कहें। सविता, अदिति, आकाश और मित्र देवता भी अग्नि की कृपा से हमको निर्दोष ही कहें ॥ ३६ ॥ हम सखा रूप इन्द्र के लिए दृढ़ कर्म करने की इच्छा करते हैं। उन शत्रु का मर्दन करने वाले, परम नेता, वज्रधारी इन्द्र का मैं स्तवन करता हूँ ॥ ३७ ॥ हे वृत्रनाशक इन्द्र! तुम वृत्र हननकर्ता के रूप में जैसे प्रख्यात हो वैसे ही अपने बल से भी प्रख्यात हो। इसलिये अपने धन को मुझे दो ॥ ३८ ॥ मेंढक वर्षा ऋतु में जैसे पृथिवी को लाँघ जाता है वैसे ही तुम भी पृथिवी को लाँघकर ऊपर जाते हो। अग्नि की कृपा से यह वायु हमको सुखी करने वाले होकर रहें। मित्र देवता और वरुण देवता भी इस कर्म में लगकर, जैसे अग्नि तृणादि को भस्म करता है वैसे ही हमारे शोक को नष्ट करें ॥ ३९ ॥ हे स्तोता! जिनका श्मशान घर है, पिशाचादि के स्वामी हैं, जो प्रचण्ड पराक्रमी, भय उत्पन्न करने वाले और पास आकर हिंसित करने वाले हैं, उन रुद्र देवता का स्तवन कर। हे दुख नाशक इन्द्र! हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हमें सुख प्रदान करो। तुम्हारी सेना हमसे अन्यत्र तुम्हारे प्रति द्वेष रखने वाले पर ही आक्रमण करे ॥ ४० ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४१ ॥
सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥ ४२ ॥
सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४३ ॥
उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४४ ॥
आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अविस्ति नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ ४५ ॥
इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ॥ ४६ ॥
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४७ ॥
स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ ४८ ॥
परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ ४९ ॥
यमो नो गातुं प्रथमो वि वेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥ ५० ॥

मृतक संस्कार करने वाले अग्नि की इच्छा करते हुए पुरुष सरस्वती का आह्वान करते हैं और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों में भी सरस्वती को आहूत करते हैं। वह देवी हविदाता यजमान को इच्छित पदार्थ दे ॥ ४१ ॥ वेदी के दक्षिण और प्रतिष्ठित पितर भी सरस्वती का आह्वान करते हैं। हे पितरो !

तुम इस यज्ञ में विराजमान होते हुए प्रसन्न होओ। तुम सरस्वती को तृप्त करो और हवियों को प्राप्त कर सन्तुष्ट होओ। हे सरस्वति ! तुम पितरों द्वारा आहूत हुई रोग-रहित इच्छित अन्न को हममें स्थापित करो ॥ ४२ ॥ हे सरस्वते ! तुम पितरों सहित अपने को तृप्त करती हुई एक ही रथ पर आती हो। अनेक व्यक्तियों और प्रजाओं को तृप्त करने वाले अन्न भाग और धन के बल को मुझ यजमान को भी प्रदान करो ॥ ४३ ॥ अवस्था व गुणों में श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट और मध्यम पितर भी उठें। यह पितर सोम भक्षक हैं। यह प्राण से उपलक्षित शरीर को प्राप्त होने वाले, अहिंसक और यथार्थ के ज्ञाता हैं। आह्वान कालों में यह सब पितर हमारे रक्षक हों ॥ ४४ ॥ मैं कल्याण सम्पन्न पितरों के समक्ष उपस्थित होता हूं। यज्ञ रक्षक अग्नि के समक्ष उपस्थित होता हूं। इसलिए बर्हिषद् नामक जो पितर स्वधा के साथ सोम-पान करते हैं, उन्हें हे अग्ने ! मेरे समीप बुलाओ ॥ ४५ ॥ जो पहले पितर लोक को प्राप्त हुए, जो अब गए हैं, जो पृथिवी लोक में ही हैं, जो विभिन्न दिशाओं में हैं उन सब पितरों को नमस्कार है ॥ ४६ ॥ मातली नामक पितृ देवता यजमान प्रदत्त हवि द्वारा कव्य नामक पितरों के साथ बढ़ते हैं, यम नामक पितृनेता यजमान प्रदत्त हवि से अङ्गिरा नामक पितरों सहित बढ़ते हैं और बृहस्पति नामक पितृ-नेता ऋक्व नामक पितरों सहित बढ़ते हैं। इनमें मातली आदि देवता जिन पितरों को यज्ञ में प्रवृद्ध करते हैं और जो क्रव्यादि को आहुति से प्रवृद्ध करते हैं, वे पितर आह्वान काल में हमारे रक्षक हों ॥ ४७ ॥ यह सुसिद्ध सोम स्वाद चखने के योग्य है। यह मधुर है इसलिए सुस्वादु है, यह तीव्र होने से मद में भरने वाला है, यह रसवान है अतः इस पीने वाले इन्द्र का संग्राम में कोई भी असुर सामना नहीं कर सकता ॥ ४८ ॥ पृथिवी को लाँघ कर दूर देश में गमन करने वाले, अनेक पितरों के मार्ग पर चलने वाले विवस्वान् के पुत्र, मृतकों के धम रूप यमराज को पूजते हैं ॥ ४९ ॥ हमारे मृत संबंधियों के मार्ग को यम जानते हैं। देवता और मनुष्य सभी को इस मार्ग से जाना होता है। आत्मसाक्षात्कार से वियुक्त पुरुषों को कर्म-फल रूप पितृलोक अवश्य प्राप्त होता है। जिन मार्गों

से हमारे पूर्व पुरुषा गए थे और जिस मार्ग से वे अपने कर्मों के अनुसार इस पृथिवी पर आते है. उन सभी मार्गों को यमराज जानते हैं ।। ५० ॥

बर्हिषदः पितरः ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शतमेनाधा नः श योररपो दधात ॥ ५१ ॥
आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येद नो हविरभि गृणन्तु विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम ॥ ५२ ॥
त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ ५३ ॥
प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यम पश्यासि वरुणं च देवम् ॥५४॥
अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एत पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥ ५५ ॥
उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नु शत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ५६ ॥
द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि ।
द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन हविषे अत्तवे ॥ ५७ ॥
अंगिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वय सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५८ ॥
अंगिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥ ५९ ॥
इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ॥६०॥
इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥ ६१ ॥

यज्ञ में आगत बर्हिषद पितरो ! हमारी रक्षा के लिए हमारे सामने आओ। यह हवियाँ तुम्हारे लिए हैं इन्हें सेवन करो। तुम अपने कल्याण-कारी रक्षा-साधनों सहित आओ और रोग-शमनात्मक तथा पाप नाशक बल को हममें स्थापित करो ॥ ५१ ॥ हे पितरो ! जानु सकोड़ कर वेदी के दक्षिण ओर बैठे हुए तुम हमारी हवि की प्रशंसा करो। हमारे छोटे या बड़े किसी भी अपराध के कारण हमें हिंसित न करना, क्योंकि मनुष्य-स्वभाव वश हमसे अपराध होना असम्भव नहीं है ॥ ५२ ॥ सिंचित वीर्य को पुरुषादि की आकृति में बदलने वाले त्वष्टा ने अपनी पुत्री सरण्यु का विवाह किया, जिसे देखने को अखिल विश्व एकत्रित हुआ। यम की माता सरण्यु जब सूर्य द्वारा विवाही गई तब सूर्य की परम प्रभाव वाली पत्नी उनके पास से अदृश्य हो गई ॥ ५३ ॥ हे प्रेत ! जिस अर्थी को मनुष्य उठाते हैं, उससे यम मार्ग को गमन कर। इसी मार्ग से तेरे पूर्व पुरुषा गए हैं। वहाँ देव-ताओं में क्षात्र धर्म वाले वरुण और यम दोनों हैं। वे हमारे प्रदत्त हवियों से प्रसन्न हो रहे हैं ! उस यम लोक में तू यम और वरुण को देखेगा ॥ ५४ ॥ हे राक्षसो ! इस स्थान से भागो। तुम चाहे पहले से यहाँ रहते हो या नये आकर रहने लगे हो, यहाँ से चले जाओ, क्योंकि यह स्थान इस प्रेत को दिन-रात और जल के सहित रहने को यम ने दिया है ॥ ५५ ॥ हे अग्ने ! इस पितृ यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए हम तुम्हारी कामना करते और आह्वान करते हैं। तुम भले प्रकार प्रदीप्त होकर स्वधा की कामना वाले पितरों के लिए हवि-भक्षणार्थ लाओ ॥ ५६ ॥ हे अग्ने ! हम तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम्हारी कृपा से हम यशस्वी हो गए हैं। हम तुम्हें प्रदीप्त करते हैं। हवि स्वीकार कर उसे भक्षण करने के लिए पितरों को यहाँ लाओ ॥ ५७ ॥ प्राचीन ऋषि अङ्गिरा हमारे पितर हैं, नवीन स्तोत्र वाले अथर्वा और भृगु हमारे पितर हैं, यह सब सोम पीने वाले हैं। इनकी कृपा बुद्धि में हम रहें। यह हमसे प्रसन्न रहें ॥ ५८ ॥ हे यम ! अङ्गिरा नामक यज्ञीय पितरों सहित यहाँ आकर तृप्त होओ। मैं तुमको ही नहीं, तुम्हारे पिता सूर्य को भी बुलाता हूँ। वह जिससे इस कुश के आसन पर बैठकर हवि

ग्रहण करें उस प्रकार उन्हें आहूत करता हूँ ॥ ५६ । हे यम ! अङ्गिरा नामक पितरों से समान मति वाले होकर इस कुश पर बैठो । महर्षियों के मन्त्र तुम्हें बुलाने में समर्थ हों । तुम हमारी हवि पाकर प्रसन्न होओ ॥ ६० ॥ दाह-संस्कार करने वाले पुरुषों ने मृतक को पृथिवी पर से उठाकर अर्थी पर रखा और आकाश के उपभोग्य स्थानों पर चढ़ा दिया । पृथिवी को जीतने वाले आंगिरस जिस मार्ग से गए, उसी मार्ग से इसे भी आकाश में पहुँचा दिया ॥ ६१ ॥

२ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—यमः, मन्त्रोक्ताः, जातवेदाः, पितरः । छन्द—अनुष्टुप्; जगती; त्रिष्टुप्; गायत्री)

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।
यम ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः ॥ १ ॥

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ २ ॥

यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन ।
स नो जीवेष्वा यमेद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ ३ ॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेममेनं प्र हिणुतात् पितृँरुप ॥ ४ ॥

यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ॥ ५ ॥

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ॥ ६ ॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥ ७ ॥

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ८ ॥
यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥९॥
अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान् ।
आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ १० ॥

सोमयाग में यजमान यम के लिये सोम सिद्ध करते हैं । घृतादि हवि उत्पवन आदि संस्कार द्वारा यम को दी जाती है । स्तोत्र शस्त्र आदि से सुशोभित हवि को दूत के समान अग्नि वहन करते हैं वह ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ यम को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ हे यजमानो ! यम के लिए सोम घृतादि की आहुति दो । पूर्व पुरुषा मन्त्रद्रष्टा अङ्गिरा आदि ऋषियों को नमस्कार है ॥ २ ॥ हे यजमानो ! घृत सम्पन्न क्षीर रूप हवि को यम के लिए अर्पित करो । वे हवि पाकर हमको जीवित मनुष्यों में रखेंगे और सौ वर्ष की आयु देंगे ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! इस प्रेत को मत भस्म करो इसकी त्वचा को अन्यत्र मत फेंको और शोक भी मत करो ! जब तुम इस शरीर को पका लो तब पितरों के पास प्रेषित करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! जब तुम इस हवि रूप शरीर को पकालो तब इसे रक्षा के लिए पितरों को दो । जब यह असुनीति देवता को प्राप्त हो तब यह देवताओं को वश करने मे समर्थ हो ॥ ५ ॥ तीन कद्रुक यज्ञों को करते समय यम के लिये सोम निष्पन्न करते हैं । आकाश, पृथिवी, दिन, रात्रि, जल, औषधि यह छओं उर्वियाँ यम के लिए ही प्रवृत्त होती हैं । सब छन्द भी यम में स्थित होते हैं ॥ ६ ॥ हे मृतक ! तू नेत्र द्वार से सूर्य को प्राप्त हो, सूत्रात्मा रूप से वायु को प्राप्त हो, अन्य इन्द्रियों से आकाश पृथिवी को प्राप्त हो तथा अन्तरिक्ष व जल को प्राप्त हो । इन स्थानों में तेरी इच्छा हो तो जा अथवा औषधादि में प्रविष्ट हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! अपने भाग इस "अज" को तेज से संतप्त करो । उसे तुम्हारी दीप्ति और ज्वाला तपावें । तुम्हारे जो विराट् स्वराट् आदि शरीर

हैं उनके द्वारा इस प्रेत को पुण्यात्माओं का लोक प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी वेगवती और शोकप्रद ज्वालाओं से आकाश और अन्तरिक्ष व्याप्त है। वे ज्वालाऐं इस 'अज' को प्राप्त हों। अन्य सुखकारी लपटों से तुम इस प्रेत को हवि के समान ही पकाओ ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! हवि रूप से जो प्रेत तुम्हें दिया गया है और हमारे प्रदत्त स्वधा सम्पन्न होकर तुममें घूम रहा है उसे तुम पितृलोक के लिए छोड़ो और उसका पुत्र आयु से सम्पन्न होता हुआ घर को लौटे। यह प्रेत सुन्दर वर्ण वाला और पितृलोक में निवास योग्य देह वाला हो ॥ १० ॥

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अधा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥ ११ ॥
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा ।
ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥ १२ ॥
उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥ १३ ॥
सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १४ ॥
ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १५ ॥
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १६ ॥
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १७ ॥
सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १८ ॥
स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी ।

यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥ १६ ॥
असबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।
स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः ॥ २० ॥

हे प्रेत ! तू पितृलोक को जाने वाला है। सरमा नामक कुतिया के श्याम शबल नामक दोनों पुत्रों के साथ प्रसन्न चित्त से रहने वाले हव्य-सम्पन्न पितरों के पास पहुँच ॥ ११ ॥ हे पितरों के प्रभो ! पितर-मार्ग में स्थित चार नेत्र वाले जो श्वान यमपुर की रक्षा करने के लिए तुम्हारे द्वारा नियुक्त हैं उन्हें रक्षार्थ इस प्रेत को सौंपो और तुम्हारे लोक में रहने को आये हुए इसे बाधा-हीन स्थान दो ॥ १२ ॥ बड़ी-बड़ी नाक वाले, प्राणियों के प्राणों से तृप्ति को प्राप्त, प्राणों का अपहरण करने वाले, महाबली यमदूत सर्वत्र घूमते हैं । वे दोनों दूत हमको सूर्य दर्शन के निमित्त पंचेन्द्रिय युक्त प्राण को हमारे शरीर में पुनः स्थापित करें ॥ १३ ॥ एक पितरों को, नदी रूप में सोम प्रवाहित है, दूसरे पितर घृत-उपभोगी हैं, ब्रह्मयाग में अथर्व के मन्त्रों का पाठ करने वालों के लिए मधु की नदी प्रवाहित है। हे मृतावस्था प्राप्त प्रेत ! तू उन सब को प्राप्त हो ॥ १४ ॥ जो पूर्व पुरुष सत्ययुक्त थे, सत्य से उत्पन्न होकर सत्य की ही वृद्धि करते हैं, उन तपोधन ऋषियों को हे यम से नियमित पुरुष ! तू प्राप्त हो ॥ १५ ॥ तप के द्वारा, यज्ञादि साधनों द्वारा, दुष्कर कर्म और उपासना द्वारा महातप करते हुए जो पुरुष पुण्य लोकों को पाते हैं। हे पुरुष ! तू भी उन तपस्वियों के लोकों को जा ॥ १६ ॥ जो वीर युद्धों में शत्रुओं पर प्रहार करते हैं, जो रण क्षेत्र में देह त्याग करते हैं, जो अन्न दक्षिणा वाले यज्ञों को सम्पन्न करते हैं, हे प्रेत ! तू उनसे मिलने वाले सब फलों को प्राप्त हो ॥ १७ ॥ जो अनन्तद्रष्टा ऋषि सूर्य की रक्षा करते हैं, हे पुरुष ! तू यम को नीयमान होकर भी उन तपस्वियों के कर्म-फल को प्राप्त हो ॥ १८ ॥ हे वेदी रूपिणी पृथिवी ! तू मुमूर्ष पुरुष के लिए कण्टकहीन बन और इसे सब प्रकार सुख दे ॥ १६ ॥ हे मुमूर्षो ! तू यज्ञादि के वेदी रूप विस्तृत स्थान में प्रतिष्ठित हो । पहिले तूने जिन सुकर्मयुक्त

हवियों को दिया है, वह तुझे मधु आदि रसों के प्रवाह रूप में प्राप्त हों ॥२०॥

ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उप जुजुषाण एहि।
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः ॥२१॥

उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः ।
अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥ २२ ॥

उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितृँरुप द्रव ॥ २३ ॥

मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते ।
मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥ २४ ॥

मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥ २५ ॥

यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः।
तत् ते संगत्य पितर सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु ॥ २६ ॥

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार ॥ २७ ॥

ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ॥ २८ ॥

सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥२९॥

यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम्।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः॥ ३० ॥

हे प्रेत पुरुष ! अपने मन के द्वारा तेरे मन को मैं इस लोक में आहूत करता हूं। जिन घरों में तेरे लिए और्ध्वदेहिक कर्म किया जाता है, तू हमारे उन घरों में आ और संस्कार के पश्चात् पिता, पितामह, प्रपितामह आदि

के साथ सपिण्डीकरण में मिल । यम के पास पहुँचा हुआ तू पितृलोक में जाकर मार्ग श्रम को दूर करने वाले सुखकर वायु को प्राप्त हो ॥ २१ ॥ हे प्रेत ! तुझे मरुद्गण व्योम में धारण करें, वायु ऊर्ध्व लोक में पहुँचावें, जल-धारक और वर्षक मेघ समीपस्थ अज सहित तुझे वृष्टि-जल से सींचे ॥ २२ ॥ हे प्रेत ! प्राणन, अपानन व्यापार के लिए मैं तेरी आयु का आह्वान करता हूँ । तेरा मन संस्कार से उत्पन्न नवीन शरीर को प्राप्त हो और फिर तू पितरों के पास पहुँच ॥ २३ ॥ हे प्रेत ! तुझे तेरे मन और इन्द्रिय न छोड़ें और तेरे प्राण के किसी अंश का क्षय न हो । तेरे देह के अङ्गों में कोई विकृति न हो । रुधिर, रस आदि भी पूर्ण मात्रा मे रहें । तेरा कोई भी अङ्ग तुझसे पृथक् न हो ॥ २४ । हे प्रेत ! जिस वृक्ष के नीचे बैठे वह तुझे व्यथित न करे । जिस पृथिवी का आश्रय ले, वह तुझे पीड़ित न करे । तू यम के प्रजा रूप पितरों मे स्थान पाकर बढ़ ॥२५॥ हे प्रेत ! तेरा जो अङ्ग शरीर से पृथक् हो गया था, सात प्राण फिर आवृत न होने के लिए निकल गए थे, उन सबको, एक स्थान में अवस्थित पितर एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रविष्ट करें ॥ २६ ॥ हे जीवित बन्धुओ ! इस प्रेत को घर से ले जाओ । इसे उठाकर ग्राम से बाहर ले जाओ, क्योंकि यम के दूत रूप मृत्यु ने इसके प्राणों को पितर रूप में प्रविष्ट करने को ले लिया है ॥ २७ ॥ जो राक्षसों के समान पिता, पितामह आदि पितरों में मिल बैठते हैं और माया से हवि भक्षण करते हैं तथा पिण्डदाह करने वाले पुत्र, पौत्रों को हिंसित करते हैं, उन मायावी राक्षसों को पितृयाग से अग्निदेव बाहर निकाल दें ॥ २८ ॥ हमारे गोत्र में उत्पन्न पिता, पितामह आदि सब पितर भले प्रकार यज्ञ में स्थित हों और हमें सुखी करें. हमारी आयु वृद्धि करें । हम भी आयु पाते ही हवियों से पितरों को पूजते हुए चिरकाल तक जीवित रहें ॥२९॥ हे प्रेत ! तेरे निमित्त गोदान करता हूँ । तेरे लिए जिस दूध में बने भात को देता हूँ उसके द्वारा तू यम-लोक में अपने जीवन को पुष्ट करने वाला हो ॥ ३० ॥

अश्वावतीं प्र तर या सुशेवाक्षीकं वा प्रतरं नवीयः ।
यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद् विदत भागधेयम् ॥ ३१ ॥

यमः परोऽवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किं चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वान् नन्वाततान ॥ ३२ ॥
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥ ३३ ॥
ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ३४ ॥
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥३५॥
शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं तपः ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥ ३६ ॥
ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह ।
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥ ३७ ॥
इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३८ ॥
प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३९ ॥
अपेमां मात्रा मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४० ॥

हे प्रेत ! मैं नवीन यन-मार्ग में सीह्र आदि दुष्ट जन्तुओं से बचता हुआ पार होऊं तू हमें अश्व वती नदी के पार उतार । यह नदी हमको सुख प्रदायिनी हो । जिसने तेरा वध किया है वह वध योग्य होता हुआ उपभोग्य पदार्थों को न पा सके ॥ ३१ । सूर्य के पुत्र यम अपने पिता से भी अधिक तेजस्वी हैं । मैं किसी भी प्राणी को यम से अधिक नहीं पाता । मेरा यज्ञ उन उत्कृष्ट यम में ही व्याप्त हो रहा है । यज्ञ की सिद्धि के निमित्त ही सूर्य ने भू-खण्डों को विस्तृत किया है ॥ ३२ ॥ मरणधर्म वाले मनुष्यों से देव-

तात्रों ने अपने अविनाशी रूपों को अदृश्य कर लिया। सूर्य की समान वर्ण वाली अन्य स्त्री बनाकर दी। सरण्यु ने घोड़ी का रूप धारण कर अश्विनी-कुमारों का पालन किया। त्वष्टा की पुत्री सरण्यु ने सूर्य का घर छोड़ते समय यमयमी के युग्म को घर पर ही छोड़ा था ॥ ३३ ॥ जो पितर भूमि में गाड़े जाकर, जो काष्ठ के समान त्यागे जाकर और जो अग्नि-दाह संस्कार से ऊर्ध्व लोक-पितृलोक को प्राप्त हुए हैं। ऐसे हे पितरो ! हवि भक्षणार्थ यहाँ आओ ॥ ३४ ॥ जो पितर अग्नि से संस्कृत हुए, जो गाड़ने आदि से संस्कृत हुए और पिण्ड, पितृयाग आदि से तृप्त हुए आकाश के मध्य में रहते हैं। हे अग्ने ! तुम उन्हें भले प्रकार जानते हो। वे अपनी प्रजाओं द्वारा किये जाने वाले पितृ याग आदि का सेवन करें ॥ ३५ ॥ हे अग्ने ! इस प्रेत शरीर को अधिक मत जलाओ। जिस प्रकार इसे सुख मिले, वह करो। तुम्हारी शोषक ज्वालाऐं जङ्गल में जाँय और रसहारक तेज पृथिवी में रहे। तुम हमारे शरीरों को भस्म मत करो ॥ ३६ ॥ (यम वाक्य) यह आगत पुरुष मेरा हो तो मैं इसे स्थान दूँ। क्योंकि अब यह मेरे पास आया है अतः यह मेरा स्तवन करता रहे तो यहाँ रह सकता है ॥ ३७ ॥ हम इस श्मशान को नापते हैं, क्योंकि ब्रह्मा ने हमें सौ वर्ष की आयु दी है, इसलिए बीच में ही हमें श्मशान कर्म दुबारा प्राप्त न हो ॥ ३८ ॥ हम इस श्मशान को अच्छे प्रकार नापते हैं जिससे हमें सौ वर्ष से पहिले बीच में ही श्मशान कर्म प्राप्त न हो ॥ ३९ ॥ हम इस श्मसान के नाप के दोषों को हटाते हुए नापते हैं जिससे हमें सौ वर्ष से पहले बीच में ही दूसरा मृतक कर्म प्राप्त न हो ॥ ४० ॥

वीमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४१ ॥
निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४२ ॥
उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४३ ॥

समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४४ ॥
अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम् ।
यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुराः ॥ ४५ ॥
प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ॥ ४६ ॥
ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः ।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥ ४७ ॥
उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥ ४९ ॥
इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यामि सूर्यम् ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्ये नं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥

हम इस श्मशान भूमि को विशिष्ट प्रकार से नापते हैं जिससे हमें सौ वर्ष से पहले बीच में ही दूसरा श्मशान कर्म प्राप्त न हो ॥ ४१ ॥ शोधों से शून्य करते हुये हम इस श्मसान को नापते हैं जिससे हमें सो वर्ष से पहले बीच में ही दूसरा श्मसान कर्म प्राप्त न हो ॥ ४२ ॥ उत्कृष्ट साधन वाले नाप से इस श्मशान को हम नापते हैं जिससे हमें सो वर्ष से पहले बीच में ही दूसरा श्मसान कर्म न मिले ॥ ४३ ॥ इस श्मसान भूमि को हम अच्छे प्रकार नापते हैं जिससे हमें सौ वर्ष से पहले, बीच में ही दूसरा श्मसान कर्म न मिले ॥ ४४ ॥ मैंने श्मसान भूमि को नाप लिया, उसी नाप के द्वारा इस प्रेत को स्वर्ग भेज चुका हूं। उस कर्म से ही मैं सो वर्ष की आयु प्राप्त करूं और सो वर्ष से पहले बीच में ही अन्य श्मसान कर्म प्राप्त न हो ॥ ४५ ॥ प्राण, अपान, व्यान, आयु, चक्षु सब आदित्य का दर्शन करने वाले हों। हे पुरुष ! तू भी यमराज के प्रत्यक्ष मार्ग द्वारा पितरों को प्राप्त हो ॥ ४६ ॥ जो पितर संतान रहित होने पर भी पापों को छोड़ते हुये परलोक में गये, वे

अन्तरिक्ष को लाँघ कर स्वर्ग के ऊर्ध्व भाग में रहते हुये पुण्य का फल प्राप्त करते हैं ॥ ४७ ॥ नीचे की ओर द्युलोक उदन्वती, द्वितीय भाग पीलुमती है, तृतीय भाग प्रद्यौ है, उसी तीसरे भाग में पितर निवास करते हैं ॥ ४८ ॥ हमारे पिता के जन्मदाता पितर, पितामह के जन्मदाता पितर और वे पितर जो विशाल अन्तरिक्ष में प्रविष्ट हुये हैं, जो पितर स्वर्ग या पृथ्वी पर रहते हैं, इन सब लोकों में वास करने वाले पितरों का नमस्कारों द्वारा हम पूजन करते हैं ॥ ४९ ॥ हे मृतक ! हम श्राद्धादि में जो कुछ देते हैं, वही तेरा जीवन है । अन्य कोई साधन जीवन का नहीं है । तू इस श्मशान को प्राप्त हुआ सूर्य के दर्शन करता है । हे पृथिवी ! जैसे माता अपने पुत्र को आँचल से ढकती है वैसे ही तुम इस मृतक को अपने तेज से ढक लो ॥ ५० ॥

इदमिद् वा उ नापरं जरस्वन्यदितोऽपरम् ।
जाया पतिमिव वाससाभ्ये नं भूम ऊर्णुहि ॥ ५१ ॥
अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥ ५२ ॥
अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥५३॥
पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥ ५४ ॥
आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ ५५ ॥
इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ॥ ५६ ॥
एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा ।
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ॥ ५७ ॥

अग्नेर्वर्मं परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै ॥ ५८ ॥
दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥ ५९ ॥
धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ॥ ६० ॥

जीर्ण होते हुए जो भोजन इसने किया था उससे अन्यथा कुछ भी भोक्तव्य नहीं है इसके लिये इस श्मसान के सिवाय अन्य कोई स्थान भी नहीं है। हे भूमे! इस श्मशान को प्राप्त हुये मृतक को, पत्नी जैसे वस्त्र से पति को ढकती है, वैसे तुम ढको। ५१ ॥ हे मृतक! सब की मङ्गलमयी माता पृथिवी के वस्त्र से मैं तुझे ढकता हूँ। जीवित अवस्था में जो दान के लिए सुन्दर वस्तु प्राणीके पास होती है वह मुझ नमस्कार करने वाले में हो और स्वधाकार युक्त जो अन्न पितरों मे होता है, तुझ में हो ॥ ५२ ॥ हे अग्ने! हे सोम! तुम पुण्य लोक के मार्ग को बनाते हो। तुमने सुख देने वाले स्वर्ग लोक की रचना की है। जो लोक सूर्य को अपने में रखता है, इस प्रेत को सरल मार्गों द्वारा उस लोक को प्राप्त कराओ ॥ ५३ ॥ हे प्रेत! पशुओं को हिंसित न करने वाले पशुपालक पूषा तुझे इस स्थान से ले जाँय। वह प्राणियों की रक्षा करने वाले तुझे पितरों के अर्पण करें। अग्नि देव तुझे ऐश्वर्यवान देवताओं को सौंपें ॥ ५४ ॥ जीवन का अभिमानी देवता आयु तेरा रक्षक हो। पूषा तेरे पूर्व की ओर जाने वाले मार्ग में रक्षक हों। हे प्रेत! पुण्य कर्माओं के निवास रूप स्वर्ग के नाक पृष्ठ में तुझे सविता प्रतिष्ठित करें ॥ ५५ ॥ हे मृतक! इन भार ढोने वाले बैलों को मैं तेरे छोड़े हुये प्राणों को वहन करने के लिये जोड़ता हूँ। इस बैल-युक्त गाड़ी द्वारा तू यम गृह को प्राप्त हो ॥ ५६ ॥ अपने पहिने हुये मुख्य वस्त्र को त्याग। जिन इच्छा पूर्तियों में तूने बांधवों को धन दिया था उस इष्ट कर्म के फल रूप वापी, कूप, तड़ाग आदि को प्राप्त हो ॥ ५७ ॥ हे प्रेत! इन्द्रिय सम्बन्धी अवयवों से अग्नि के दाह निवारक कवच को पहिन।

हे प्रेत ! स्थूलमेदमय हो, जिससे यह अग्नि तुझे अधिक भस्म करने की इच्छा करता हुआ इधर-उधर न गिरावे ॥ ५८ ॥ मृतक ब्राह्मण के हाथ से बाँस के दण्ड को ग्रहण करता हुआ मैं कानों के तेज और उससे प्राप्य बल से युक्त रहूँ । हे प्रेत ! तू इस चिता में ही रह और हम इस पृथिवी पर सुख से रहते हुये अपने शत्रुओं और उनके उपद्रवों को दबावें ॥ ५९ ॥ मृतक क्षत्रिय के हाथ से धनुष को ग्रहण करता हुआ क्षात्र तेज और बल से युक्त होऊँ । हे धनुष ! बहुत से धन को हमें देने के लिये लाता हुआ इस जीवित लोक में ही हमारे सामने आ ॥ ६० ॥

३ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—यमः, मंत्रोक्ताः, अग्निः, भूमिः, इन्दुः, आपः । छन्दः—त्रिष्टुप्; पंक्ति; गायत्री, अनुष्टुप्, जगती; शक्करी, बृहती)

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥ १ ॥
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥ २ ॥
अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥ ३ ॥
प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥ ४ ॥
उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् । अग्ने पित्तमपामसि ॥ ५ ॥
यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥ ६ ॥
इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्वा चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥ ७ ॥
उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥ ८ ॥

प्र च्यवस्व तन्वं सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥ ९ ॥
वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुसे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥ १० ॥

यह स्त्री, धर्म का पालन करने के लिए तेरे दान आदि के फल की इच्छा करती हुई तेरे समीप आती है। इस प्रकार अनुमरण करने वाली इस स्त्री के लिये दूसरे जन्म में भी तू प्रजावती करना ॥ १ ॥ हे नारी ! तू इस प्राणहीन पति के पास बैठी है, अब तू इसके पास से उठ। तू अपने पति की उत्पत्ति रूप पुत्र पौत्रादि को प्राप्त हो गई है ॥ २ ॥ तरुण अवस्था वाली जीवित गौ को मृतक के पास ले जाई जाती हुई देखता हूँ। यह गौ अज्ञान से ढकी है इसलिए मैं इसे शव के पास से हटाकर अपने सामने लाता हूँ ॥ ३ ॥ हे गौ ! तू पृथिवीलोक को भले प्रकार जानती हुई, यज्ञ मार्ग को देखती हुई, क्षीर दधि आदि से युक्त होकर आ। तू अपने इस गोरति स्वामी का सेवन कर और इस मृतक को स्वर्ग प्राप्त करा ॥ ४ ॥ सिवार और बेंत में जल का सारभूत एवं रक्षक अंश है। हे अग्ने ! तू भी जल का पित्त रूप है, इसलिये मैं तुझे बेंत की शाखा, नदी के फेन और वृतद्दूर्वा आदि से शांत करता हूं ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! जिस पुरुष को तुमने भस्म किया है, उसे सुखी करो। इस दाह-स्थान पर क्यम्बू नामक औषधि तथा वृहद्दूर्वा यह उगें ॥ ६ ॥ हे प्रेत ! यह गार्हपत्य अग्नि तेरे परलोक पहुंचाने वाली ज्योति है। अन्वाहार्य पचन दूसरी और आहवनीय नामक तीसरी ज्योति है। तू आहवनीय से सुसंगत हो। अग्नि संवेशन से संस्कृत देव शरीर को प्राप्त होकर बढ़, फिर इन्द्रादि देवताओं का प्रियपात्र हो ॥ ८० ॥ हे प्रेत ! तू इस स्थान से उठ और चल। शीघ्रता से चलता हुआ अन्तरिक्ष में अपना घर बना और पितरों से मिलकर सोम पीता हुआ हर्षित हो ॥ ८ ॥ हे प्रेत ! तू अपने शरीर के सब अङ्गों को एकत्र कर। तेरा कोई अङ्ग यहाँ छूट न जाय। तेरा मन जिस स्वर्गादि स्थान में रमा हो, वहाँ प्रवेश कर।

तू जिस भूमि में प्रीति रखता है, उसी भूमि को प्राप्त हो ॥ ९ ॥ सोम पीने के योग्य पितर मुझे तेजस्वी बनावें। विश्वेदेवा मुझे मधुर घृत से युक्त करें और दीर्घकाल तक देखता रहूँ इसलिये रोगों से मुक्त रखते हुए मुझे प्रवृद्ध करें । १० ॥

वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्यनक्त्वासन् ।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु ॥११॥

मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु ।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ॥१२॥

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥१३॥

परा यात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः ।
दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥ १४ ॥

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥ १५ ॥

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव ।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुशंसासः पितरो मृडता नः ॥ १६ ॥

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥ १७ ॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते ॥ १८ ॥

यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ॥ १९ ॥

ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः ।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥२०॥

अग्निदेव मुझे तेजयुक्त करें विष्णु मेरे मुख को मेधामय करें, विश्वेदेवा मुझे सुखदायक धन में स्थापित करें और जल अपने शुद्ध साधन वायु के अंशों से मुझे पवित्र करें ॥ ११ ॥ दिन के अभिमानी देव मित्र और राज्याभिमानी वरुण मुझे वस्त्र आदि से युक्त रखें । आदित्य हमारी वृद्धि करते हुये हमारे शत्रुओं को संतप्त करें। इन्द्र मुझे भुजबल दें और सविता दीर्घायु प्रदान करें ॥ १२ ॥ मरणधर्मी मनुष्यों में उत्पन्न राजा यम पहिले मृत्यु को प्राप्त हुये और फिर वे लोकान्तर को प्राप्त हुये। उन सूर्य पुत्र को प्राणी प्राप्त होते हैं । हे ऋत्विजो ! पाप पुण्यानुसार फल देने वाले उन यम का पूजन करो ॥ १३ ॥ हे पितरो ! हमारे पितृयाग कर्म से संतुष्ट हुये तुम अब अपने स्थान को जाओ और जब फिर तुम्हारा आह्वान करें तब आना। हमने तुम्हें मधु-घृत से युक्त यज्ञ दिया है, उसे स्वीकार कर हमारे घर मङ्गलमय ऐश्वर्य और पुत्र, पौत्र, पशु आदि स्थापित करो ॥ १४ ॥ कण्व, कक्षीवान्, पुरुमीढ, अगस्त्य, श्यावाश्व, सोभरि, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि, कश्यप और वामदेव नामक अनेक प्रकार के पूजा के योग्य ऋषि हमारे रक्षक हों ॥ १५ ॥ हे विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, वामदेव नामक महर्षियों ! हमको सुख प्रदान करो। महर्षि अत्रि ने हमारे घर की रक्षा स्वीकार की है । हे पितरो ! हमारे नमस्कार आदि द्वारा तुम पूजन के योग्य हो, तुम भी हमको सुख प्रदान करो ॥ १६ ॥ श्मसान में बांधव की मृत्यु के दुःख को छोड़ते हुये और शव स्पर्श के पाप से मुक्त होते हुए घर जाते हैं। इस प्रकार हम दुःख से छूट गये हैं इसलिये पुत्र-पौत्रादि, पशु आदि, सुवर्ण, धन आदि तथा सुन्दर गन्ध और आयु से सम्पन्न रहें ॥ १७ ॥ सोमयाग के आरम्भ में यजमान को ऋत्विज अंजन लगाते हैं । समुद्र की वृद्धि के समय उदय को प्राप्त, रश्मियों द्वारा देखने वाले, प्रकाशमय चन्द्रमा को रक्षात्मक सोम रूप से अवस्थित होने पर ऋत्विज चार थालियों में शोधते हैं ॥ १८ ॥ हे पितरो ! तुम अपने सोमार्ह धन सहित हम से मिलो। क्योंकि तुम अपने यश से यशस्वी हो, हमको अभीष्ट प्रदान करो और हमारे यज्ञ में बुलाये जाने पर आह्वान को सुनो। हे पितरो ! तुम

अत्रि गोत्रिय वा अङ्गिरा गोत्रिय हो । नौ महीने तक सत्र याग करने के कारण स्वर्गारोही हुये हो । दश मासिक याग पूर्ण करने पर दक्षिणा प्रदायक पुण्यात्मा हो । इसलिये इस विस्तृत कुश पर बैठकर हमारी हवि से तृप्ति को प्राप्त होओ ॥ २० ॥

अधा यथा नः पितरः परास प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः ।
शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ।।२१॥
सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् ॥ २२ ॥
आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः ।
मर्तासश्चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥ २३ ॥
अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ २४ ॥
इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २५ ॥
धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवो-
परि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २६ ॥
अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २७ ॥
सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २८ ॥
धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २९ ॥
प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी-
द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह
स्थ ॥ ३० ॥

हे अग्ने ! जैसे हमारे श्रेष्ठ पितर स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं, और उक्थों के गायक पितर रात्रि के अंधेरे को अपने तेज से दूर कर उषाओं को प्रकाशित करते हैं ॥ २१ ॥ सुन्दर कर्म और सुन्दर तेज वाले देव काम्य, तप से अपने जन्म को शोधने, वाले देवत्व को प्राप्त हुए, गार्हपत्य को प्रदीप्त करते हुए और स्तुतियों से इन्द्र को प्रवृद्ध करते हुए यह पितर गौओं को हमारे यहाँ निवास करने वाली बनावें ॥ २२ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे द्वारा भस्म किया जाता हुआ यह यजमान देवताओं के प्रादुर्भाव को देखे । मरणधर्मा मनुष्य तुम्हारी कृपा से उर्वशी आदि अप्सराओं को भोगने वाले होते हैं, और तुम्हारी कृपा से यह देवत्व प्राप्त मनुष्य भी गर्भाशय में बोये हुए मनुष्य की वृद्धि वाला भी होता है ॥ २३ ॥ हे अग्ने ! हम तुम्हारे सेवक और तुम हमारे पालक हो, इसलिए हम सुन्दर कर्म वाले हों। उषाकाल हमारे कर्मों के फलों को सत्य करे, देवताओं द्वारा रक्षित कर्म हमारे लिए कल्याणकारी हों और हम भी सुन्दर पुत्र आदि से युक्त रहते हुए यज्ञ में विस्तृत स्तोत्रों का उच्चारण करें ॥ २४ ॥ मुझ संस्कार करने वाले को मरुद्गण सहित इन्द्र पूर्व दिशा से भयों से रक्षित करें । दाता को दी गई पृथिवी जैसे उपभोग्य स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे तेरी रक्षक हो । पुण्य के फल रूप स्वर्ग प्राप्ति का मार्ग प्रवर्त्तन करने वालों को हम हवि से पूजते हैं । हे देवगण ! इस यज्ञ में तुम हुतभाग होओ ॥ २५ ॥ पाप देवी निर्ऋति के भय से दक्षिण दिशा के धाता देव मेरी रक्षा करें और दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के उपभोग्य स्वर्ग का पालन करती है, वैसे ही वह तेरी रक्षक हो । जिन स्वर्गादि लोकों के देने वाले देवताओं के लिए हवि दे चुके हैं, उन देवताओं का हम पूजन करते हैं ॥ २६ ॥ देवमाता अदिति पश्चिम दिशा के भय से मेरी रक्षा करे । दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग का पालन करती है वैसे ही तेरा पालन करे । जिन स्वर्गादि लोकों को देने वाले देवताओं को हवि दी जा चुकी है, उन देवताओं का हम पूजन करते है ॥ २७ ॥ उत्तर दिशा के भयों से देवताओं सहित सोम मेरी रक्षा करें । दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग का

पालन करती है, वैसे ही तेरा पालन करे। जिन स्वर्गादि लोकों को देने वा देवताओं को हवि दे चुके हैं, उन देवताओं का हम पूजन करते हैं ॥ २८ ॥ हे प्रेत ! संसार के धारणकर्ता वरुण देव तुम ऊर्ध्व दिशा में गमन करने वाले पुरुष को धारण करें। दाता की दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग का पालन करती है, वैसे ही तेरा पालन करे। जिन स्वर्गादि लोकों को देने वाले देवताओं का भाग हम होम चुके हैं, उन देवताओं को हम पूजते हैं ॥ २९ ॥ हे प्रेत ! दहन स्थान से पूर्व दिशा की ओर स्थित कम्बल द्वारा आच्छादित मैं तुझे पितरों को तृप्ति कर स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। जैसे संकल्प करके दी हुई पृथिवी दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही तेरी रक्षा करे। जिन स्वर्गादि लोकों के प्रापक देवताओं को हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं को हम पूजते हैं ॥ ३० ॥

दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्यता-पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां इह स्थ ॥ ३१ ॥

प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता-पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३२ ॥

उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता-पृथिवी द्यामिवोपरि लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां-हुतभागा इह स्थ ॥ ३३ ॥

ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता-पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां-हुतभागा इह स्थ ॥ ३४ ॥

ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता-पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां

हुतभागा इह स्थ ॥ ३५ ॥
धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥ ३६ ॥
उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥ ३७ ॥
इतश्च मामुतश्चावतां यमेइव यतमाने यदैतम् ।
प्र वां भरन् मानुषा देवयन्त आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने ॥ ३८ ॥
स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः ।
वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ॥ ३९ ॥
त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैद् व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि स पुनाति ॥ ४० ॥

हे प्रेत ! दहन-स्थान से दक्षिण दिशा की ओर स्थित कम्बल से ढका हुआ मैं तुझे पितरों को तृप्त करने वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिग्रहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही वह तेरी रक्षा करे। जिन स्वर्गादि लोकों को प्राप्त कराने वाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं का पूजन करते हैं ॥ ३१ ॥ हे प्रेत ! दहन स्थान से पश्चिम की ओर कम्बल से ढका हुआ मैं तुझे पितरों को तृप्त करने वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिग्रहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही वह पृथिवी तेरी रक्षक हो। जिस स्वर्गादि लोकों को प्राप्त कराने वाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं का पूजन करते हैं ॥ ३२ ॥ हे प्रेत ! दहन-स्थान से उत्तर दिशा की ओर स्थित कम्बल से ढका हुआ मैं तुझे पितरों को तृप्त करने वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिग्रहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही वह तेरी रक्षक हो। जिन स्वर्गादि लोकों के प्राप्त कराने वाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं को पूजते हैं ॥ ३३ ॥ हे प्रेत ! दहन स्थान से ध्रुव दिशा की ओर स्थित कम्बल आदि ओढ़े हुए मैं तुझे पितरों को तृप्त करने

वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही वह तेरी रक्षा करे। जिन स्वर्गादि लोकों को प्राप्त कराने वाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं का पूजन करते हैं ॥ ३४ ॥ हे प्रेत ! दहन स्थान से ऊर्ध्व दिशा की ओर स्थित कम्बल आदि ओढ़े हुए तुझे पितरों को तृप्त करने वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही वह तेरी रक्षा करे। जिन स्वर्गादि लोकों को प्राप्त कराने वाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं का पूजन करते हैं ।३५। हे अग्ने ! तुम धारणकर्त्ता धरुण हो। वरणीय गति और सुवर्ण के पूरक और प्राणात्मक वायु के भी पूरक हो ।३६-३७। जिनमें हविर्धान होता है, वे द्यावापृथिवी, भूलोक और स्वर्ग में होने वाले भयों से तेरी रक्षा करें। हे द्यावापृथिवी ! तुम यमल संतानों के समान समानयत्न वाले होकर संसार का पोषण करते हो। देवताओं की कृपा कामना वाले पुरुष जब तुम्हें हवि दें तब तुम अपने स्थान को जानती हुई उस पर प्रतिष्ठित होओ ॥ ३८ ॥ हे हविर्धाने ! धर्मपथगामी विद्वान जैसे इच्छित प्राप्त करता है, वैसे ही प्राचीन स्तोत्रों सहित नमस्कार करता हूँ। वे स्तोत्र तुम्हें प्राप्त होते हैं। तुम हमारे सोम के लिए स्थिर होओ। अविनाशी देवता हमारे इस स्तोत्र को सुनें ।३९।। मोह को प्राप्त मृतक इस संस्कार द्वारा अनुस्तरणी गौ को ध्यान में रखता हुआ तीनों द्युलोकों को प्राप्त होता है। यह परिच्छेदक शरीर के छोड़ने पर स्वर्गादि का पुण्य फल प्राप्त कर रहा है ।।४०।।

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रिया यमस्तन्वमा रिरेच ॥ ४१ ॥
त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥४२॥
आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ४३ ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥ ४४ ॥
उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ४५ ॥
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ४६ ॥
ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविद स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिऋर्षिभिर्घर्मसद्भिः ।।४७।।
ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैऋर्षिभिर्घर्मसद्भिः ॥ ४८ ॥
उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥ ४९ ॥
उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥

सृष्टि-आरम्भ में विधाता ने इन्द्रादि देवताओं के लिए किस प्रकार की मृत्यु का वरण किया ? फिर सूर्य-पुत्र यम ने बृहस्पति के स्नेह पात्र मनुष्य की देह को सब ओर से खींचकर प्राणहीन किया ॥ ४१ हे अग्ने ! तुम उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता हो। तुम हमारी स्तुति पाकर देवताओं के लिए हवि वहन करो। तुमने पितृ देवताओं को स्वधा सहित कव्य दिया है, जिसे पितरों ने भक्षण कर लिया अब तुम भी हमारी हवियों का सेवन करो ॥ ४२ ॥ हे पितरों ! तुम अरुण वर्ण वाली उषा माताओं के अङ्क में बैठते हो। तुम मरण धर्म वाले हविदाता यजमान को धन प्रदान करो, हमे पुन्नामक नरक से बचाने वाले पुत्रों के लिए सम्पत्ति और बलप्रद अन्न प्रदान करो ॥ ४३ ॥ हे पितरो ! तुम इस यज्ञ में अपने स्थानों पर आ आकर बैठो और हवियों का भक्षण करो। तुम हवियों से सन्तुष्ट होकर हमको वीर पुत्रों

से उक्त धन प्रदान करो ॥ ४४ ॥ हम अपने सोम के पात्र पितरों को अपने पास बुलाते हैं। वे हमारी हवियों पर आकर स्तोत्र सुनें और हमको स्वीकार करते हुए इहलौकिक एवं पारलौकिक फल देते हुए रक्षा करें ॥ ४५ ॥ हमारे श्रेष्ठ ज्ञान वाले पितामह, सोम-पान करने वाले पितरों के साथ रहते हुए यम की इच्छा करें और हमारी हवियों का अपनी इच्छानुसार सेवन करें ॥ ४६ ॥ जो पितर प्यासे होते हुए देवताओं की स्तुति कर रहे हैं उन सत्य फल देने वाले, सोमयाग में बैठने वाले पितरों के साथ हे अग्ने! अपरिमित धन दान को हमारे पास आओ ॥ ४७ ॥ सत्यभाषी, हव्यादि के भक्षक, सोमपायी, देवताओं के सहगामी, सुन्दर बुद्धि वाले यज्ञ में बैठने वाले पिता, पितामह आदि पितरों सहित हे अग्ने! हमारे सामने होओ ॥ ४८ ॥ हे प्रेत! माता के समान सुखदायिनी पृथिवी पर आ। यह तुझ यज्ञ-दक्षिणादि पुण्य कर्मों वाले को ऊन के समान कोमल हो और पूर्व के मार्गारम्भ में तेरी रक्षा करे ॥ ४९ ॥ हे भूमि! तुम कर्कश मत रहो, इस पुरुष को बाधा मत दो। यह सुख से तुम्हारे पास रहे। जैसे माता अपने पुत्र को वस्त्र से ढकती है, वैसे ही तुम इसे आच्छादित करो ॥ ५० ॥

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥ ५१ ॥
उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥ ५२ ॥
इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम्।
अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ५३ ॥
अथर्वा पूर्णं चमस यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्ष तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ॥ ५४ ॥
यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः।
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥ ५५ ॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः ।
अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥ ५६ ॥
इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा स स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ५७ ॥
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ ५८ ॥
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥ ५९ ॥
शते नीहारो भवतु शंते प्रुष्वाव शीयताम् ।
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्यप्सु शं भुव इम स्वग्निं शमय ॥ ६० ॥

यह पृथिवी सुख पूर्वक स्थिर रहे, श्मशान में स्थापित ओषधियाँ पास में लगें, घृत को प्रवाहित करती हुई वे ओषधियाँ इस मृतक के लिए घर रूप हों और श्मसान में इसकी रक्षा करती रहें ॥ ५१ ॥ हे मृतक ! तेरे निमित्त इस भूमि को ऊपर धारण करता हूँ । तेरे चारों ओर भूमि को स्थापित करता हूँ । इस कर्म से मैं हिंसित न होऊँ । इस उठाई गई भूमि में घर बनाने के लिए पितृदेवता स्थूणा धारण करें और यम तेरे लिए गृह निर्माण करें ॥ ५२ ॥ हे अग्ने ! इडा पात्र को टेढ़ा न कर । यह चमस देवताओं को सोम आदि सेवन कराने वाला होने से पितरों को अत्यन्त प्रिय है । इस चमस में सब देवता तृप्ति को प्राप्त हों ॥ ३ ॥ अथर्वा ने जिस हवि से पूर्ण चमस को इन्द्र के निमित्त धारण किया था । उसी चमस में शोभन प्रकार से भी हुई एवं यज्ञ से बची हुई हवि का भक्षण ऋत्विज करते है । उसी चमस में सदा अमृत स्रवित होता है ॥ ५४ ॥ हे पुरुष ! तेरे जिस अङ्ग को कौआ आदि काले पक्षी या विषयुक्त दाढ़ वाली पिपीलिका ने काट लिया है, उसे सर्वभक्षी अग्नि निरोग करें । ब्राह्मण, ऋत्विज यजमान आदि में यह रस रूप रमा हुआ सोम भी उस अङ्ग को रोग रहित करे ॥ ५५ ॥ ओषधियाँ सार

वाली हों, बल सारयुक्त हो, जलों के सार का भी सत्व है उन सबसे जला-भिमानी वरुण मुझे स्नान से शुद्ध करें ॥ ५६ ॥ इस प्रेत के बांधवों की स्त्रियाँ विधवा न हों, पति से युक्त रहती हुई घृतयुक्त अञ्जन लगावें । वे सुन्दर आभूषणों को धारण करने वाली रोग रहित, अश्रु रहित रहती हुई सन्तान-वती हों ॥ ५७ ॥ हे मृतक ! तू सपिण्डीकरण तक के कर्म से पितरों में युक्त हो और पितृलोक से भी श्रेष्ठ कर्म फल के भोग रूप स्वर्ग में पहुंचे ॥ ५८ ॥ हमारे पितामह, प्रपितामह और हमारे गोत्र में उत्पन्न अन्य जिन पुरुषों ने विस्तृत अन्तरिक्ष में प्रवेश किया, उस समय स्वराट् असुनीति देवता उनके शरीरों को रचने वाले हुए ॥ ५९ ॥ हे प्रेत ! तुझे नीहार सुख प्रदान करे । जल तुझे सुख पहुँचाता हुआ बरसे । हे ओषधिमती पृथिवी ! तू इस दग्ध पुरुष को मण्डूकपर्णी द्वारा सुख दे और जलाने वाली अग्नि को शान्त कर ॥ ६० ॥

विवस्वान् नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥ ६१ ॥

विवस्वान नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।
इमान रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मोष्वेषामसवो यम गुः । ६२ ।
यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीव से धात् ॥६३॥
आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन ।
सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥६४॥
प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥६५।
नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ।६६॥
इन्द्रं क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ ६७ ॥
अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमतो घृतश्चुतः ॥ ६८ ॥
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ ६९ ॥
पुनर्देहि वनस्पते य एष निहतस्त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥ ७० ॥
आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥ ७१ ॥
ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ ७२ ॥
एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥७३॥

सूर्य, जीरदानु, सुदानु और सुत्रामा देवता हमको भय से बचायें। इस लोक में हमारे वीर्य से उत्पन्न अनेक वीर और गवादि पशु हों ॥ ६१ ॥ सूर्य हमको अमरत्व दें। मृत्यु हार कर चली जाय। अमृतत्व वृद्धावस्था तक इन पौत्र पौत्रादिकों की रक्षा करे, उनमें से कोई भी यम को प्राप्त न हो। ॥६२॥ श्रेष्ठ बुद्धि वाले, क्रान्तदर्शी मन पितरों को अन्तरिक्ष में धारण करते हैं। हे ब्राह्मणो! तुम सब प्राणियों के सखा हो। ऐसे यम को हव्यादि से पूजो। वह यम हमारे जीवन को पुष्ट करें ॥ ६३ । हे ऋषियो! तुम मन्त्र-द्रष्टा हो। अपने श्रेष्ठ कर्मों द्वारा स्वर्ग पर आरोहण करो। तुम सोमयागी और सोमपायी हो, तुम स्वर्ग पर चढ़े हुओं के निमित्त यह हवि दी जाती है हम भी तुम्हारे अनुग्रह से चिरायु को प्राप्त हों ॥ ६४ ॥ यह अपने धूम रूप ध्वजा से दमकते हैं। यह कामनाओं के वर्षक हैं। आकाश पृथिवी की ओर लक्ष्य करते हुये यह शब्दवान् होते हैं। यह द्युलोक से ऊपर व्याप्त होते हैं और जलों के स्थान अन्तरिक्ष में भी अपनी महिमा से महान् होते

हैं ।६५।. हे प्रेत ! जब हम तुम्हें सुन्दर गति से स्वर्ग की ओर जाते हुए देखते हैं, तब तुम्हें स्वर्णिम पंख वाले वरुण के दूत यम के गृह में पक्षी के समान और भरण करने वाले के रूप मे देखते हैं ।।६६।। हे इन्द्र ! पिता जैसे पुत्रों को इच्छित वस्तु देता है, वैसे ही हमको यज्ञादि इच्छित वस्तु दो । संसार यात्रा में अभीष्ट दो जिससे हम दीर्घजीवी होकर इस लोक के सुख को प्राप्त करें ।।६७।। हे प्रेत ! देवताओं ने जिन घृत मधु आदि से युक्त कुम्भों को तेरे लिये रखा है, वे कुम्भ तेरे लिये अन्न, मधु से युक्त और घृत सींचने वाले हों । ६८।। हे प्रेत ! तिल युक्त स्वधा वाली जो की खीलें मैं दे रहा हूँ, वे तुझे वैभव वाली और तृप्तकर हों । यमराज तुझे खीलों का उपभोग करने की आज्ञा दें ।।६९ । हे वनस्पते ! तुममें जो अस्थि रूप पुरुष स्थापित किया था, उसे मुझे लोटाओ, जिससे वह यज्ञात्मक कर्मों को प्रकाशित करता हुआ यम के गृह में स्थित हो ।।७०।। हे अग्ने ! तुम्हारी दहनशील ज्वालायें रसहरण वाली शक्ति से युक्त हों, तुम जलाने को तत्पर होओ । इस मृतक के शरीर को ठीक प्रकार भस्म करके इस पुण्यात्माओं के पुण्यलोक रूप में स्वर्ग में प्रतिष्ठित करो ।।७१।। तुझसे पहले उत्पन्न पुरुष, जो तुझसे बड़े पितर हैं वे गये हैं, अथवा तुझसे पीछे उत्पन्न पुरुष गए हैं । उन सब पितरों के लिये घृत की (कृत्रिम) नदी प्रवाहित हो । वह सहस्रों धार वाली होकर तुझे अनेक प्रकार से सींचती रहे ।। ७२ ।। हे मृतक ! तू इस शरीर से निकल कर अपने ही द्वारा पवित्र होता हुआ व्योम में चढ़, और तेरी जाति के सब व्यक्ति समृद्धि सहित इसी लोक में रहें । बन्धुओं के मध्य से दूसरे लोक की ओर बढ़ता हुआ ऊँचा चढ़ कर और पितरों के आकाश में स्थित मुख्य लोक को मत छोड़ ।।७३।।

४ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—यम, मन्त्रोक्ता, पितर, अग्नि, चन्द्रमा, छन्द—त्रिष्टुप, जगती शक्वरी, बृहती, अनुष्टुप गायत्री, पंक्ति, उष्णिक)

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि ।
अवाड्ढव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके ।। १ ।।

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि ।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यान्ति लोकम् ॥ २ ॥
ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति ।
तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके अधि
वि श्रयस्व ॥ ३ ॥

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः ।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ॥ ४ ॥

जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवादाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय दुह्राम ॥ ५ ॥

ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व ।
जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा
धुक्ष्वाहृणीयमानः ॥ ६ ॥

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पन्त ॥ ७ ॥

अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं
दक्षिणाग्निः ।
महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः ॥ ८ ॥

पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः ।
दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोदिशो
अग्ने परि पाहि घोरात् ॥ ९ ॥

यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति ॥ १० ॥

हे गार्हपत्यादि अग्नियों ! तुम उत्पन्न हुओं के ज्ञाता हो । तुम अपनी उत्पादक अरणियों में प्रविष्ट होओ । मैं भी तुम्हें पितृयानों द्वारा

अरणियों में चढ़ाता हूँ। हव्यवाहक अग्नि ने देवताओं के लिये हव्य वहन किया। हे अग्नियो ! जिस यजमान ने तुम्हारे निमित्त यज्ञ किया था, उस विदेश में मृत्यु को प्राप्त हुये यजमान को पुण्यलोक में प्रतिष्ठित करो ।। १ ।। इन्द्रादि पूज्य देवता ऋतुयज्ञ की कामना करते हैं। घृतादि हव्य सामग्री तथा पात्रादि आयुध भी यज्ञ की कामना करते हैं। हे आहिताग्ने ! तुम देवयान मार्ग से गमन करो ! जिन मार्गों से यज्ञकर्म वाले पुण्यात्मा जाते हैं, उस देवयान मार्ग से ही तुम जाओ ।।२।। हे प्रेत ! तू सत्य के कारण रूप मार्ग को भले प्रकार जानता हुआ महर्षि अङ्गिरस आदि के स्वर्ग को गमन कर। जिस मार्ग में अदिति पुत्र देवता अमृत का सेवन करते हैं उस दुःख-रहित तृतीय स्वर्ग में तू निवास कर ।। ३ ।। अग्नि, वायु, सूर्य सुन्दरता से गमन करने वाले हैं। वायु और पर्जन्य मेघ के समान शब्द करते हैं। यह सब स्वर्ग से ऊपर विष्टप् मे निवास करते हैं। यह अपने कर्मों से प्राप्त स्वर्ग लोक अमृत से सम्पन्न है। कर्मानुष्ठान करने वाले प्रेत को यह इच्छित अन्न और रस का देने वाला हो ।। ४ । होम पात्र जुहू ने आकाश को पुष्ट किया, उपभृत पात्र ने अन्तरिक्ष को धारण किया, और ध्रुवा पात्र ने पृथिवी का पालन किया। इस ध्रुवा से पालित पृथिवी का ध्यान रखते हुए ऊर्ध्व स्वर्ग लोक यजमान को इच्छित फल प्रदान करें। ५।। हे ध्रुवा नामक स्रुक ! तू पृथिवी पर चढ़ और यजमान भी पृथिवी पर प्रतिष्ठित रहे। हे उपभृत पात्र। तू अन्तरिक्ष पर आरोहण कर। हे जुहू ! तू यजमान के साथ द्युलोक को गमन कर और सब दिशाओं से अभीष्ट फलों को दोहन कर।। ६ ।। तीर्थ और यज्ञादि कर्मों द्वारा बड़ी-बड़ी विपत्तियों से पार होते हैं। इस प्रकार विचार करने वाले यज्ञ कर्म करते हुये पुरुष जिस मार्ग से स्वर्ग को जाते हैं, उस मार्ग को खोजते हुये यज्ञकर्ता इस यजमान के उस मार्ग को खोलें ।। ७ ।। आहिताग्नि की चिता में स्थित गार्हपत्यादि अग्नियें यथा प्रवेश करती हैं, वे इच्छित फल दें। पूर्व में स्थित आह्वानीय अग्नि, अङ्गिरसों का सत्रात्मक कर्म है। गार्हपत्याग्नि आदित्यों का अयन नामक सत्रयाग है। दक्षिणाग्नि दक्षायन नामक सत्र है। इस प्रकार विभिन्न नामों वाली विभूति को हे प्रेत !

पूर्ण अवयव वाला होकर सुख प्राप्त करता हुआ प्राप्त हो ॥८॥ हे भस्म होते हुये प्रेत ! तुझे पूर्व में दमकते हुये, अग्नि सुख देते हुये भस्म करें। दक्षिणाग्नि तुझे सुख से भस्म करे । हे अग्ने ! तुम उत्तरादि सब दिशाओं से क्रूर और हिंसकों से इस प्रेत की रक्षा करो ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! पृथक्-पृथक् स्थ नों को प्राप्त हुये तुम अपने आधान करता आराधक यजमान को अपने महान् कल्याण देने वाले साधनों से स्वर्ग लोक में पहुँचाओ। उस लोक में हम गोत्र वालों सहित देवत ओं से साथ रहते हुये प्रसन्नता को प्राप्त हों ॥ १० ॥

शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् ।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेन धेहि सुकृतामु लोके ॥ ११ ॥
शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्रजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १२ ॥
यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १३ ॥
ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥१४॥
अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ॥ १५ ॥
अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १६ ॥
अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १७ ॥
अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १८ ॥
अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १९ ॥

अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ८० ॥

हे अग्नि ! पश्चिम, पूर्व, उत्तर, दक्षिण आदि दिशाओं में इसे सुख पूर्वक भस्म करो। एक होते हुये भी यजमान ने तुम्हें तीन रूप में स्थापित किया था। ऐसे यज्ञ कर्म वाले इसे पुण्यात्माओं के लोक में प्रतिष्ठित करो ॥ ११ ॥ प्रदीप्त होकर अग्नियाँ इस प्रेत को भले प्रकार भस्म करें वे इसे इधर-उधर न फेंके ॥ १२ ॥ यह विस्तृत पितृमेध यज्ञ इसे सुख सम्पन्न स्वर्ग-लोक को प्राप्त करा रहा है। अग्नियाँ इस मेध्य का भक्षण करें और पकाते समय इसे इधर-उधर फेंक कर अधजला न छोड़ें ॥ १३ ॥ यह याज्ञिक पुरुष तृतीय स्वर्ग पर चढ़ने के लिये विषम संख्या वाली शलाका और ईंटों से चिने अग्नि प्रदेश पर चढ़ा है। स्वर्ग पर चढ़ते हुये इस पुण्यात्मा प्रेत के लिये देवयान प्रकाश से युक्त हो ॥१४॥ हे प्रेत ! तेरे पितृमेध यज्ञ में अग्नि होता बनें, बृहस्पति अध्वर्यु हों, इन्द्र ब्रह्मा हों। इस प्रकार अनुष्ठित यह पूर्व समय में बहुत यज्ञों के स्थान को प्राप्त होता है ॥१५॥ पिसे गेहूँ और गोदुग्ध मिश्रित पक्व ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पास पश्चिम में रखा रहे। इस संस्कार हुये इस प्रेत के लिये स्वर्ग निर्माता इन्द्रादि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी देवताओं को प्रसन्न करते हैं ॥ १६ ॥ पिसे हुये गेहूँ और दधि मिश्रित ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पास पश्चिम दिशा में रखा रहे। इस संस्कार को प्राप्त हुये प्रेत के लिये स्वर्ग निर्माता इन्द्रादि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ॥ १७ ॥ पिसे गेहूँ और दधिकण द्रप्स वाले प्रेत के लिये, स्वर्ग-निर्माता इन्द्रादि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ॥ १८ ॥ पिसे गेहूँ और गोघृत से संयुक्त इस संस्कार किये गये प्रेत के लिये स्वर्ग-निर्माता इन्द्रादि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ॥ १९ ॥ पिसे गेहूँ और प्राणिज द्रव्य से संयुक्त ओदन रूप चरु पश्चिम में रखा जाय। इस संस्कार किये गये प्रेत के लिये स्वर्ग-निर्माता इन्द्रादि देवताओं

में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ॥ २० ॥

अपूपवानन्नवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २१ ॥
अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इस स्थ ॥ २२ ॥
अपूपवान् रसवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २३ ॥
अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृत: पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २४ ॥
अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुत: ॥ २५ ॥
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्रा: स्वधावती: ।
तास्ते मन्तूद्भ्वी: प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ २६ ॥
अक्षितिं भूयसीम् ॥ २७ ॥
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्व: ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्रा: ॥ २८ ॥
शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् ॥२९॥
कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसी: परमे व्योमन् ॥ ३० ॥

पिसे गेहूं के अपूपों से युक्त, अन्न से मिश्रित, पक्व ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पश्चिम में रहे । इस संस्कार किये जाते प्रेत के लिये स्वर्ग के निर्माता इन्द्रादि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ॥ २१ ॥ पिसे गेहूं के अपूपों

से और मधु से युक्त कुंभी पक्व ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पश्चिम भाग में रहे। इस संस्कार किये जाते प्रेत के लिये स्वर्ग के निर्माता इन्द्रादि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ॥ २२ ॥ पिसे गेहूँ के अपूपों और छः रसों से युक्त कुंभी पक्व ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पश्चिम भाग में रहे। इस संस्कार किये जाते प्रेत के लिये स्वर्ग-निर्माता इन्द्र आदि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ॥ २३ ॥ पिसे गेहूँ के तथा अन्य प्रकार के अपूप से युक्त, कुम्भी पक्व ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पश्चिम भाग में रहे। इस संस्कार किये जाते प्रेत के लिये स्वर्ग-निर्माता इन्द्र आदि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ॥ २४ ॥ हे प्रेत! हवि भागी जिन देवताओं ने चरु पूर्ण कलशों को अपने भाग रूप में ग्रहण किया है, वे चरु तुझे परलोक में स्वधा से युक्त करें ॥ २५ ॥ हे प्रेत! तेरे लिये मैं जिन काले तिल युक्त जो की खीलों को बखेरता हूँ, वे तुझे परलोक में प्रचुर परिमाण में मिलें और इन्हें लाने के लिये यमराज तुझे आज्ञा दें ॥ २६-२७ ॥ सोम रस में स्थित जलांश द्रप्स पृथिवी-आकाश को लक्ष्य में रख कर बिखेरता हूँ। संसार की कारण रूप पृथिवी को लक्ष्य में कर पूर्वोत्पन्न द्युलोक और द्यावापृथिवी को लक्ष्य में रखकर, सात वषट्कर्त्ता होताओं को भी लक्ष्य में रखकर सोम रस द्रप्स को अग्नि में होमता हूँ। यह देवता के लिये करता हूँ ॥ २८ ॥ हे प्रेत! मनुष्यों को देखने वाले देवता टपकते हुये जल से युक्त वायु के वेग से चलते हुये स्वर्ग प्रापक इस कुंभ को तेरे लिये धन रूप जानते हैं। तेरे गोत्र वाले तुझे कुम्भोदक से तृप्त करते हैं और कुम्भोदक देने वाले सप्त मातृक रूप जल धारा रूप दक्षिणा को सदा देते हैं ॥ २९ ॥ धन, सुवर्ण आदि से युक्त कोश के समान चार छेद वाले कलश को धेनु के दुहने के समान दुहते हैं। हे अग्ने! पितरों को प्राप्त हुये इस प्रेत के लिये संतुष्ट करने वाली अदिति को खण्डित न करना ॥ ३० ॥

एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ॥ ३१ ॥
धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ३२ ॥
एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।
एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ॥ ३३ ॥
एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥ ३४ ॥
वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् ।
स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ॥३५॥
सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभि ॥ ३६ ॥
इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥ ३७ ॥
इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः ।
इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ॥ ३८ ॥
पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः ।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥ ३९ ॥
आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् ।
आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान् ॥ ४० ॥

हे प्रेत ! सविता तेरे लिए यह वस्त्र ढकने के लिए देते हैं। तू इसे ओढ़कर यम के राज्य में स्वच्छन्दता से घूम ॥ ३१ ॥ भुने जौ की खील गौ और तिल उसका वत्स बनेगा । हे प्रेत ! तू उस धेनु रूप वाली खील से जीवित रह ॥ ३२ ॥ हे प्रेत ! यह विभिन्न रूप वाली वत्स युक्त तिलात्मक गौऐं तेरे लिए कामधेनु हों और तेरे पास रहती हुई यमलोक में तुझे

इच्छित फल दें ॥ ३३ ॥ लाल, श्वेत, हरी और भूनने से काली तथा अरुण वर्ण वाली खीलें तेरे लिए गौ रूप हुई हैं, यह निरन्तर इस प्रेत को बलदायक अन्न देती रहें ॥ ३४ ॥ वैश्वानर अग्नि में मैं इन हवियों को डालता हूँ। यह अनेक प्रकार के बहते हुए जलों से युक्त हैं और सिंचित होती हुई अपने उपजीवी पितरों को तृप्त करने वाली हैं। इस हवि से प्रदीप्त हुए वैश्वानर अग्नि मेरे सभी पूर्व पुरुषों को तृप्त करें ॥ ३५ ॥ भूत प्रेत पितर मेघ के समान क्षरित होने वाले उदक से पूर्ण ऊर्ध्व भाग में स्थित अन्न साधन जल को टपकाते हुए, छिद्र युक्त कुम्भ की कामना करते हैं ॥ ३६ ॥ हे समान कुल गोत्र वालो ! तुम इस एकत्र अस्थि समूह को सावधानी से देखो। यह प्रेत अमरत्व को प्राप्त हो रहा है, तुम सब उसके लिए घर का निर्माण करो ॥ ३७ ॥ हे उल्मुक ! तू इसी धूलिमय देश में रहता हुआ हमको धन देने वाला हो। तू वहीं से हमारे कर्म का सम्पादक हो और परम बली, अन्न को पुष्ट करने वाला और शत्रुओं से असंतप्त रहता हुआ वृद्धि को प्राप्त हो ॥ ३८ ॥ आचमन योग्य यह मधुर जल पुत्र पौत्रादि को तृप्तिकर है। यह पिण्ड से उपजीवन करने वाले पितरों को स्वधा प्रदान करता रहता है। यह जल आचमन करने पर मातृकुल और पितृकुल के पितरों को तृप्त करे ॥ ३९ ॥ हे जलो ! तुम अवमेचन के साधन रूप हो। तुम दक्षिणाग्नि यज्ञ में प्रदत्त पिण्डों का वहन करने के लिए पितरों के पास पहुंचाओ। मेरे पितर इन पिण्डों का आस्वादन करें। यज्ञ में रखे पिण्ड रूप अन्न को सेवन करने के लिए जो पितर पास में आवें वे हमें कुशल, पुत्र पौत्रादि सहित धन दें ॥ ४० ॥

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम्।
स वेद निहितान् निधीन् पितॄन् परावतो गतान् ॥ ४१ ॥

यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ ४२ ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्रा स्वधावतीः।

तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ ४३ ॥
इद पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
परोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृताम् लोकम् ॥४४॥
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुपे वार्यं दात् ॥ ४५ ॥
सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥ ४६ ॥
सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४७ ।
पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः ।
परापरैता वसुविद्वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ॥ ४८ ॥
आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।
अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ॥ ४९ ॥
एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः ।
यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य उपसंपरायणयादिमान् ॥ ५० ।

अविनाशी अग्नि को कर्मवान पुरुष प्रकट करते हैं । दिखाने वाले के बिना जैसे कोई भूमिगत कोश को देख नहीं सकता, वैसे ही पितर भी स्वयं ही प्रकाशित नहीं होते । यह अग्नि दूर देश में वास करने वाले पितरों के जानने वाले हैं इसलिए यह प्रदीप्त किये जाते हैं ॥ ४१ ॥ हे प्रेत ! तेरे लिए जो मन्थ दे रहा हूँ वह मन्थ तुझे स्वधा और घृत से सम्पन्न हुए प्राप्त हों॥४२॥ हे प्रेत ! इन कृष्ण तिलों वाली स्वधामयी खीलें परलोक प्राप्ति पर तुझे विस्तृत रूप में प्राप्त हों और इनके भक्षण की तुझे यमराज स्वीकृति दें ॥४३॥ इस लोक से जिसके द्वारा प्राणी जाते हैं, वह मृतक को ढोने वाली गाड़ी प्राचीन और नवीन दोनों प्रकार की है । इसी के द्वारा तेरे पूर्व पुरुषा गए थे । इसके दोनों ओर जोड़े गये दोनों वृषभ तुझे पुण्यात्माओं का लोक प्राप्त

करावें ॥४४॥ मृतक का संस्कार कराने वाले अग्नि की इच्छा करते हुए पुरुष सरस्वती का आह्वान करते हैं । ज्योतिष्टोम आदि के समय भी सरस्वती का आह्वान किया जाता है, वह सरस्वती हविदाता यजमान को वरण करने योग्य पदार्थ प्रदान करें ॥ ४५ ॥ वेदी के दक्षिण भाग में स्थित पितर भी सरस्वती का आह्वान करते है । हे पितरो ! इस यज्ञ में प्रसन्नता को प्राप्त करो, सरस्वती को तृप्त करते हुये हमारी हवि से स्वयं तृप्त होओ । हे सरस्वती ! तुम पितरों द्वारा आहूत होकर इच्छित अन्न में हमें प्रतिष्ठित करो ॥ ४६ ॥ हे सरस्वते ! तुम उक्थ, शस्त्र, स्वधा रूप अन्न से तृप्त होती हुई पितरों सहित एक ही रथ पर आगमन करती हो । तुम यजमान को, अनेक व्यक्तियों को तृप्त करने वाले अन्न को प्रदान करो ॥ ४७ ॥ हे पृथिवी ! मैं तुझे विकार कुम्भी में प्रविष्ट करता हूँ । हम सब यज्ञ के अनुष्ठाताओं की धाता देवता आयु बुद्धि करें । हे दूर लोक वासी पितरो ! यह लिपी हुई चरु कुम्भी तुम्हें अन्न प्राप्त करावे । चरु के स्वाहाकार के पश्चात् यह मृतक अपने पितरों से जा मिले ॥ ४८ ॥ हे प्रेत वाहक बैलो ! इस गाड़ी से तुम हमारे सामने ही पृथक् हो जाओ, प्रेत को सवारी देने की निन्दा वाक्य से छूटो । तुम इस गाड़ी सहित आओ । तुम्हारा आना शुभ हो । तुम इस पितृमेध में पितरों के लिए हविदाता बनो ॥ ४९ ॥ हम संस्कार करने वालों के पास यह गो रूप वाली दक्षिणा आ रही है । यह सुन्दर फल और दूध रूप अन्न को देती हुई वृद्धावस्था में भी युवती ही रहे । इस संस्कार किये हुये पुरुष को यह दक्षिणा पूर्व पितरों के पास पहुँचावें ॥ ५० ॥

इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ॥५१॥
एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्वं सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥ ५२ ॥
पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो वि दधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ५३ ॥
ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम ।

तमर्चंत् विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥ ५४ ॥
यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥ ५५ ॥
इदं हिरण्यं विभृहि यत् ते पिताबिभः पुरा ।
स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥ ५६ ॥
ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥ ५७ ॥
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया ॥५८॥
त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ५९ ॥
प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः ।
मर्यइव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ६० ॥

मैं संस्कार करने वाला पुरुष पितरों को और देवताओं को जीवन-कामना करता हुआ कुशाओं को बिछाता हूँ । हे पुरुष ! तू पितृमेध के योग्य होता हुआ इन पर चढ़ जिससे पूर्वज पितर भी तुझे प्रेत हुआ जान लें । ५१॥ हे प्रेत ! तू इस चिता पर बिछी कुशा पर चढ़ कर पितृमेध के योग्य हो गया है अतः पितर तुझे प्रेत हुआ जानें । तेरी अस्थियाँ जीवित रहने पर जैसे थीं, वैसी ही अब भी रहें । कुल में बड़ा मैं, तेरे अस्थि रूप अवयवों को मंत्र से एकत्र करता हूँ ॥ ५२ ॥ पालश पत्र हमको अन्न, रस, बल, शक्ति और तेज देता हुआ पावे । वह हमें सौ वर्ष की आयु प्रदान करता हुआ प्राप्त हो ॥५३॥ चरु रूप 'अन्न के योग्य जिन यमराज ने इसे प्रेत बनाया है, जो यम इन चरुओं को आच्छादित करने वाले पापाणों के स्वामी हैं, उन यमदेव को हे बन्धुओ ! हवियों से संतुष्ट करो । ये दीर्घ जीवन के निमित्त हमारा पोषण करें । ५४ । पंचों ने जैसे यम के स्थान को किया, वैसे ही मैं इस प्रेत के

निवास के लिए पितृ स्थान को ऊँचा करता हूँ। हे बांधवो ! ऐसा करने से तुम वृद्धि को प्राप्त हुए रहोगे ॥५५॥ हे प्रेत ! इस सुवर्ण-मुद्रिका को घृत से घारित कर। तेरे पिता ने जिस दक्षिण हाथ में सुवर्ण धारण कर रखा था, उस स्वर्ग प्रापक हाथ को तू धो ॥ ५६ ॥ जीवित, मृत, उत्पन्न होने वाले सब के ही लिए मधु के प्रवाह को सींचती हुई घृत की सरिता मिले। ५७॥ स्तुति करने वालों को इच्छित देने वाला सोम छन्ने से छन कर चलता है, वही सोम दिन रात्रि को निष्पन्न करता है। उषा काल और आकाश को भी वही बढ़ाता है। वह वसतीवर जलों का प्राण है। ऐसा सोम कलशों की ओर जाता हुआ अत्यन्त शब्द करता है। वह तीनों सवनों में पूज्य इन्द्र के पेट में प्रविष्ट हो रहा है ॥ ५८ ॥ हे प्रेताग्ने ! तुम्हारा धुआँ अंतरिक्ष को मेघ रूप में ढके। तुम स्तुति के कारण प्रदीप्त होकर सूर्य के समान प्रकाशित होते हो ॥ ५९ ॥ यह छन्ने से छनता हुआ सोम इन्द्र के पेट में जाता है। यह यष्टा के लिए मित्र के समान है और उसकी इच्छित कामनाओं को व्यर्थ नहीं करता। पुरुष के स्त्री से मिलने के समान यह सोम द्रोण कलश में सहस्रों धाराओं से मिलता है ॥ ६० ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥ ६१ ॥
आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥६२॥
परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः॥६३॥
यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयञ्जातवेदाः ।
तद् व एतत् पुनरा प्याययामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥६४॥
अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥६५॥

असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः। अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥६६॥
शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ॥६७॥
ये स्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥६८॥
उदुत्तम वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यम श्रथाय।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥६९॥
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे।
अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ॥७०॥

पिण्ड भक्षण करके पिता पितर तृप्त हो गये, फिर वे अपने शरीर को कम्पायमान कर रहे हैं। फिर वे हमारी प्रशंसा करते हैं। उन तृप्त पितरों से हम अपने अभीष्ट फल को मांगते हैं॥ ६१ ॥ हे सोम के पात्र पितरो ! तुम पितृयानों से आगमन करो। पिण्ड के निमित्त कुश बिछाकर तिल प्रदाता हमको आयु और सन्तान देते हुये धनों से पुष्ट करो ॥ ६२। पितरो ! तुम पितृयानों से अपने लोक को गमन करो और अमावस के दिन हवि भक्षण को हमारे घर में फिर आना। तुम सुन्दर पुत्र, पौत्र प्रदान करने वाले हो ॥६३॥ हे प्रेत ! तुम्हारे जिस एक अङ्ग को उखटा कर अग्नि ने भस्म नहीं किया है उसे पुनः अग्नि में डालकर तुम्हें प्रवृद्ध करता हूं। तुम पूर्णाङ्ग होकर स्वर्ग गमन करते हुए प्रसन्नता को प्राप्त होओ।६४॥ प्रातः सायं वन्दना के योग्य अग्नि को दूत बनाकर हमने पितरों के पास प्रेषित किया है। हे अग्ने ! हमारी हवियों को उन्हें दो। वे पितर उनका सेवन करें और हे अग्ने ! फिर तुम भी अपने लिए दी हुई हवि का सेवन करो ॥६५॥ हे प्रेत ! तेरा मन इस श्मशान में है। हे श्मशान भूमे ! इस प्रेत को भले प्रकार उसी तरह ढक जैसे स्त्रियाँ अपने स्कन्ध को वस्त्र से ढकती हैं॥ ६६ ॥ हे प्रेत ! पितरों के बैठने के लोक तेरे लिए प्रकट हों। मैं तुझे उसी लोक में प्रतिष्ठित करता हूं ॥६७॥ हे बर्हि ! तू हमारे पूर्वज पितरों के लिए बैठने का स्थान बन। ६८॥ हे वरुण ! अपने उत्तम, मध्यम और निकृष्ट पाश को हमसे पृथक् रखो। पाशों से छूटने पर हम तुम्हारी सेवा करते हुए अहिंसित रहें ॥६९॥ हे वरुण ! जिन पाशों से मनुष्य जकड़-सा जाता है, उन्हें हमसे

पृथक् रखो। तुमसे रक्षित हुए और आगे भी रक्षा पाते हुए हम सौ वर्ष की आयु प्राप्त करें ॥ ७० ॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥ ७१ ॥
सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७२ ॥
पितृभ्यः सोमवद्भ्य स्वधा नमः ॥ ७३ ॥
यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७४ ॥
एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७५ ॥
एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७६ ॥
एतत् ते तत स्वधा ॥ ७७ ॥
स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥ ७८ ॥
स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥ ७९ ॥
स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥ ८० ॥

कव्यवाहन अग्नि को स्वधायुक्त हवि प्राप्त हो। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।७१। पितृमान सोम को स्वधायुक्त एवं नमस्कार से सम्पन्न यह हवि प्राप्त हो ॥७२॥ सोम वाले पितरों को स्वधा एवं नमस्कार से सम्पन्न यह हवि प्राप्त हो।७३। पितरों के अधिपति यम को स्वधा एवं नमस्कार युक्त यह हवि प्राप्त हो ॥७४॥ हे प्रपितामह ! तुम्हारे लिए यह पिण्ड रूप हवि स्वधाकार युक्त हो। पत्नी, पुत्र आदि जो पितर तुम्हारे अनुकूल रहते हों उन्हें भी यह स्वधाकार प्राप्त हो। हे पिता ! यह स्वधाकार युक्त हवि तुम्हें प्राप्त हो।७५। ७६॥७७॥ पृथिवी में रहने वाले पितरों को, अन्तरिक्षवासी पितरों को और स्वर्ग लोक के निवासी पितरों को यह स्वधाकार वाली हवियाँ प्राप्त हों ॥७८। ७९।८०॥

नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ॥ ८१ ॥
नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ॥ ८२ ॥
नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै ॥८३॥
नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत् स्योनं तस्मै ॥८४॥

नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥ ८५ ॥
येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्मांस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ॥ ८६ ॥
य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः।
अस्मांस्तेऽनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥ ८७ ॥
आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्।
यद् घ सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ८८ ॥
चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८९॥

हे पितरो ! तुम्हारे अन्न रस को, तुम्हारे क्रोध को, तुम्हारे मानस क्रोध को, तुम्हारे भयंकर रूप को, तुम्हारे हिंसक रूप को, तुम्हारे मङ्गलकारी रूप को और सुख देने वाले रूप को नमस्कार है। तुम्हें नमस्कार है। यह हवि तुम्हारे लिये स्वाहुत हो।८१।८२।८३।८४ ८५। हे पितरो ! इस पिण्ड पितृ यज्ञ में तुम देवता रूप में बैठे हो। अपने आश्रित पितरों में तुम श्रेष्ठ होओ वे तुम्हारे द्वारा उपजीवी हों। वे तुम्हारे अनुग्रह से पिंड अंश का भाग पावें। हम पिंड देने वाले भी आयु से सम्पन्न हों और अपने समानों में हम श्रेष्ठ हों ॥८६-८७॥ हे अग्ने ! हम तुम्हें समिधाओं द्वारा प्रवृद्ध करते हैं। तुम्हारी प्रशंसनीय दीप्ति आकाश में प्रकाशित है। हम स्तोताओं को अभीष्ट अन्न प्रदान करो ॥ ८८ ॥ जलमय आलोक में स्थित सुषुम्ना नामक किरण से युक्त चन्द्रमा शीघ्र गमन कर रहे हैं। हे चन्द्र किरणो ! कुएं में बन्द होने से मेरे नेत्र तुम्हारे रूप को देखने में समर्थ नहीं हैं। हे द्यावा पृथिवी ! तुम भी मेरे इस स्तोत्र को जानती हुई दया करो ॥ ८९ ॥

॥ इत्यष्टादशं काण्डं समाप्तम् ॥

एकोनविंश काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाद)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—यज्ञः । छन्द—बृहती, पंक्तिः)

स सं स्रवन्तु नद्यः सं वाताः स पतत्रिणः ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः सस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१॥
इम होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः सस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥२॥
रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे ।
यज्ञमिम चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३॥

उर्जनशील सरितायें सुखपूर्वक प्रवाहित हों, वायु भी हमारे अनुकूल चले, पक्षी आदि सब हमारे अनुकूल हों और अभीष्ट देने वाले हों। हे देवताओ ! तुम स्तुत्य हो । जिस यजमान के निमित्त यह शान्ति कर्म किया जा रहा है,उसकी पुत्रादि तथा पशु धन से वृद्धि करो। मैं घृतादि से युक्त हवि की देवताओं को आहुति देता हूं ॥ १ ॥ हे आहुतियों ! इस वर्तमान यज्ञ को सुफल करो । हे घृत, क्षीर आदि तुम इस यज्ञ का पालन करो । हे स्तुत्य देवगण ! इस यजमान को पुत्र पौत्रादि तथा पशु आदि से युक्त समृद्धि दो । मैं घृतयुक्त आहुति प्रदान करता हूं ॥ २ ॥ मैं इस यजमान में पुत्र, पशु आदि सब अवस्थाओं को स्थापित करता हूं, चारों दिशाएं इसके लिये इच्छित फल देने वाली हों। मैं घृतादि से सम्पन्न हवि प्रदान करता हूं ॥ ३ ॥

२ सूक्त

(ऋषि—सिन्धुद्वीपः ॥ देवता—आपः ॥ छन्द—अनुष्टुप्)

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥ १ ॥
शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः ।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥ २ ॥
अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥ ३ ॥
अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् ।
अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥ ४ ॥
ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मकरणीरपः ।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥ ५ ॥

हे यजमान ! हिमवान् पर्वत से लाये जल, झरने के जल, सदा प्रवाहित जल तेरा कल्याण करने वाले हों । वर्षा के जल भी तेरे लिये मंगलमय हों ॥१॥ मरुभूमि के जल, जलयुक्त प्रदेश के जल, कूप तड़ाग, और बावड़ी के जल तथा कुम्भों में भरकर लाये हुये जल तेरा कल्याण करने वाले हों ॥२॥ खनन साधन कुदालादि के न होते हुये भी जो दोनों ओर के किनारों को ढाने में समर्थ है, जो इनके द्वारा उपजीवन करते हैं उनकी बुद्धियों को प्रवृद्ध करने वाले हैं, जो अत्यन्त गहन स्थानों को प्राप्त हैं ऐसे जल वैद्यों से भी अधिक हित-साधक हैं । मैं उन जलों की वन्दना करता हूं ॥ ३ ॥ हे ऋत्विजो ! तुम आकाश के जलों के समान अथवा छोड़े गये अश्वों के समान इस शान्त्युदक कर्म में शीघ्रता करने वाले होओ ॥ ४ ॥ हे प्रोक्ताओ ! कल्याणकारी, यक्ष्मादि रोगों को शमन करने वाले ओषधि रूप जलों को सुख की वृद्धि के निमित्त यहाँ ले आओ ॥ ५ ॥

३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वाङ्गिरा: । देवता—अग्नि, छन्द—त्रिष्टुप्, भुरिक् त्रिष्टुप्)

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः ।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥ १ ॥
यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्व प्स्वन्तः ।
अग्ने सर्वास्तन्वः सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥ २ ॥
यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वाविवेश ।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथेऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥ ३ ॥
श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।
यतो भयोमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज हेडो अग्ने ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! हमारे स्तोत्र पर, तुम जहाँ-जहाँ विशिष्ट पूर्णता वाले हो, वहाँ वहाँ से ही हमारी प्रसन्नता के लिये आओ । आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष, पुष्पफल रहित ओषधियों और पक्व फल वाली ओषधियों से भी यहाँ आओ ॥१॥ हे अग्ने ! जल में जो तुम्हारा रूप है, जंगल में जो तुम्हारा रूप है, ओषधियों में फल पाक रूप है, सब प्राणियों में जो वैश्वानर रूप है, अन्तरिक्ष में जो विद्युत रूप है, अपने उन सब रूपों को एकत्र करके उन सबके सहित हमको धन देते हुये आओ ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी स्वर्ग गमन रूप जो महिमा देवताओं में है, जिस महिमा से तुम पितरों में प्रविष्ट हुए हो, तुम्हारा जो पोषण-कर्म मनुष्यों में वर्तमान हैं, अपनी उन सब महिमाओं के सहित आकर हमको धन प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारे स्तोत्र के श्रवण में समर्थ श्रोतृ वाले हो, तुम अभीष्ट प्रदाता, सबसे जानने योग्य, अतीन्द्रियार्थदर्शी हो । मैं इस स्तोत्र रूप वाणी और मन्त्र-समूह अनुवाकों द्वारा तुम्हारी स्तुति करता हूँ, जिससे अभय प्राप्त हो । तुम हम पर क्रोध करने वाले देवताओं के क्रोध को भी शान्त करो ॥ ४ ॥

४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वाङ्गिरा: । देवता: । अग्नि: । छन्द—जगती; त्रिष्टुप्)

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदा: ।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥ १ ॥
आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥ २ ॥
आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि ।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥ ३ ॥
बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्व देपा देवता: संबभूवुः स सुप्रणीता: कामो अन्वेत्वस्मान् ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! सृष्टि से पूर्व रचे देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अथर्वा रूप ईश्वर ने आहुति दी थी और अग्नि ने उसे देवताओं को पहुँचाने की इच्छा की । उसी इस आहुति को तुम्हारे मुख में डालता हूँ । तीनों शरीरों द्वारा पूजे गये अग्नि देवताओं को हवि प्राप्त करावें । यह हवि स्वाहुत हो ॥१॥ मैं सौभाग्य देने वाली वाणी देवी का पूजन करता हूँ। जैसे बुरे कामों से बचाकर सुन्दर कर्म में प्रेरित करने वाले पुरुष को आगे रखा जाता है, वैसे ही माता के समान मन को वश में करने वाली हमारे द्वारा आगे रखी हुई सरस्वती हमारे लिये अनुकूल हों । मेरा अभीष्ट मेरे लिए विशिष्ट बने, अन्य को प्राप्त न हो । मैं अपने इच्छित को सदा प्राप्त करता रहूँ ॥२॥ हे बृहस्पते ! तुम सब देवताओं के पालने वाले हो । सब वाक्यों की सार रूप वाणी सहित, वाणी को हमारे अनुकूल करने के लिये आगमन करो और हमें सौभाग्यशाली बनाओ ॥३॥ आंगिरस बृहस्पति प्रसिद्ध वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का मुझे देने के लिये स्मरण

करें। जिन बृहस्पति के वश में देवता रहते हैं, वे बृहस्पति इच्छित फल देने वाले हैं, वे हमारे समक्ष आकर अभीष्ट प्रदान करें ॥ ४ ॥

५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वाङ्गिराः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ १ ॥

तीनों लोकों में वास करने वाले मनुष्य देवता आदि के स्वामी तथा महान् धनपति इन्द्र पृथिवी के महान् धन को मुझ हविदाता यजमान को प्रदान करें। वे इन्द्र हमारे द्वारा स्तुत होकर धनों को हमारे समक्ष भेजें ॥ १ ॥

६ सूक्त

(ऋषि—नारायणः । देवता—पुरुषः । छन्द—अनुष्टुप्)

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशांगुलम् ॥ १ ॥
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः ।
तथा व्यक्रामद् विष्वङ्ङशनानशने अनु ॥ २ ॥
तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥ ४ ॥
यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ५ ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ६ ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥ ७ ॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकां अकल्पयन् ॥ ८ ॥
विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ ९ ॥
यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १० ॥

अनंत भुजा, अनंत नेत्र, अनंत चरणों वाले नारायण रस सिन्धु और द्वीपों वाली पृथिवी को अपनी महिमा से व्याप्त करते हुये दश अंगुल वाले हृदयाकाश में प्रतिष्ठित हुये ॥ १ ॥ इस यज्ञ के अनुष्ठाता नारायण अपने तीन पदों सहित स्वर्गलोक में चढ़े । इनका चतुर्थ पाद इस लोक में बारम्बार प्रकट होता है । यह पद भोजनजीवी सब मनुष्य, पक्षी आदि और वृक्ष आदि में सर्वत्र व्याप्त है ॥ २ ॥ सम्पूर्ण विश्व उसी यज्ञानुष्ठाता पुरुष का महान् कर्म है, वह महिमा का भी आश्रय रूप है । इसका चतुर्थ पाद सब भूतों में व्याप्त है । इसके तीन पाद अमृत लोक स्वर्ग में स्थित हैं ॥३॥ विगत, भविष्यत् और वर्तमान जगत सब नारायण रूप ही है । यही पुरुष अमृतत्व का स्वामी है और अन्य भूतों का भी ईश्वर है ॥ ४ ॥ साध्य और वसु नामक देवताओं ने जब यज्ञ पुरुष की कल्पना की, तब इसे कितने प्रकार से कल्पित किया । इसका मुख, भुजा उरु और पाद क्या कहलाते हैं ? ॥ ५ ॥ इसका मुख ब्राह्मण, भुजा क्षत्रिय, ऊरु वैश्य और पाद शूद्र कहलाये ॥ ६ ॥ उसके मन से चन्द्रमा, मुख से इन्द्राग्नि, प्राण से वायु प्रकट हुए ॥ ७ ॥ शिर से स्वर्ग लोक, नाभि से अन्तरिक्ष और पाँवों से पृथिवी लोक प्रकट हुआ । इसके श्रोत्र से दिशायें उत्पन्न हुईं इस प्रकार साध्य आदि देवताओं ने लोकों और वर्णों की योजना बनाई ॥ ८ ॥ सृष्टि के आरम्भ में विराट् उत्पन्न हुआ, विराट् से अन्य पुरुष (यज्ञ) हुआ । वह उत्पन्न होते ही वृद्धि को प्राप्त होता हुआ पृथिवी आदि

लोकों के आगे पीछे व्याप्त होगया और जीवों की देह-रचना की ॥ ९ ॥
देवताओं ने अश्व रूप हवि से साध्य अश्वमेघ यज्ञ को ! ने किया
तब रसोत्पादिका बसन्त ऋतु यज्ञ का घृत और ग्रीष्म ऋतु समिधा होगई
तथा शरद् ऋतु पुरोडाश रूप हवि हुई ॥ १० ॥

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११ ॥
तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥ १२ ॥
तस्माद् यज्ञात्‌ सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ १३ ॥
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्तांश्चक्रे वायव्या नारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ १४ ॥
सप्तास्यासन् परिध्यस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥
मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः ।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥ १६ ॥

सृष्टि के आरम्भ काल में उस पूजा के योग्य पशु को प्रावृट् नामक ऋतु से धोया और उससे साध्य तथा वसु देवताओं ने यज्ञ किया ॥ ११ ॥ उस यज्ञात्मक पशु से अश्व, खिच्चर और गर्दभ उत्पन्न हुये। ऊपर नीचे दाँत वाले, गौऐं, बकरी और भेड़ें भी उससे उत्पन्न हुईं ॥ १२ ॥ उसी अश्व रूप यज्ञ पुरुष से पद्योबद्ध मन्त्र, गीत्यात्मक मन्त्र अधिष्ठान छन्द और अश्लिष्ट पाठ वाले यजुर्मंत्र प्रकट हुये ॥ १३ ॥ उसी ने दधि मिश्रित घृत का संपादन किया। साध्य नामक देवताओं ने उस घृत कर्म को, और वायु ने श्वापद, पक्षी, सरीसृप, बन्दर, हाथी तथा गौ, अश्व, गधे, भेड़, बकरे, ऊँट आदि की रचना की ॥ १४ ॥ साध्यादि देवताओं ने जब अश्वमेघ किया तब यज्ञ पुरुष को पशु यूप में बाँधा और गायत्री आदि सात छन्दों को परिधि

बनाकर इक्कीस समिधाओं की रचना की ॥ १५ ॥ यज्ञ पुरुष से सम्पादित सोम की चार सौ नव्वे महान् दीप्ति वाली रश्मियाँ आदि के मस्तक से उत्पन्न हुईं ॥ १६ ॥

७ सूक्त

(ऋषि—गार्ग्यः । देवता—नक्षत्राणि । छन्द—त्रिष्टुप्)

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥ १ ॥
सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥ २ ॥
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥ ३ ॥
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥ ४ ॥
आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥ ५ ॥

अनेक रूप वाले जो नक्षत्र आकाश में चमकते हैं, वे प्रतिक्षण द्रुतगति से सरकते हैं। उन नक्षत्रों की मैं मन्त्र रूप वाली स्तुति करता हूँ। क्योंकि मैं उनकी विघ्ननाशिनी कल्याणमयी बुद्धि की इच्छा करता हूँ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! कृतिका नक्षत्र हमारे आह्वान के अनुकूल हो। हे प्रजापते ! रोहिणी नक्षत्र भी सुन्दरता से आह्वान योग्य हो। हे सोम ! मृगशिरा नक्षत्र हमारे लिए मङ्गलदायक और आह्वान योग्य हो। हे रुद्र ! आर्द्रा नक्षत्र सुख दे अदिति का पुनर्वसु नक्षत्र सत्यवाणीप्रद हो। बृहस्पति का पुष्य नक्षत्र कल्याण दे, सर्प का अश्लेषा नक्षत्र तेजस्वी बनावे और पितृ देवता का मघा नक्षत्र मेरा अभीष्ट पूर्ण करने वाला हो ॥ २ ॥ अर्यमा का पूर्वाफाल्गुनी, भग का उत्तरा फाल्गुनी, सविता का हस्त, इन्द्र का चित्रा नक्षत्र मुझे पुण्यमय

सुख दें। वायु का स्वाति, इन्द्र का राधा और विशाखा तथा मित्र का अनुराधा सुख से आह्वान करने योग्य हो। इन्द्र का ज्येष्ठा नक्षत्र हमें सुखी करे और पितर देवताओं का, व्याधियों से पूर्ण मूल नक्षत्र भी मेरे लिए कल्याणकारी हो ॥ ३ ॥ जल देवता का पूर्वाषाढ़ा मुझे सुभक्ष्य अन्न दे। विश्वे देवाओं का, उत्तराषाढ़ा हमारे सामने बलदायक अन्नमय रस दे। ब्रह्म देवता का अभिजित् नक्षत्र मुझे पुण्यप्रद हो। विष्णु का श्रवण, वसु देवता का धनिष्ठा नक्षत्र भी मेरा भले प्रकार पालन करे ॥ ४ ॥ इन्द्र का शतभिषा, अजैकपाद का पूर्वा भाद्रपद और अहिर्बुध्न्य का उत्तरा भाद्रपद हमारे लिए महान् फल देते हुये सुसज्जित गृह प्रदान करने वाले हों। पूषा का रेवती और अश्विद्वय का अश्वयुक् नक्षत्र मुझे सौभाग्यशाली बनाये तथा यम का भरणी नक्षत्र मुझे ऐश्वर्य में प्रतिष्ठित करे ॥ ५ ॥

८ सूक्त

(ऋषि—गार्ग्यः। देवता- नक्षत्राणि। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥ १ ॥
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योग भजन्तु मे।
योगं प्र पद्ये क्षेम च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ २ ॥
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥ ३ ॥
अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम्।
सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान्त्सवितः सुव ॥ ४ ॥
अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम्।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥ ५ ॥
इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥ ६ ॥
स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ ७ ॥

प्रकाश, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, पर्वत और दिशाओं में नक्षत्र दिखाई देते हैं और जिन नक्षत्रों को प्रदीप्त करते हुए चन्द्रदेव प्रकट होते हैं, वे नक्षत्र मुझे सुख प्रदान करें ॥ १ ॥ सुख का दर्शन कराने वाले जो अट्ठाईस नक्षत्र हैं वे मुझे फल प्रदान करने के लिए समान बुद्धि वाले हों। मैं नक्षत्रों का सहयोग पाकर अलभ्य वस्तु की प्राप्ति को सिद्ध करूँ और प्राप्त हुई वस्तु की रक्षा का सामर्थ्य भी पाऊँ। दिवस और रात्रि को मेरा नमस्कार है ॥२॥ सुन्दर प्रातःकाल मुझे सुख प्रदान करे, सायंकाल मुझे सुखी करें। दिवस और रात्रि भी सुख दें। मैं जिस प्रयोजनीय नक्षत्र में प्रस्थान करूँ, उसमें हरिण आदि शुभ शकुन के रूप में अनुकूल गति वाले हों। हे अग्ने ! हवि पात्र नक्षत्रों को हमारी हवियाँ पहुँचाकर हमारी प्रशंसा करते हुये फिर आगमन करो ॥ ३ ॥ हे पवित्रदेव ! सब नक्षत्र सहित तुम अनुत्व (टोक) परिहव, कठोर भाषण, वर्जित स्थल प्रवेश, खाली बर्तन और छींक आदि अपशकुनों और दुर्निमित्तों को हमसे पृथक् करो ॥ ४ ॥ अहित करने वाली छींक हमसे दूर हो, धन प्राप्ति के निमित्त भाग में शृगाल-दर्शन, नपुंसक-दर्शन निषिद्ध है, यह सब हमारे पाप का शमन करने वाले हों ॥ ५ ॥ जो इन्द्र जिन दिशाओं को आँधी चलती हुई धुँधला करती है, उन अन्धकार से ढकी दिशाओं को अनुकूल रूप से स्थित करते हुए मेरे लिए कल्याण करने वाली करो ॥ ६ ॥ हमारा भय दूर हो। दिन और रात्रि को नमस्कार है हमारे लिए सदा मङ्गल हो ॥ ७ ॥

६ सूक्त

(ऋषि—शन्तातिः। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—बृहती; अनुष्टुप्; प्रभृति)

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥ १ ॥
शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥ २ ॥
इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता।

यथैव ससृजे घोरं तथैव शान्तिरस्तु नः ॥ ३ ॥

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥ ४ ॥

इमानि यानि पंचेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा-
संशितानि । यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥ ५ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥ ६ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वांछमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥ ७ ॥

शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् ।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥ ८ ॥

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः ।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥ ९ ॥

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥ १० ॥

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥ ११ ॥

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥ १२ ॥

यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं अस्त्वभयं मे अस्तु ॥ १३ ॥

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति-
र्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः

शान्तिः शान्तिभिः । ताभिः शान्तिभिः सर्वं शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव-शमस्तु नः ॥ १४ ॥

अपने कारण से उत्पन्न दोषों का शमन करता हुआ द्युलोक हमें सुख दे, विशाल अन्तरिक्ष और पृथिवी भी हमें सुख शान्ति प्रदान करें। समुद्र के जल और ओषधियाँ भी हमें शान्ति दें ॥ १ ॥ कार्य कारण और न हो सकने वाला कार्य भी मुझे सुख दें । मेरे पूर्व पापों के फल, भोग भी शांत हों । मेरा दुष्कर्म और विरुद्धाचरण भी शान्ति को प्राप्त हों । भूत काल का और आगे होने वाले का दोष और वर्तमान काल का कर्म दोष भी शांत होता हुआ सुख दे ॥ २ ॥ परम स्थान की निवासिनी, मन्त्रों द्वारा उत्कृष्ट और विद्वानों द्वारा अनुभव में लाई हुई परमेष्ठी की वाणी रूप सरस्वती, जो शाप आदि में भी उच्चरित होती है, हमारे लिए सुख देने वाली हो ॥ ३ ॥ परमेष्ठी द्वारा विरचित संसार का मूल कारण रूप मन, जो घोर कर्म करने वाला है, वही मन हमारे लिए होने वाले घोर कर्म को शांत करने वाला हो ॥ ४ ॥ जिन पंचेन्द्रियों को मैंने घोर कर्म में प्रयुक्त किया था, वह ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे घोर कर्म की शान्ति करें ॥ ५ ॥ दिन के अभिमानी देवता मित्र, रात्रि के अभिमानी देवता वरुण, विष्णु, प्रजापति, इन्द्र, बृहस्पति और अर्यमा देवता हमको शांति दें ॥ ६ ॥ मित्र, वरुण, सूर्य, अन्तक, पृथिवी और अन्तरिक्ष में होने वाले उत्पात और आकाश में विचरण करने वाले ग्रह हमारे लिए शान्ति करने वाले हों ॥ ७ ॥ कांपती हुई पृथिवी, कम्प के दोष को दूर करती हुई शांति देने वाली हो । ज्वाला रूप से गिरने वाली बिजलियों वाला स्थान भी सुखदायक हो । दूध के स्थान पर रक्त देने वाली धेनु तथा फटती हुई पृथिवी यह भी हमारे दोषों को शांत करें ॥ ८ ॥ उल्काओं के आघात से स्थान च्युत नक्षत्र हमें शांति दें, शत्रुओं के कृत्यादि अभिचार कर्म सुख दें, भूमि खोद कर हड्डी और केश आदि लपेट कर बनाई गई विष पुत्तलिकाएं हमारे लिए शांतिप्रद हों । विद्युत अपने देखने से प्राप्त हुई व्याधि को दूर करें । राष्ट्र में होने वाले विघ्न भी शांत हों ॥९॥ चन्द्र-मण्डल

के ग्रह, राहू से ग्रस्त सूर्य, धूमकेतु का अनिष्ट और रुद्र के तीक्ष्ण सन्ताप देने वाले उपद्रव, यह सभी शांति करने वाले हों ॥ १० ॥ ग्यारह रुद्र, आठ वसु, बारह आदित्य, इन्द्रादि देवता, बृहस्पति और सब अग्नियाँ हमको शांति दें ॥ ११ ॥ ब्रह्म, प्रजापति, धाता, और सब लोक, चारों वेद, सप्तर्षि, अग्नियाँ यह सब मुझे कल्याण देने वाले हों। इन्द्र ब्रह्मा, विश्वेदेवा और सब देवता मेरा कल्याण करें ॥ १२ ॥ ऋषिगण शांति करने वाली जिन-जिन वस्तुओं के ज्ञाता हैं, वे सब वस्तुएँ मुझे सुख देने वाली हों, सब ओर से मुझे सुख और अभय की प्राप्ति हो ॥ १३ ॥ पृथिवी शांति दे, द्यौ शांति दे जल, ओषधियाँ, वनस्पतियाँ, विश्वेदेवा और सभी देवता मुझे शांति दें। शांति से बढ़ कर शांति हमको मिले। विपरीत फल, क्रूर फल और पापमय फल जो हमें मिलने वाला हो, वह सब शांत हों, वह कल्याण करने वाला हों ॥ १४ ॥

१० सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—त्रिष्टुप्)

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रा सोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १॥
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ॥
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४॥
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥
शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।

शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥
शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥
शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥
शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥९॥
शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥१०॥

हे इन्द्राग्ने ! तुम अपनी रक्षा बुद्धि से हमारे दुःखों को दूर करो। यजमान से हवि प्राप्त करके इन्द्र और वरुण हमारा मङ्गल करें। सोम और इन्द्र सुख देने को तत्पर हों। इन्द्र और पूषा देवता घोर युद्ध में हमारे संकट और भयों को नष्ट करने वाले हों ॥ १ ॥ भग देवता, नराशंस देवता हमारा कल्याण करने वाले हों, बुद्धि, धन, वाणी यह सब हमें सुख दें, अर्यमा हमारे लिए मङ्गल करने वाले हों। देवताओं की स्तुतियां हमारा कल्याण करने में समर्थ हों ॥ २ ॥ धाता, वरुण, पृथिवी, द्यावापृथिवी और पर्वत हमारे लिए मङ्गल करने वाले हों। देवताओं की स्तुतियां हमारा कल्याण करने में समर्थ हों ॥ ३ ॥ ज्योतिर्मुख अग्नि, मित्र वरुण और अश्विनीकुमार हमारा मङ्गल करें। पुण्यात्माओं के कर्म हमारे लिए कल्याणकारी हों। बहते हुए वायु हमको शांतिप्रद हों ॥ ४ ॥ पूर्वाहुति यज्ञ में आकाश पृथिवी हमारे लिये कल्याण करने वाली हों। अंतरिक्ष हमारी दृष्टि को सुख दे। ओषधि, वृक्ष, लोकपाल, विजयी इन्द्र हमारी मङ्गल कामना करें ॥५॥ वसुओं सहित इन्द्र, आदित्यों सहित वरुण, रुद्रों सहित त्वष्टा देव हमारे लिए कल्याण योजना करते हुए हमारी स्तुतियों को श्रवण करें ॥६॥ निष्पन्न सोम, स्तोत्र रूपात्मक मन्त्र, सोम कूटने का पाषाण और सोम से सम्पादित होने वाले यज्ञ हमारा मङ्गल करें, वेदी हमारे लिये कल्याण-कारिणी हो।

प्रचुरता से उत्पन्न होने वाली हवियाँ भी हमारा कल्याण करें ।। ७ ।। महान् तेजस्वी आदित्य हमारा मङ्गल करते हुए उदय को प्राप्त हों, चारों दिशायें, स्थिर पर्वत, नदियाँ और उनके जल हमारे लिए मङ्गलमय हों ।।८।। देवमाता अदिति हमको सुख दे, विष्णु, पूषा और मरुद्गण हमारे लिए मङ्गल करें, जल और वायु हमको शान्ति देने वाले हों ।। ९ ।। भय से त्राण करने वाले सविता, उषा की अभिमानी देवता, विभाती, वर्षा देने वाले पर्जन्य और क्षेत्रपालक शम्भु हमारा कल्याण करें ।। १० ।।

सूक्त ११

(ऋषि--वशिष्ठः । देवता--मन्त्रोक्ताः छन्दः--त्रिष्टुप्)

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ।। १ ।।
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः।२
शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ।। ३ ।।
आदित्या रुद्रो वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ।।४।।
ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।। ५ ।।
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय । ६ ।।

सत्य का पालन करने वाले देवता हमारे लिए मङ्गल करें । गवाश्व शान्ति प्रदायक हों, ऋभु और पितर हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होते हुए सुख प्रदान करें ।। १ ।। अनेक स्तोत्र वाले इन्द्रादि देवता हमारा मङ्गल करें, सरस्वती हमारा कल्याण करें, दानशील विश्वेदेवा हमें सुखी करें, आकाश, पृथिवी और जल में उत्पन्न देवता हमारा कल्याण करें ।। २ ।। अजैकपाद

नामक देवता हमारे लिए शान्ति देने वाले हों, अहिर्बुध्न्य देवता, अपान्नपात देवता, समुद्र और मरुतों की माता पृश्नि यह सब हमारा मंगल करें ॥ ३ ॥ आदित्य, रुद्र और वसु देवता इस नये स्तोत्र को स्वीकार करें, पृश्नि से उत्पन्न यज्ञार्ह देवता तथा द्युलोक के और पृथिवी के देवता भी हमारे इस स्तोत्र का श्रवण करें ॥४॥ देवताओं के ऋत्विज, यज्ञार्ह, मनु के पुत्र तथा अमृतत्व प्राप्त सत्यनिष्ठ देवता हमको विस्तृत यश दें। हे देवताओ ! कल्याणमय रक्षा साधनों के द्वारा तुम हमारा सदा पालन करते रहो ॥ ५ ॥ हे दिन के अभिमानी देवता मित्र, हे राज्याभिमानी देव वरुण ! रोगों की शांति और भयों के दूर होने का फल हमको मिले। हम खेत आदि रूप प्रतिष्ठा और धन को प्राप्त करें। आकाश और सबकी आश्रयभूत पृथिवी को नमस्कार है ॥ ६ ॥

सूक्त १२

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—उषा । छन्दः—त्रिष्टुप्)

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता।
अया वजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १ ॥

अपनी बहिन रात्रि के अन्धकार को, उषा आते ही हटा देती है और प्रकाश करती हुई इहलौकिक, पारलौकिक मार्गों को खोलती है। इस उषा से हम देवताओं के लिए हव्य रूप अन्न पावें और सुन्दर अपत्य वाले होते हुयं सौ हेमन्तों तक जीवित रहते हुए सुखी हों ॥ १ ॥

सूक्त १३

(ऋषि—अप्रतिरथः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत् ॥१॥
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥ २ ॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ ३ ॥
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यु ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥४॥
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन् ॥५॥
इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु स रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥ ६ ॥
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ७ ॥
बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जञ्छत्रून् प्रमृणन्नमित्रनमस्माकमेध्यविता तनूनाम् ॥ ८ ॥
इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभंजतीनां जयन्तीनां मरुतो शर्धं उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ १० ॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता हवेषु ॥ ११ ॥

मैं देवताओं से वैर करने वाले राक्षसों को जीतने वाली इन्द्र की आयुष-वर्धक और अभीष्ट वर्षक भुजाओं का कल्याण के लिए पूजन करता हूँ। १ ॥ द्रुतकर्मा, बुद्धि को तीक्ष्ण करने वाले, भयङ्कर, विद्युतों के प्रेरक, शत्रु-नाशक, स्वयं समर्थ इन्द्र शत्रु सेना के जीतने वाले हैं, अतः इच्छित कामनाओं की पूर्ति के लिए उन्हीं का सहारा लेना चाहिए ॥२॥ विजयशील, रणक्षेत्र में आसक्ति वाले, शत्रुओं को रुलाने वाले, धनुर्धारी, अभीष्टवर्षक इन्द्र की सहायता से विजय को प्राप्त होओ। हे वीरो! उन्हीं के अनुग्रह से शत्रु को वश में करो ।। ३ ॥ खड्गधारी, बाणधारी, वीरों से युक्त इन्द्र अपने

वीर अनुचरों को शत्रु के सामने भेजते हैं और युद्ध की कामना से आने वाले शत्रुओं को जीतते हैं। यह सोमपायी, प्रचण्ड धनुष वाले, भुजबल में प्रवृद्ध और शत्रुओं के संहारक हैं। हे वीरो! उन इन्द्र की कृपा से विजय प्राप्त करो ॥ ४ ॥ यह इन्द्र महाबली, अन्नवान, धनवान, शत्रुओं को वश करने वाले, वीरों से युक्त हैं, यह शत्रुओं के बल को सामने जाते ही जीतते और उनके गवादि धन को अपने वश में कर लेते हैं। हे इन्द्र! तुम ऐसे गुणों से युक्त हो, इसलिए इस विजयात्मक रथ पर चढ़ो ॥ ५ ॥ हे समान कर्म और मति वाले वीरो! तुम इन वीरकर्मा इन्द्र को आगे बढ़ाकर उत्साह में भर जाओ। शत्रु-नाश मे प्रवृत्त इन्द्र के साथ बढ़कर तुम भी शत्रु के नाश करने वाला कर्म करो। यह इन्द्र शत्रु के ग्रामों, गौओं और संग्राम भूमि को जीत लेते हैं। इनकी भुजाएँ वज्र के समान दृढ़ हैं। यह अपने पराक्रम से ही शत्रु-सेना का मर्दन कर डालते हैं ॥ ६ ॥ यह शत्रुओं को चीर कर घुसे चले जाते हैं। अनेक प्रकार के क्रोध करते हुए यह प्रचण्ड पराक्रम वाले इन्द्र शत्रुओं की सेना को वश में कर लेते हैं। इनके सामने ठहरने का कोई साहस नहीं करता। ऐसे इन्द्र रण क्षेत्र में हमारी सेना के रक्षक हों ॥ ७ ॥ वे इन्द्र देवताओं का पालन करने वाले हैं। हे इन्द्र! तुम हमारे शत्रुओं को मारते हुए रथ सहित बढ़ते चलो। शत्रुओं को, अमित्रों को मारो और हमारी रक्षा करते हुए प्रवृद्ध होओ ॥८॥ इन्द्र हमारे शत्रुओं को परास्त करने वाली विजयवाहिनी सेनाओं के नेता हों। बृहस्पति पूर्व भाग में, सोम और यज्ञ दक्षिण में तथा मरुद्गण इनके बीच में चलें ॥ ९ ॥ शस्त्रास्त्र वर्षक इन्द्र, शत्रु को भगाने वाले वरुण, मरुद्गण और आदित्य शत्रुओं को वश में करने वाली शक्ति के सहित प्रकट हों और शत्रुओं को इस लोक से भी गिराने में समर्थ अत्यन्त यश वाले देवताओं के जय-घोष छा जायें ॥१०॥ युद्धों का अवसर प्राप्त होने पर इन्द्र हमारी रक्षा करें। हमारे आयुध शत्रुओं पर विजय पाने में समर्थ हों। हमारे वीर सैनिक विजय पाकर उल्लासमय हों। हे देवताओ! संग्राम भूमि में तुम हमारे रक्षक होओ ॥११॥

१४ सूक्त

(ऋषिः—अथर्वा । देवता—द्यावापृथिव्यौ । छंदः—त्रिष्टुप्)

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥१॥

श्रेष्ठ फल रूप लक्ष्य स्थान को मैं प्राप्त हो गया हूँ । आकाश और पृथिवी मेरे लिए मङ्गलमय हों । चारों दिशाऐं निरुपद्रव हों । हे सपत्न हम तुम्हारे द्वेषी नहीं हैं इसलिए हमको अभय प्राप्त कराओ ॥ १ ॥

१५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—इन्द्र, मन्त्रोक्ताः । छन्द—बृहती; जगती-पंक्ति; त्रिष्टुप्)

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवंछग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १ ॥
इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥ २ ॥
इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः ।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु ॥ ३ ॥
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्व१र्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥ ४ ॥
अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ५ ॥
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम अभय देने वाले हो । हमारे भय के कारण रूप उपद्रव को दूर करते हुए हमारी रक्षा करो । तुम अपने रक्षा-साधनों को हमारी

ओर प्रेरित करो ॥१। हम उन पूज्य इन्द्र को कामना पूर्ति के लिए आहून करते हैं। हम दुपाये, चौपायों से युक्त हों हमारी कामना पूर्ति में बाधक शत्रु सेना दूर रहे। हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओं को सब ओर से नष्ट कर डालो।। २ ॥ वृत्रासुर के ताड़न करने वाले, वरण करने योग्य इन्द्र हमारी रक्षा करें। अन्त, मध्य, पीछे, आगे, सर्वत्र वे इन्द्र हमारी रक्षा करने वाले हों॥ ३। हे इन्द्र ! तुम सबके जानने वाले हो, हमें इहलोक और परलोक सुख प्राप्त कराओ। स्वर्ग में ज्योतिर्मान सूय हमको अभय और कल्याण के देने वाले हों। हे इन्द्र ! तुम्हारी शत्रुओं का संहार करने में समर्थ महाबली भुजाओं को हम अपनी रक्षा के लिए पावें ॥ ४ ॥ अन्तरिक्ष हमको अभयप्रद हो आकाश-पृथिवी भी हमको अभयता देने वाली रक्षा दें। चारों दिशाएं भी हमको सब ओर से अभय प्रदान करने वाली हों ॥ ५ ॥ मित्रों से अभय प्राप्त हो, शत्रुओं से भी हम भयभीत न हों, प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के शत्रु हमको भय के कारण न बनें दिवस, रात्रि और सब दिशाएं मुझे अभय प्रदान करती हुई मित्र के समान हित करने वाली हों ॥ ६ ॥

१६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता:—मन्त्रोक्ता:। छन्द—अनुष्टुप्; शक्वरी)

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभय कृतम्। सविता मा दक्षिणत-उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १ ॥
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम्।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥ २ ॥

हे सवितादेव ! हे पत्नियों सहित देवताओ ! पूर्व और पश्चिम दिशाओं को हमारे लिए शत्रुओं से शून्य करो। उत्तर दिशा में शचिपति इन्द्र हमारी रक्षा करें और दक्षिण में सूर्य हमारे रक्षक हों ॥१॥ सूर्यमंडल में आदित्य मेरी रक्षा करें, पृथिवी में अग्नि मेरी रक्षा करें, पूर्व दिशा में

इन्द्राग्नि मेरे रक्षक हों। दिशाओं में अग्नि रक्षा करने वाले हों, वे भूतपिशाचों का मर्दन करने वाले, कवच रूप होते हुए रक्षा करें ॥ २ ॥

१७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्दः—जगती; शक्वरी)

अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि-ददे स्वाहा ॥ १ ॥

वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा ॥ २ ॥

सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा ॥ ३ ॥

वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ४ ॥

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ५ ॥

आपो मौषधीमतीरेतस्या दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रेमि। त मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ६ ॥

विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु दस्मिन् क्रमे तस्मि-

च्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ७ ॥

इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ८ ॥

प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ९ ॥

बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ १० ॥

पृथिवी में अग्नि और पूर्व में वसु देवता मेरे रक्षक हों । पाद-प्रक्षेप और पाद प्रक्षेप के स्थान में, जहां जाऊं वहीं यह अग्नि मेरी रक्षा करने वाले हों । मैं अपनी रक्षा के निमित्त वसुमान अग्नि का आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥ अन्तरिक्ष में और पूर्व दिशा में वायु मेरे रक्षक हों । पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थान में, जहाँ भी जाऊं वहीं यह वायु मेरी रक्षा करें । मैं अपनी रक्षा के निमित्त ही वायु देवता की शरण में जाता हूँ, वह मेरी सब ओर से रक्षा करें ॥ २ ॥ सोम और रुद्र दक्षिण में मेरे रक्षक हों । पाद प्रक्षेप और पाद प्रक्षेप के स्थान में भी यह दोनों मेरी रक्षा करें । जिस शय्या पर जा रहा हूँ, वहाँ सब ओर से सोम मेरे रक्षक हों । मैं अपनी रक्षा के निमित्त सोम देवता का आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥ आदित्यों के सहित वरुण दक्षिण दिशा में मेरे रक्षक हों । पाद प्रक्षेप में तथा पाद प्रक्षेप के स्थान में मेरी रक्षा करें । शय्या रूप पुर में वे वरुण सब ओर से रक्षक हों । मैं अपनी रक्षा के लिए अपने को वरुण देवता के लिए सौंपता हूँ । ४॥ द्यावा पृथिवी सहित सूर्य पश्चिम दिशा में मेरे रक्षक हों । पाद प्रक्षेप में और

पाद प्रक्षेप के स्थान में यह सूर्य मेरे रक्षक हों । शय्या रूप पुर में सूर्य सब ओर से मेरी रक्षा करें । मैं अपनी रक्षा के लिये अपने को सूर्य के लिये सौंपता हूँ ॥ ५ ॥ ओषधि युक्त जल इस दिशा में मेरे रक्षक हों । पाद-प्रक्षेप में और पाद-प्रक्षेप के स्थान में तथा जिस शय्या रूप पुर को मैं प्राप्त हो रहा हूँ वहाँ सर्वत्र जल मेरी रक्षा करें ! मैं अपनी रक्षा के लिए अपने को जल के लिए सौंपता हूँ ॥६॥ विश्व के रचयिता परमेश्वर सप्त ऋषियों सहित उत्तर दिशा में मेरे रक्षक हों। पाद-प्रक्षेप में और पाद प्रक्षेप के स्थान में यह सप्तर्षि रूप विश्वकर्मा मेरे रक्षक हों। शय्या रूप पुर में भी वे सब ओर से मेरी रक्षा करें। मैं अपनी रक्षा के लिए अपने को उन्हीं रक्षा करने वाले सप्तर्षि मय विश्वकर्मा को सौंपता हूँ ॥ ७ ॥ मरुद्गण युक्त इन्द्र उत्तर दिशा में मेरे रक्षक हों। पाद प्रक्षेप में और पाद प्रक्षेप के स्थान में यह मरुद्गण युक्त इन्द्र मेरे रक्षक हों । शय्या रूप जिस पुर में मैं जा रहा हूँ वहाँ भी यह मेरी सब ओर से रक्षा करें। मैं अपनी रक्षा के लिए उन्हीं मरुत्वान इन्द्र को सौंपता हूँ ॥८॥ विश्व की उत्पत्ति के कारण रूप प्रजापति ध्रुव दिशा में मेरे रक्षक हों। पाद प्रक्षेप में तथा पाद-प्रक्षेप के स्थान में और जिस शय्या रूप पुर में मैं जारहा हूँ वहाँ भी सब ओर यह प्रजापति मेरे रक्षक हों। मैं अपनी रक्षा के लिए अपने को उन्हें सौंपता हूँ ॥ ६ ॥ देवताओं के हितैषी बृहस्पति सब देवताओं सहित ऊर्ध्व दिशा में मेरे रक्षक हों । पाद प्रक्षेप में तथा पाद-प्रक्षेप के स्थान में जिस शय्या रूप पुर में, मैं जा रहा हूँ वहाँ भी सब ओर यह बृहस्पति मेरी रक्षा करें। मैं अपनी रक्षा के लिए अपने को उन्हीं बृहस्पति देवता को सौंपता हूँ ॥ १० ॥

१८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ताः । छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्)

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभिदासान् ॥१॥
वायुं तेन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु ।

ये माघायव एतस्‍ । दिशोऽभिदासात् ।.२।।
सोम ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ।।३।।
वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ।।४।
सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव प्रतीच्या दिशोऽभिदासात ।।५।।
अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ।.६।।
विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ।।७।।
इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ।।८।।
प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ।।९।।
बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ।।१०।।

दूसरों की हिंसा-कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले की पूर्व की ओर से आकर हिंसा करना चाहते हैं वे वसुवंत अग्नि में पड़ते हुये नाश को प्राप्त हों ।।१।। दूसरों की हिंसा-कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को पूर्व दिशा से आकर मारना चाहते हैं, वे शत्रु अंतरिक्ष युक्त वायु को प्राप्त होकर नष्ट हों ।। २ ।। दूसरों की हिंसा कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को दक्षिण दिशा से आकर मारना चाहते हैं, वे शत्रु रुद्रवंत सोम को प्राप्त होकर नष्ट हों ।।३।। दूसरों की हिंसा-कामना वाले जो शत्रु रात्रि अनुष्ठान करने वाले को दक्षिण

दिशा से आकर मारना चाहते हैं, वे शत्रु आदित्यवान् वरुण के पाश को प्राप्त होते हुये नष्ट हों ॥४॥ दूसरों की हिंसा कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को पश्चिम दिशा से आकर मारना चाहते हैं, वे शत्रु द्यावापृथिवी को अपने प्रकाश से प्रकट करने वाले सूर्य को प्राप्त होते हुये नष्ट हों ॥५॥ दूसरों की हिंसा कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को पश्चिम दिशा से आकर मारना चाहते हैं, वे शत्रु ओषधिमय जल से नाश को प्राप्त हों ॥ ६ ॥ दूसरों की हिंसा कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को उत्तर दिशा से आकर हिंसित करना चाहते हैं, वे शत्रु सप्तर्षिमय विश्वकर्मा से नाश को प्राप्त हों ॥ ७ ॥ हिंसा-कामना वाले जो शत्रु, मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले का उत्तर दिशा से आकर वध करना चाहते हैं, वे शत्रु मरुत्वान् इन्द्र को प्राप्त होते हुये नष्ट हों ॥ ८ ॥ जो पापरूप हिंसा वाले शत्रु मुझ रात्रि अनुष्ठाता को ध्रुव दिशा से आकर मारना चाहें, वे प्रजनन से युक्त प्रजापति को पाते हुए नष्ट हों ॥९॥ जो पाप रूप हिंसा वाले शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को ऊर्ध्व दिशा से आकर मारना चाहें, वे सब देवताओं सहित बृहस्पति के द्वारा नाश को प्राप्त हों ॥१० ॥

१६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ताः । छन्द—बृहती; पङ्क्ति)

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१॥
वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥२॥
सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥३॥
चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥४॥

सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म यच्छतु ॥५॥

यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥६॥

समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥७॥

ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥८॥

इन्द्रो वीर्येणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥९॥

देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१०॥

प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥११॥

मिश्र नाम वाले अग्निदेव अपने आश्रय स्थान पृथिवी से जिस पुर की रक्षा के लिये उठते हैं, उस शय्या युक्त पुर में तुम प्रजावान्, पत्नीवान् राजा को प्रविष्ट करता हूँ। वह पुर अग्नि देव द्वारा रक्षित है तुम उसमें पहुँच कर शय्या, भवन आदि प्राप्त करो। वह पुरी तुम्हारे लिये अभेद्य कवच के समान सुख देने वाली हो ॥ १ ॥ वायु अपने स्थान अंतरिक्ष से जिस पुर की रक्षा के लिये चलते हैं, वह पुर वायु द्वारा पूर्णतया रक्षित होता है। उस शय्या, गृह आदि से युक्त पुर में, मैं तुम प्रजा, पत्नी से सम्पन्न राजा को प्रविष्ट करता हूँ। तुम उसमें पहुँच कर शय्या भवन आदि प्राप्त करो। वह पुरी तुम्हारे लिये अभेद्य कवच के समान सुख देने वाली हो ॥२॥ आदित्य अपने स्थान स्वर्ग लोक से जिस पुर की रक्षा के लिये उदित होते हैं, वह पुर उनके द्वारा पूरी तरह सुरक्षित है। उस शय्या, गृह आदि से युक्त पुर में

तुम प्रजा, पत्नी से युक्त राजा को प्रविष्ट करता हूँ । तुम उसमें पहुँच कर निवास करो । वह पुर तुम्हारे लिये अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ।।३।। जिस पुर की रक्षा के लिए नक्षत्रवान् चन्द्रमा उदय होते हैं, वह पुर उन चन्द्रदेव द्वारा भले प्रकार रक्षित है । उस शय्या, भवन आदि से सम्पन्न पुर में तुम प्रजा और पत्नी वाले राजा को प्रविष्ट करता हूँ । तुम उसमें पहुँच कर निवास करो । वह पुर तुम्हारे लिये अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ।।४।। जिस पुर की रक्षा के लिये सोम ओषधियों सहित प्रकट होते हैं, वह पुर उन सोम से भले प्रकार रक्षित है । उस शय्या और भवन आदि से सम्पन्न पुर मे तुम प्रजा और पत्नी वाले राजा को प्रविष्ट करता हूँ । तुम उसमें पहुँचकर निवास करो । वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ।।५।। जिस पुर की रक्षा के लिये दक्षिणा युक्त यज्ञ प्रकट हुआ है, वह पुर यज्ञ से रक्षित है । उस शय्या और भवन आदि सम्पन्न पुर में तुम प्रजा और पत्नी सहित राजा को प्रविष्ट करता हूँ । तुम उसमें पहुँचकर निवास करो । वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ।। ६ ।। जिस पुर के रक्षार्थ नदियों सहित समुद्र उद्यत हुआ है, वह पुर समुद्र के जल से रक्षित है । उस शय्या और भवन आदि से युक्त पुर में तुम प्रजा पत्नी सहित राजा को प्रविष्ट करता हूँ । तुम उसमें पहुँचकर निवास करो । वह पुर तुम्हारे लिये अभेद्य कवच के समान सुख देने वाला हो ।। ७ ।। ब्रह्मचारियों से युक्त ब्रह्म जिस पुर की रक्षा करने को तत्पर हुए हैं, वह पुर ब्रह्म से भले प्रकार रक्षित है । उस शय्या और भवन आदि से युक्त पुर में तुम प्रजा और पत्नी सहित राजा को प्रविष्ट करता हूँ । तुम वहाँ पहुँच कर निवास करो । वह पुर तुम्हारे लिये अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ।। ८ ।। अपने भुजबल सहित इन्द्र जिस पुर की रक्षा करते हैं, वह पुर उनके द्वारा भ. प्रकार रक्षित है । उस शय्या और भवनादि से युक्त पुर में तुम राजा को पत्नी और पुत्रों सहित प्रविष्ट करता हूँ । तुम वहां जाकर निवास करो । वह पुर तुम्हारे लिये अभेद्य कवच के समान सुख देने वाला हो ।। ९ ।। जिस पुर की रक्षा अमृत के सहित देवता करते हैं, वह पुर उन देवताओं द्वारा रक्षित है । उस भवन

शय्या आदि से सम्पन्न सुन्दर पुर में तुम राजा को पत्नी-पुत्रादि सहित प्रविष्ट करता हूँ। तुम उसमें जाकर निवास करो। वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ॥ १० ॥ मनुष्य आदि प्रजाओं सहित जिस पुर की प्रजापति ने रक्षा की है, वह पुर उन प्रजापति द्वारा भले प्रकार रक्षित है। तुम राजा को पत्नी-पुत्रादि सहित उस सुन्दर पुर में प्रविष्ट करता हूँ। तुम उसमें जाकर रहो। वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ॥ ११ ॥

२० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ता। छन्द—त्रिष्टुप्; जगती, बृहती)

अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः ॥ १ ॥
यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥ २ ॥
यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः।
इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ॥ ३ ॥
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः।
वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्रापत् प्रातीचिका ॥ ४ ॥

जिस मरण कर्म को शत्रु ने गुप्त रूप से किया है, उससे इन्द्र, अग्नि, धाता, सविता, बृहस्पति, सोम, वरुण, अश्विद्वय, यम और पूषा हमारे कवचधारी राजा की रक्षा करें। १॥ प्रजा-रक्षण के लिए प्रजापति ने जो कवच बनाया है और जिन कवचों को, मातरिश्वा प्रजापति और दिशा, महादिशा, अवान्तर दिशाऐं रक्षार्थ धारण करती हैं, वे कवच अनेक हों ॥ २ ॥ जिस कवच को असुर से युद्ध करते समय देवताओं ने धारण किया था और इन्द्र ने भी जिसे पहना था, वह कवच सब ओर से हमारी रक्षा करने वाला हो ॥ ३ ॥ द्यावा पृथिवी, अग्नि, सूर्याग्नि मुझ युद्धाभिलाषी को रक्षण-साधन रूप कवच प्रदान करें। हमारे राजा के समीप शत्रु-सेना गुप्त रीति से न पहुँच सके ॥ ४ ॥

२१ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—छन्दांसि । छन्द—बृहती)

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब् बृहती पंक्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यै ॥ १ ॥

गायत्री छन्द, उष्णिक् छन्द, अनुष्टुप् छन्द, बृहती छन्द, पंक्ति छन्द, छन्द, त्रिष्टुप् छन्द और जगती छन्द के लिए आहुति स्वाहुत हो ॥ १ ॥

२२ सूक्त

(ऋषि—अङ्गिराः । देवता—मन्त्रोक्ताः, । छन्द—जगती प्रभृति)

आङ्गिरसानामाद्यैः पंचानुवाकैः स्वाहा ॥ १ ॥ षष्ठाय स्वाहा ॥ २ ॥
सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥ ३ ॥ नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥
हरितेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥ क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥
पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥ प्रथमेभ्यः शंखेभ्यः स्वाहा ॥ ८ ॥
द्वितीयेभ्यः शंखेभ्यः स्वाहा ॥९॥ तृतीयेभ्यः शंखेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥
उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥ ११॥ उत्तमेभ्यः स्वाहा ॥ १२ ॥
उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥१३॥ ऋषिभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥
शिखिभ्यः स्वाहा ॥ १५ ॥ गणेभ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥
महागणेभ्यः स्वाहा ॥ १७ ॥
सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ॥ १८ ॥
पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥१९॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥२०॥
ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥ २१ ॥

आंगिरसों के लिए आदि में पांच अनुवाकों से यह आहुति स्वाहुत हो ॥१॥ षष्ठ के लिए, सप्तम अष्टम के लिए, नीलनखों के लिए, हरितों के लिए, क्षुद्रों के लिए पर्यायिकों के लिए, प्रथम शंखों के लिए, द्वितीय, तृतीय शंखों के लिए, उपोत्तमों के लिए, उत्तमों के लिए, उत्तरों के लिए, ऋषियों के लिए, शिखियों के लिए, गणों के लिए, महागणों के लिए, विद्वान् अंगि-

रायों के लिए, पृथक् सहस्रों के लिए और ब्रह्मा के लिए आहुति स्वाहुत हों ॥ २ से २० तक ॥ सब वीर कर्म ब्रह्मज्येष्ठ होते हैं, यह सब कर्म वेद से सम्पन्न होते हैं। पूर्वकाल में ज्येष्ठ ब्रह्म ने आकाश का विस्तार किया । ब्रह्मा सब भूतों में पहिले प्रादुर्भूत हुए इसलिए उनकी समानता कोई भी नहीं कर सकता ॥ २१ ॥

२३ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–मन्त्रोक्ताः । छन्द–बृहती; त्रिष्टुप्, पंक्ति गायत्री; जगती)

आथर्वणानां चतुऋर्चेभ्यः स्वाहा ॥१॥ पंचर्चेभ्यः स्वाहा ॥२॥
षडृचेभ्यः स्वाहा ॥ ३ ॥ सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ॥४॥
अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ॥५॥ नवर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥
दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥७॥ एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥८॥
द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥९॥ त्रयोदश र्चेभ्यः स्वाहा ॥१०॥
चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥११॥ पंचदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१२।
षोडशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१३॥ सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१४॥
अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहाः ॥१५। एकोनविंशतिः स्वाहा ॥१६।
विंशतिः स्वाहा । १७ । महत्काण्डाय स्वाहा ॥ १८ ।
तृचेभ्य. स्वाहा । १९ ॥ एकर्चेभ्या स्वाहा ॥ २० ॥
क्षुद्रेभ्य. स्वाहा ॥२१॥ एकानृचेभ्यः स्वाहा ॥२२॥
रोहितेभ्यः स्वाहा ॥२३॥ सूर्याभ्यः स्वाहा ॥२४॥
व्रात्याभ्यां स्वाहा ॥२५ प्राजापत्याभ्यां स्वाहा ॥२६॥
विषासह्यै स्वाहा ॥२७॥ मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा ॥२८।
ब्रह्मणे स्वाहा ॥२९॥
ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥३०॥

आथर्वणों की चार ऋचाओं को, पांच ऋचाओं को, छै ऋचाओं

सात ऋचाओं, आठ ऋचाओं, नौ ऋचाओं, दश ऋचाओं, ग्यारह ऋचाओं, बारह ऋचाओं, तेरह ऋचाओं, चौदह ऋचाओं, पन्द्रह ऋचाओं. सोलह ऋचाओं, सत्रह ऋचाओं, अठारह ऋचाओं, उन्नीस ऋचाओं, बीस ऋचाओं महत्कारण्ड,तृचों, एकर्चों,क्षुद्रों,एकानृचों,रोहितों, सूर्यों, व्रात्यों, प्राजापात्यों विपासहि मांगलिकों और ब्रह्मा के लिए स्वाहुत हो ॥ १ से २९ ॥ सब वीर कर्म ब्रह्म ज्येष्ठ होते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में पहिले ब्रह्मा ही उत्पन्न हुए, इन्हीं ने इस आकाश का विस्तार किया इसलिए कोई मनुष्य या देवता इनकी समानता कैसे कर सकता है ? ॥ ३० ॥

२४ सूक्त

ऋषि—अथर्वा: । देवता--मन्त्रोक्ता: । छन्द--अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, गायत्री

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् ।
तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥१॥
परीममिन्द्रमायुषे महे श्रोत्राय धत्तन ।
यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥२॥
परीम सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन ।
यथैनं जरसे नयां योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥३॥
परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥४॥
जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥५॥
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ॥६॥
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ।७॥
हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व ।
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ॥ ८ ॥

देवताओं ने जिस आदित्य को धारण किया, उस शत्रु-नाश रूप कारण से हे ब्रह्मणस्पते ! इस महान् शांति कर्म वाले यजमान को राष्ट्र रक्षा के निमित्त प्रतिष्ठित करो ॥१॥ हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तुम इस साधक को परोपकार और आयु के निमित्त क्षात्रबल से युक्त करो, जिससे यह शांतिकर्म करने वाला यजमान चिरकाल तक चैतन्य रहे। यह शत्रुओं को वश में करने वाले बल से युक्त रहे और वृद्धावस्था तक की आयु प्राप्त करे ऐसा करो ॥२॥ हे वस्त्राभिमानी सोम ! इस शांतिकर्म करने वाले यजमान को दीर्घ आयु के लिए, सब इन्द्रियों की सबलता के लिए और यश के लिए पुष्ट करो। यह शान्ति का अनुष्ठाता यजमान वृद्धावस्था तक श्रोत्रादि इन्द्रियों से सम्पन्न और यशस्वी हो ॥३॥ हे देवगण ! इस बालक को तेज से आच्छादित करो, यह वृद्धावस्था में मृत्यु को प्राप्त हो। यह सौ वर्ष की आयु वाला हो। इस वस्त्र को बृहस्पति ने सोम को धारणार्थ प्रदान किया ॥ ४ ॥ हे यजमान ! तू वृद्धावस्था तक भले प्रकार पहुँचे। इस वस्त्र को पहिन और गौओं की शुभ-भावना से रक्षा प्राप्त कर। तू पुत्र-पौत्रों वाला तथा धन से युक्त हुआ सौ वर्ष तक जीवित रह ॥५॥ हे यजमान ! कल्याण के लिए तू इस वस्त्र को पहिन रहा है। तू गौओं की अभिशस्ति से रक्षित हो। तू वस्त्र से सजा हुआ पुत्र, मित्र, स्त्री आदि को धन देने वाला हो और प्रजावान् होकर सौ वर्ष तक की दीर्घायु भोग ॥ ६ ॥ हम स्तुति करने वाले सखा रूप, परमैश्वर्यवान् इन्द्र का अन्नादि की प्राप्ति के लिए आह्वान करते हैं ॥ ७ ॥ हे यजमान् ! तू पुष्ट होता हुआ, सुन्दर कान्ति से युक्त हो और पुत्रादि से सम्पन्न होकर अकाल मरण से रक्षित हुआ प्रजा सहित इस गृह में प्रवेश कर ॥ ८ ॥

२५ सूक्त

(ऋषिः—गोपथः। देवता—वाजी। छन्दः—अनुष्टुप्)

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च।
उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ॥ १ ॥

हे अश्व ! मैं तुझे शत्रु के धर्षण के लिए उत्सुक और आरोही को उत्साहित करने और शत्रु पर आक्रमण करने वाले मन से युक्त करता हूँ।

तुझे सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुई अश्व जाति के समर्थ मन से सम्पन्न करता हूँ। तू उस शक्ति से युक्त होकर, प्रवृद्ध नदी जैसे किनारों पर चढ़ने लगती है वैसे ही शत्रु सेना पर चढ़ता हुआ उसे संतप्त कर। मैं तेरे द्वारा शत्रु को जीतने वाले फल को पाऊँ, तू शीघ्र ही जीतने वाले स्थान की ओर गमन कर ॥ १ ॥

२६ सूक्त

(ऋषिः— अथर्वा । देवता—अग्निः, हिरण्यम् ।
छन्द.—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्, पक्तिः)

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।
य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥ १ ॥
यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे ।
तत् त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥२॥
आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च ।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥ ३ ॥
यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः ।
इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत् त आयुष्यं भुवत् तत् ते वर्चस्यं
भुवत् ॥ ४ ॥

अग्नि से उत्पन्न होने वाला सुवर्ण और अमृत रूप से मरणधर्मी मनुष्यों में व्याप्त सुवर्ण के इन रूपों को जानने वाला पुरुष ही इसके धारण करने का अधिकारी है। जो पुरुष इस स्वर्ण को आभूषण रूप में धारण करता है वह वृद्धावस्था में मरने वाला होता है ॥ १ ॥ जिस स्वर्ण को सूर्य द्वारा उत्पन्न प्रजावान् मनु ने धारण किया था, वह दीप्तिमान सुवर्ण तुझे देह-कांति से युक्त करे। ऐसे सुवर्ण के धारण करने वाला आयु से सम्पन्न होता है ॥ २ ॥ हे स्वर्णधारी पुरुष ! यह सुवर्ण तुझे आयुष्मान बनावे, यह तुझे वर्च से युक्त करे, भृत्यादि से सम्पन्न करे और तू सुवर्ण के समान तेज को

प्राप्त करता हुआ मनुष्यों में तेजस्वी हो ॥३॥ वरुण जिस सुवर्ण को जानते हैं, बृहस्पति भी जिसे जानते हैं, उस सुवर्ण के मृत्यु नाशक गुण से वृत्र-हनन कर्त्ता इन्द्र भी परिचित हैं. यह सुवर्ण तुझे आयु और वर्च से सम्पन्न करने वाला हो ॥ ४ ॥

२७ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि— भृग्वङ्गिराः । देवता—त्रिवृत् । छन्दः—अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्; जगती, उष्णिक्, शक्वरी)

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः ।
वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥ १ ॥
सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः ।
माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥ २ ॥
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् ।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता
त्रिवृद्भिः ॥ ३ ॥
त्रीन्नाकांस्त्रीन् समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान् ।
त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ॥ ४ ॥
घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन् ।
अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥ ५ ॥
मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन् ।
भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥ ६ ॥
प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः ।
प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥ ७ ॥
आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः ।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥ ८ ॥
देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः ।

आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता
त्रिवृद्भिः ॥ ९ ॥
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुर-
प्स्वन्तः ।
अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि ॥ १० ॥
ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ ११ ॥
ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ १२ ॥
ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ १३ ॥
असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १४ ॥
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥ १५ ॥

हे पुरुष ! तू त्रिवृत् मणि को धारण करता है । दलपति वृषभ अपनी गौओं सहित तेरे रक्षक हों । प्रजनन में समर्थ अश्व अपने वेगवान् अश्वों सहित तेरे रक्षक हों । वायु से व्याप्त ब्रह्म इन्द्र की इन्द्रियों सहित तेरी रक्षा करें ॥१॥ औषधियों सहित सोम तेरी रक्षा करें । नक्षत्रों सहित सूर्य तेरा पोषण करें । मासों सहित वृत्र हनन करने चन्द्रमा तेरे रक्षक हों । प्राण वायु सहित वायुदेव तेरी रक्षा करें ॥ २ ॥ तीन प्रकार के स्वर्ग; तीन प्रकार के अंतरिक्ष, तीन प्रकार की पृथिवी, चार समुद्र, त्रिवृत् स्तोम, त्रिवृत् जल यह सब अपने भेदों सहित मणि के सुवर्ण रजत लोह रूप त्रिवृत् से ही तेरी रक्षा करने वाले हों ॥ ३ ॥ हे पुरुष ! तू सुवर्ण, रजत लोहात्मक त्रिवृत् मणि के धारण करने वाला है । इस मणि के द्वारा मैं त्रिभेदात्मक स्वर्ग को तेरा रक्षक बनाता हूं, तीन समुद्रों, तीन आदित्यों और तीन भुवनों को तेरी रक्षा करने वाला करता हूं । त्रिगुणात्मक वायु, रश्मियों और उनके अधिष्ठात्री देवता भेद वाले तीन स्वर्गों को तेरे रक्षा कार्य में नियुक्त करता हूं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! मैं तुम्हें घृत के द्वारा प्रवृद्ध करता हूं । तुम्हें घृत से सींचता हूं ।

हे मणि धारणकर्ता पुरुष ! घृत से सम्पन्न अग्नि की, औषधादि को पुष्ट करने वाले चन्द्रमा की और सूर्य की कृपा से माया करने वाले राक्षस तुझे हिंसित न कर पावें ॥ ५ ॥ हे पुरुष ! मायामय असुर तुझे मार न सकें, तेरे प्राणापान और तेज को नष्ट न कर पावें। हे समस्त देवगण ! इसके रक्षार्थ तुम दिव्य रथ पर आरूढ़ होकर द्रुत वेग से चलो ॥ ६ ॥ समिधनकर्त्ता प्राण से अग्नि को युक्त करता है, वायु भी प्राण से युक्त होता है, प्राण से ही देवताओं ने विश्वतोमुखी सूर्य को उत्पन्न किया था ॥ ७ ॥ हे मणिमान पुरुष प्राचीन महर्षियों में दूसरों की आयु बढ़ाने और स्वयं दीर्घजीवी होने की शक्ति थी, तू उन्हीं महर्षियों की आयु से आयुष्मान हो, मृत्यु को प्राप्त न हो। तू मृत्यु के वश में न जाता हुआ, उन्हीं स्थिर प्राण वालों के प्राण से जीवित रह ॥ ८ ॥ हे पुरुष ! इन्द्र ने जिस धरोहर रूप छिपाकर रखे हुये सवर्ण को ढूंढ़कर प्राप्त किया था और जिस धरोहर की त्रिवृत जलों ने रक्षा की थी, वे त्रिवृत् जल त्रिवृत् मणिरूप देह से तेरी रक्षा करने वाले हों ॥ ९ ॥ तेंतीस देवताओं ने तीन प्रकार के वीर्यों को और स्वर्ण को प्रिय मान कर जल में स्थापित किया। चन्द्रमा में जो सुवर्ण है, उसके द्वारा यह मणि उन तेंतीस देवताओं की विविध शक्तियों को इस मणि धारण करने वाले पुरुष में व्याप्त करे ॥ १० ॥

आकाश में व्याप्त ग्यारह आदित्य इस घृत युक्त हवि का भक्षण करें। अन्तरिक्ष के ग्यारह रुद्र भी इस हवि का सेवन करें और पृथिवी के ग्यारह देवता भी इस हवि का भक्षण करें ॥११॥१२॥१३॥ हे सविता, हे शचिपते ! पूर्व पश्चिम में शत्रु का अभाव करते हुये अभय दो। सविता दक्षिण दिशा से मुझे रक्षित करें और इन्द्र उत्तर दिशा से रक्षा करने वाले हों ॥ १४ ॥ स्वर्गस्थ सूर्य स्वर्गलोक में भय से रक्षा करें। पार्थिव अग्नि पृथिवी में प्राप्त भय को दूर करें। इन्द्राग्नि सामने से रक्षा करें। अश्विद्वय सब दिशाओं से मेरी रक्षा करें। अग्नि तिर्यक् स्थान में रक्षक हों। पंचभूतों के स्वामी अग्नि देवता मुझे सब ओर से रक्षा करने वाला कवच दें ॥ १५ ॥

२८ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—दर्भमणिः । छन्द—अनुष्टुप्)

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥ १ ॥
द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः ।
दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्मइवाभीन्त्सन्तापयन् ॥२॥
घर्मइवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितपन् मणे ।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्रइव विरुजं बलम् ॥ ३ ॥
भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे ।
उद्यन् त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥४॥
भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥५॥
छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दश्छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ६ ॥
वृश्च दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान् दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥७॥
कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दः कृन्त मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥
पिंश दर्भ सपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥९॥
विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ।

हे पुरुष ! तू विजय और बल की कामना करता है । यह दर्भमय मणि शत्रुओं का क्षय करने वाली और उनके हृदय को सन्ताप देने वाली है । इसे तेज और दीर्घायु के निमित्त बांधता हूँ ॥ १ ॥ हे दर्भमणे ! तू

शत्रुओं के मन को सन्ताप दे, तू उनके हृदय को व्यथित कर। तू मलीन हृदय वाले शत्रु के घर, पशु, प्रजा, खेत आदि का नाश कर ॥ २ ॥ हे दर्भ-मणे ! जैसे सूर्य अपनी उष्णता से सन्ताप देते हैं, वैसे ही द्वेष करने वालों को संतप्त कर। तू इन्द्र के समान, शत्रुओं के हृदयों और बलों का नाश कर ॥३॥ हे दर्भमणे ! तू वैरियों के हृदयों को विदीर्ण कर। गृह निर्माण के लिये भूमि के पर्त्त और तृण आदि को मनुष्य उखाड़ डालते हैं, वैसे ही तू शत्रुओं के सिर को उखाड़ डाल ॥४॥ हे दर्भमणे ! जो शत्रु मेरी हिंसा के लिये सेना एकत्र करने की इच्छा करें उन्हें चीर डाल। मेरे वैरियों, मुझसे बुरे भाव रखने वालों को विदीर्ण कर ॥ ५ ॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदयों वालों, मुझसे द्वेष करने वालों के टूक-टूक कर डाल ॥६॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वालों को काट डाल ॥ ७ ॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वालों को छिन्न मस्तक कर ॥८॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को पीस डाल ॥ ६ ॥ हे दर्भमणे ! मेरे शत्रुओं का ताड़न कर। मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालो और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को पीस डाल ॥ १० ॥

२६ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—दर्भमणि छन्द—त्रिष्टुप्)

निक्ष दर्भ सपत्नान् मे निक्ष मे पृतनायतः।
निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥ १ ॥
तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः।
तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ २ ॥
रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे रुन्द्धि मे पृतनायतः।
रुन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ३ ॥

मृण दर्भ सपत्नात् मे मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥ ४ ॥
मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥ ५ ॥
पिण्ड्ढ दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढ मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढ मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंड्ढ मे द्विषतो मणे ॥ ६ ॥
ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान् दुर्हार्दः ओष मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥
दह दर्भ सपत्नान् मे दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥
जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि पृतनायतः ।
जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥ ९ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे शत्रु, मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को चूस ले ॥१॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझ से द्वेष रखने वाले शत्रुओ का नाश कर ॥२॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को रोक ॥३॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को मार ॥४॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष करने वाले शत्रुओं का मन्थन कर ॥५॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को तू चूर्णित कर ॥ ६ ॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को भस्म कर ॥ ७ ॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदयों, मुझसे द्वेष करने वाले शत्रुओं को तू जला ॥ ८ ॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों मलीन हृदयों मुझसे द्वेष करने वाले शत्रुओं को तू मार डाल ॥ ९ ॥

३० सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—दर्भमणि । छन्द—अनुष्टुप्)

यत् ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नाञ्जहि वीर्यैः ॥ १ ॥
शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।
तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥ २ ॥
त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् ।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥ ३ ॥
सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः ।
मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥ ४ ॥
यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥ ५ ॥

हे दर्भमणे ! तेरी गाँठों में अपरिमित जरामृत्यु व्याप्त हैं और जरा-मृत्यु का नाश करने वाला तेरा जो कवच है, उसके द्वारा रक्षा और जीत की कामना को मिलाकर शत्रु के उपद्रव को दूर करता हुआ शत्रु को भी नष्ट कर डाल ॥ १ ॥ हे दर्भ ! तुझमें दूसरों को पीड़ित करने वाली सैकड़ों गाँठे हैं, और उन पीड़ाओं को दूर करने के भी सैकड़ों पराक्रम हैं । तुझ कवच रूप को इस रक्षा काम्य राजा के लिए देवताओं ने जरा नाशनार्थ दिया है इसलिए इसकी वृद्धावस्था को दूर करती हुई तू इसे पुष्ट कर ॥ २ ॥ हे दर्भमणे ! तू देव-रक्षक कवच कहाती है, तुझे ब्रह्मणस्पति और इन्द्र की रक्षक भी बताते हैं । इसलिए तू इस राजा के राज्यों की रक्षा करने वाली हो ॥३॥ हे दर्भ ! तुझे शत्रुओं का नाश करने वाली, द्वेषी के हृदय को संतप्त करने वाली और बल वृद्धि करने वाली देह-रक्षक मणि के रूप में धारण करता हूँ ॥ ४ ॥ जिस मेघ से जल उद्रवित होता है, उसमें विद्युत की गड़गड़ाहट से हिरण्यमय बूँद प्रकट हुई, उसी बूँद से दर्भ उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥

३१ सूक्त

(ऋषि—सविता (पुष्टिकामः) । देवता—औदुम्बरमणिः । छन्द—अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्; पंक्तिः; शक्वरी)

औदुम्बरेण मणिना पुष्टकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥ १ ॥

यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणिः स मा सृजतु पुष्ट्या ॥ २ ॥

करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥ ३ ॥

यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृह्णे ऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥ ४ ॥

पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥ ५ ॥

अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥ ६ ॥

उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥ ७ ॥

देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥ ८ ॥

यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥ ९ ॥

आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥ १० ॥

त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।

त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्वरः स त्वमस्मत्-
सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥ ११ ॥

ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥ १२ ॥
पुष्टिरसि पुष्टया मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्वरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं ।
नियच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥ १३ ॥

अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् । १४ ॥

प्राचीन काल में ब्रह्मा ने गूलर की मणि के द्वारा पशु, पुत्र, धन, शरीर पोषण आदि का प्रयोग किया था । मैं उस पोषण मणि से तुझ पुष्टि-काम्य को पुष्ट करता हूँ । सवितादेव मेरे घर में दुधाए, चौपायों को बढ़ावें॥१॥ गार्हपत्य अग्नि हमारे गवादि पशुओं के अधिष्ठाता और रक्षा करने वाले हों । इच्छित फल की वर्षा करने वाली गूलर मणि शरीर की वृद्धि और पशुओं की पुष्टि करे ॥२॥ गूलर की मणि के तेज से धाता देव मेरे शरीर में पुष्टि भरें हमारे घर में अन्न और गोबर वाली भूमि हो ॥ ३ ॥ दो पाँव वाले मनुष्य, चार पाँव वाले पशु, ग्राम्य अन्न, वन के अन्न, दही, दूध गुड़, मधु आदि रस इन सबको मैं गूलर मणि के धारण करने वाला अधिकता से प्राप्त करता रहूँ ॥ ४ ॥ मैं मनुष्यों और पशुओं की, धान्यादि की पुष्टि को प्राप्त करूँ । सविता और बृहस्पति गूलर मणि के तेज से पशुओं का सार रूप दूध और अन्नादि दें ॥ ५ ॥ मैं पुत्र, पशुओं से युक्त होऊँ । गूलर मणि मुझ पुष्टि-काम्य को समृद्ध करे । यह मणि मुझे स्वर्णादि भी दे ॥ ६ ॥ यह मणि इन्द्र की प्रेरणा से मुझे इच्छित तेज सहित प्राप्त हुई है । इसके द्वारा मुझे पुत्र, पौत्र, पशु, धन, सुवर्ण आदि की प्राप्ति भी हो गई है ॥ ७ ॥ यह गूलर मणि पुष्टि के लिए निर्मित होने के कारण देव संज्ञक है । यह शत्रुओं का

नाश करने वाली और हमारे अभीष्ट धनों के देने वाली है । यह मणि गवादि पशुओं की वृद्धि करे और धन लाभ कराने वाली हो ॥ ८ ॥ हे गूलर मणे ! जैसे तू ओषधि के उत्पत्ति काल में ही पुष्टि के साथ उत्पन्न हुई है, वैसे ही तेरे द्वारा सरस्वती मेरे धन आदि की वृद्धि करें ॥ ९ ॥ सरस्वती, सिनीवाली और यह औदुम्बर मणि मुझे सुवर्ण रूप ऐश्वर्य, व्रीहि, यव आदि ओषधि और अन्न को प्राप्त करावें ॥ १० ॥ हे मणे ! तू इच्छित फल की वर्धक है । प्रजापति ने तुझमें सब पदार्थों की पुष्टि को भर दिया है । तुझ समृद्धि वाली के प्रभाव से तुझमें अनेक प्रकार के अन्न और धन हों । हे गूलर मणे ! तू दुर्गति और अन्नाभाव को हमारे पास भी मत आने दे ॥ ११ ॥ हे गूलर मणे ! तू ग्रामीण नेता के समान मणियों में श्रेष्ठ है । तू हमारे लिए इच्छित फल दिलाने वाली हो । तू वर्च से सम्पन्न है, मुझे भी वर्च से युक्त कर, तू तेजोमयी है, मुझे भी तेजस्वी बना और धन प्रदान कर ॥ १२ ॥ हे मणे ! तू साक्षात् पुष्टि है, इसलिए मुझे पुष्ट कर । तू गृहमेधी है, मुझे ऐश्वर्ययुक्त घर का स्वामी कर । तुझमें ग्रामीणत्व वर्च और तेज है, वे सब गुण मुझमें स्थापित कर और जिस धन से पुत्रादि वीर प्रसन्न हों, वह धन मुझे प्राप्त करा ॥ १३ ॥ हे मणे ! धन-पुष्टि की कामना वाला मैं तुझे धारण करता हूँ । शत्रुओं को खदेड़ने वाली यह मणि स्वयं वीर रूप हो जाय, इसी लिए बाँधी गई है । यह मणि हमको पुत्रादि सहित धन दे और मधुमयी होती हुई हमें भी मधुमय बनावे ॥ १४ ॥

३२ सूक्त

(ऋषि - भृगुः (आयुष्कामः) । देवता—दर्भः । छन्द—अनुष्टुप्, बृहती; त्रिष्टुप्; जगती)

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः ।
दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ॥ १ ॥
नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते ।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥ २ ॥

दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः ।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥ ३ ॥
तिस्रो दिवो अत्यतृणत् तिस्र इमाः पृथिवीरुत ।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥ ४ ॥
त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् ।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीमहि ॥ ५ ॥
सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ॥ ६ ॥
दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् ।
तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ॥ ७ ॥
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ ८ ॥
यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥ ९ ॥
सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥ १० ॥

हे मृत्यु से भीत पुरुष ! जो दर्भ अपरिमित गाँठों से युक्त है, सहस्रों पर्व वाली उग्र प्रचण्ड वीर्य ओषधि को तेरी आयु वृद्धि के निमित्त बांधता हूँ ॥१॥ प्रयोग करने वाला पुरुष जिस भयभीत पुरुष को पर्व युक्त पूर्ण मूल दर्भ मणि को बांधता है, यमदूत उसके केशों को नहीं उखाड़ते और न उसके हृदय पर घूंसा मारते हैं ॥ २ ॥ हे सहस्र काण्ड वाली ओषधे ! तू पृथिवी में पूर्ण रूप से स्थिर है. तेरा अग्र भाग स्वर्ग लोक है । तुझ आकाश-पृथिवी में व्याप्त हुई द्वारा इस मृत्यु से डरे हुए पुरुष की आयु वृद्धि करते हैं ॥ ३ ॥ हे ओषधे ! तू त्रिवृत् आकाश और त्रिगुणात्मक पृथिवी को व्याप्त कर रही है । तेरे द्वारा मैं उस म्लान हृदय वाले पुरुष की जीभ को और शत्रु की वाणी

को भी अवरुद्ध करता हूँ ॥ ४ ॥ हे औषधे ! तू शत्रुओं को वश करने में समर्थ है, मैं भी शत्रुओं को मारने में समर्थ हूँ । अतः हम दोनों ही शत्रु को दबाने के लिए समान मति वाले हों ॥५॥ हे औषधे ! हमारे शत्रुओं का क्षय कर । सेना एकत्र कर मुझे वश करना चाहने वाले मेरे शत्रुओं को वश में कर और मेरे मित्रों की वृद्धि कर ॥ ६ ॥ आकाश के स्तम्भ रूप और देवताओं के समीप उत्पन्न दर्भ के द्वारा मैं दीर्घायु वाले पुत्रों को प्राप्त होऊँ ॥ ७ ॥ हे दर्भ ! तुझे धारण करने वाला मैं ब्राह्मण, क्षत्रियों के लिए प्रिय होऊँ । आर्य पुरुषों और शूद्रों के लिए भी मुझे प्रिय बनाओ तथा हम जिसके प्रिय होना चाहें, मुझे उसी का प्रिय करो ॥ ८ ॥ उत्पन्न होते ही जिस दर्भ ने पृथिवी को स्थिर किया, उत्पन्न होते ही उसने अन्तरिक्ष और स्वर्ग को स्तम्भित किया, जिस दर्भ के धारणकर्ता का पाप से परिचय नहीं है, ऐसा यह वरण रूप दर्भ हमको प्रकाश देने वाला हो ॥ ९ ॥ यह दर्भ अन्य औषधियों में श्रेष्ठ होता हुआ उत्पन्न हुआ । यह सब पर समान स्वामित्व की कामना करता है । यह चारों दिशाओं से रक्षित करे । मैं इसके प्रभाव से सेना की कामना वाले शत्रुओं को वशीभूत करूँ ॥ १० ॥

सूक्त ३३

(ऋषि—भृगुः । देवता—दर्भः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्; पंक्तिः)

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा स सृजाति नः ॥१॥
घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः ।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥ २ ॥
त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥ ३ ॥
तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ ४ ॥

दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्यइवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५ ॥

यह प्रसिद्ध दर्भमणि जलों में अग्नि रूप, अनेक काण्ड वाली, बल से सम्पन्न और प्रशस्त है। यह हमारी रक्षा करे और आयुष्मान् बनावे ॥ १ ॥ होम से अवशिष्ट घृत से लुप्त, मधुर, विनाश रहित, अपनी मूल से पृथिवी को दृढ़ करने वाली दर्भमणे ! तू शत्रुओं को पीछे हटाती हुई उन्हें बल से रहित कर और वीर्य वाली अन्य ओषधियों की भी शक्ति से सम्पन्न होकर मेरी भुजा पर आरोहण कर ॥ २ ॥ हे मणि रूप दर्भ ! तू अहिंसित यज्ञ की वेदी में बैठने वाला, रमणीय और शोधक है। तुझे ऋषि अपनी शुद्धि के लिये धारण करते हैं। अतः हमें पापों से छुड़ा ॥ ३ ॥ अन्य मणियों में श्रेष्ठ तीक्ष्ण शक्ति वाला, असुरों का नाशक, शत्रुओं को वश करने में समर्थ, सर्व द्रष्टा, देवताओं का बल रूप यह दर्भ प्रयोग करने वाले का रक्षक होता है। हे रक्षा की कामना वाले पुरुष ! इस मणि को तेरे कुशल और वृद्धावस्था की अप्राप्ति के लिये बांधता हूँ ॥ ४ ॥ हे पुरुष ! दर्भमणि के प्रताप से तू शत्रु को जीतने वाले कर्म को कर। तू शत्रु द्वारा पराजित होने की बात को मत सोच, सूर्य जैसे लोकों को प्रकाशित करता है, वैसे ही तू अपने बल से दूसरों को वश में करता हुआ चारों दिशाओं को प्रकाशित कर ॥ ५ ॥

६५ सूक्त (पाँचवां अनुवाक)

(ऋषि—अङ्गिराः । देवता—जङ्गिडो वनस्पतिः । छन्द—अनुष्टुप्)

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः ।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥ १ ॥
या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसाञ्जङ्गिडस्करत् ॥ २ ॥
अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः ।
अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥ ३ ॥

कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ४ ॥
स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥ ५ ॥
त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥ ६ ॥
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥
अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य ।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥
उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ ।
अमीवाः सर्वाश्चातयञ्जहि रक्षांस्योषधे ॥ ९ ॥
आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥ १० ॥

जङ्गिड नामक ओषधि से निर्मित मणे ! तू कृत्याओं और कृत्या कर्मों का भी भक्षण कर लेती है । तू सब भयों को दूर करने वाली है । यह मणि हमारे मनुष्यों और पशुओं आदि की रक्षक हो ॥१॥ पुत्तलियों के निर्माता और तिरेपन प्रकार की ग्राहिका कृत्यायें हैं, उन सबको यह जंगिड मणि रस-हीन और निर्वीर्य करे ॥ २ ॥ अभिचार कर्म से उत्पन्न हुई कृत्रिम ध्वनि जो हमारे कानों और सिर प्रादि स्थानों में होती है इस मणि के प्रभाव से निरर्थक हो जाय, नासिका के छेद, नेत्र गोलक, कर्ण छिद्र और मुख छिद्र भी अभिचार कर्म के अनिष्ट से मुक्त हों । हे मणे ! तू अपने धारण कर्त्ता की कुबुद्धि और दरिद्रता को, बाण फेंक कर नष्ट करने के समान ही नष्ट कर दे ॥ ३ ॥ यह मणि शत्रुओं का पतन करने में साधन रूप है । दूसरों के द्वारा की गई कृत्याओं को नष्ट करने वाली है । यह बल सम्पन्न मणि कृत्या

आदि को दूर करती हुई हमारी आयु वृद्धि करे ॥ ४ ॥ यह मणि महावात रोग का नाश करने वाली है, इसके द्वारा नष्ट हुआ रोग फिर नहीं होता। इसके प्रभाव से विस्कन्ध रोग नष्ट होता है। यह मणि उन सब उपद्रवों से बचाती हुई हमारी रक्षा करे ॥ ५ ॥ हे जंगिड मणे ! तुझे देवताओं ने तीन बार प्रयत्न करके प्राप्त किया था। महर्षि अंगिरा और प्राचीनकाल के ब्राह्मण ऋषि इस बात को जानते थे ॥ ६ ॥ हे जंगिड ! तू सब प्रयोगों में अत्यन्त शक्तिशाली है। सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न ओषधियाँ तेरी समानता नहीं कर सकतीं, नवीन ओषधियाँ भी तुझसे श्रेष्ठ नहीं हो सकतीं। क्योंकि तू अमित बली, रोग और शत्रु नाशक तथा धारण करने वाले की रक्षक है ॥७ हे जंगिड ! तुझे कृत्यादि के शमन-साधन रूप में ग्रहण किया जाता है। तू अत्यन्त सामर्थ्य वाला है। प्रचण्ड बल वाले जीव तुझे खा सकते हैं, इसीलिये इन्द्र ने तुझे अत्यन्त बल दिया था ॥ ८ ॥ हे जंगिड ! इन्द्र ने तुझ में बल की स्थापना की इसलिये तू अत्यन्त वीर्य वाला है। इसलिए तू साध्य असाध्य की ओर ध्यान न देता हुआ सब रोगों का और उनके कारण रूप पाप आदि का नाश कर ॥ ९ ॥ आशरीक, विशरीक, बलाज, पृष्ठ्य, तक्मा, विश्व-शारद आदि रोगों को यह मणि निरर्थक करे ॥ १० ॥

३५ सूक्त

(ऋषि—अङ्गिराः। देवता—जङ्गिडो वनस्पतिः। छन्द—अनुष्टुप्; पंक्तिः; त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषियो जङ्गिडं ददुः।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥१॥
स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालोधनेव।
देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणः परिपाणमरातिहम् ॥२॥
दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम्।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥३॥
परि मा ना दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः।

परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो
जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥ ४ ॥
य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः ।
सर्वास्तान विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ ५ ॥

अङ्गिरा आदि महर्षियों ने इन्द्र का नामोच्चार करते हुए परम वीर्य की इच्छा करने वाले ऋषियों को जंगिड नामक वृक्ष की यह मणि प्रदान की। इन्द्रादि देवताओं ने इसे विष्कंध रोग की महान् औषधि कहा है। यह औषधि हमारी रक्षक हो ॥ १ ॥ राजा के धन की रक्षा करने वाले कोषाधिकारी के समान यह मणि हमारी रक्षा करे। जिस मणि को देवताओं और ब्राह्मणों ने शत्रु नाशक और धारणकर्त्ता की रक्षक बनाया है, वह मणि हमारी रक्षा करने वाली हो ॥ २ ॥ हे मणे ! दुष्ट हृदय शत्रु के क्रूर नेत्र को नष्ट कर डाल। हिंसा के लिये पास आये हुये को भी अपने सहस्रों दर्शन साधनों द्वारा नष्ट कर ॥ ३ ॥ यह मणि आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष से हो सकने वाले भयों से मेरी रक्षा करे। वृक्षादि के विष और विभिन्न जीवों के भय तथा दिशा, प्रदिशाओं के भय से मुक्त करे ॥ ४ ॥ देवताओं द्वारा बनाये हुये हिंसक, मनुष्यों से प्रेषित बाधा देने वाले जो-जो कर्म हैं उन सब को जंगिड मणि निर्वीर्य करे ॥ ५ ॥

सूक्त ३६

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—शतवारः । छन्द—अनुष्टुप्)

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा ।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥१॥
शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः ।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥२॥
ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः ।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥३॥
शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत्

दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥ ४ ॥
हिरण्यश्रृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः ।
दुर्णाम्नः सर्वास्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥५॥
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।
शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥ ६ ॥

यह मणि शतवार नामक ओषधि से बनी है । यह ओषधि सैकड़ों रोगों को नष्ट करने में समर्थ है । यह अपने तेज से असुरों को भी भस्म करने की शक्ति रखती है । यह दुर्नाम नामक त्वचा रोगों को नष्ट करती है । वह इस पुरुष के द्वारा धारण की जाती हुई ऐसे ही गुण वाली रहे ॥ १ ॥ यह अन्तरिक्ष में स्थित राक्षसों को अपने सींगों के समान अगले भाग से भगाती है । यह अपनी जड़ के द्वारा पिशाचियों को भगाती है और मध्य भाग से सब रोगों को मिटाती है। इस शतवार मणि को पापी लोग लांघ नहीं सकते ॥ २ ॥ असाध्य रोगों और यक्ष्मादि रोगों को यह दुर्नाम रोग का नाश करने वाली मणि पूर्णतः शमन करे ॥ ३ ॥ यह मणि सैकड़ों रोगों, उत्पातों, दुर्नाम, कुष्ठ, खाज, दद्रु आदि त्वचा रोगों को भी नष्ट करे और सैकड़ों पुत्रों को प्राप्त करावे ॥ ४ ॥ सब ओषधियों में उत्तम यह शतवार नामक ओषधि का अग्र भाग सुवर्ण के समान दमकता है । उस निमित्त से यह मणि सब त्वचा रोगों को दूर करे ॥ ५ ॥ इस शतवार मणि के द्वारा मैं समस्त त्वचा रोगों को दूर करता हूँ । अन्तरिक्ष में घूमते हुए अप्सरा, गंधर्व आदि प्राणी मनुष्यों को बलि के लिए अपहृत कर लेते हैं, उनके उस कर्म को मैं इस शतवार मणि के प्रभाव से दूर करता हूँ। यह मणि अपस्मार आदि व्याधियों को और पीडाप्रद रोगों का शमन करने में समर्थ है ॥ ६ ॥

सूक्त ३७

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप, पङ्क्ति, बृहती, उष्णिक्)

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम् ।

त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥ १ ॥
वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥२॥
ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥३॥
ऋतुभ्यष्ट् वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतय यजे ॥ ४ ॥

अग्नि प्रदत्त वर्च, तेज, ओज कीर्ति, बल और युवावस्था मुझे प्राप्त हो । जो तेतीस वीर्य हैं, उन्हें भी अग्नि देवता मुझे दें ॥ १ ॥ हे अग्ने ! शत्रु को दबाने वाले वर्च की मुझ में स्थापना करो। ओज, युवावस्था, बल भी दो । हे ग्रहणीय पदार्थ ! इन्द्रियों की दृढ़ता के लिए और यज्ञादि कर्मों की सिद्धि के लिए तुझे धारण करता हूँ । शतायुष्य होने के निमित्त तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त कराने वाले वीर कर्म के लिए भी धारण करता हूँ ॥ २ ॥ हे पदर्थ ! मैं तुझे अन्न की प्राप्ति के लिए, ओज और शरीर की शक्ति के लिए, शत्रु को वश करने के लिए धारण करता हूँ । राज्य की पुष्टि के लिए और सौ वर्ष की आयु के लिए भी धारण करता हूँ ॥ ३ ॥ हे पदार्थ ! मैं तुझे ऋतु सम्बन्धी देवताओं की प्रसन्नता के लिये, ऋतुओं की प्रसन्नता के लिए, बारह महीनों की प्रसन्नता के लिए, संवत्सर की प्रसन्नता के लिए सुसंगत करता हूँ । धाता, विधाता तथा अन्य सब देवताओं की प्रसन्नता के लिए और सभी उत्पन्न पदार्थों के स्वामी के लिए सुसंगत करता हूँ ॥ ४ ॥

सूक्त ३८

(ऋषि—अथर्वा । देवता—गुल्गुलः । छन्द—अनुष्टुप्)

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते ।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥ १ ॥

विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वाइवेरते ।
यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद वाप्यासि समुद्रियम् ॥ २ ॥
उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥ ३ ॥

जो राजा गूगल रूप औषधि की नस्य (धूप आदि) लेता है, उसे व्याधियाँ पीड़ित नहीं करतीं और और अन्य द्वारा प्रेरित शाप नहीं लगता ॥ १ ॥ गूगल के धुए ँ को सूँघने वाले के समीप से द्रुतगामी अश्व और हरिण के भागने के समान व्याधियाँ चारों दिशाओं की ओर भाग जाती हैं ॥ २ ॥ हे गूगलो ! तुम समुद्र से उत्पन्न हुई हो या सिन्धु देश में प्रकट हुई हो। मैं तुम दोनों प्रकार की को ही कहता हूँ। इस वर्तमान रोगादि को दूर करने के निमित्त मैं तुम्हारे नाम को कहता हूँ ॥ ३ ॥

३९ सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिरा । देवता—कुष्ठ; । छन्द—अनुष्टुप्, जगती, शक्वरी, अष्टि, प्रभृति)

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ १ ॥
त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ २ ॥
जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ३ ॥
उत्तमो अस्योषधीनामनड् वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ४ ॥
त्रिः शाम्बुभ्यो अंगिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि ।

त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्य ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः । साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ५ ॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
यत्रामृतस्य चक्षण ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ६ ॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ७ ॥

यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥

य त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः ।
यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥ ९ ॥.

शीर्षशोकं तृतीयकं सदन्दियंश्च हायनः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥ १० ॥

हिमवान् पर्वत से दमकता हुआ कूट हमारी रक्षा करता हुआ आवे ! हे कूट ! तू सभी संतापप्रद रोगों का नाश कर । सभी राक्षसियों को भी हिंसित कर ॥ १ ॥ हे कूट ! तेरा नाम रहस्यमय है । तू नद्यमार, नद्यारिष और नद्य कहलाता है । तेरे नाम का ध्यान न करने से मरणात्मक व्याधि घेरती हैं । हे त्रिनाम कूट ! मैं प्रातः, सायं, मध्य तीनों समय रोगार्त पुरुष के लिए तेरा नाम लेता हूं । हे नद्य ! जिसके लिए द्वेप

भाव से तेरा नाम लूँ वह मृत्यु को प्राप्त हो ॥ २ ॥ हे कूट ! तेरी माता का नाम जीवला और पिता का जीवन्त है। तेरे माता-पिता रोग आदि को दूर करने वाले हैं, तू भी वैसे ही गुण वाला है। हे नद्य ! दिन के तीनों काल में मैं तेरे नामों को जिस रोगी के लिए लेता हूँ, वह रोगी तेरा नाम न लेने से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ हे कूट ! पशुओं में भार वहन करने वाला वृषभ जैसे श्रेष्ठ है, श्वपदों में जैसे बाघ श्रेष्ठ होता है वैसे ही तू औषधियों में श्रेष्ठ है। हे नद्य नामक कूट ! तेरा नाम न लेने से यह रोगी मर जाता, इसीलिए मैं तेरे नाम को प्रातः सायं. मध्यकाल में उच्चारण करता हूँ ॥ ४ ॥ आंगिरस शाम्बु ऋषियों ने इस कूट नामक औषधि को तीनों लोकों के कल्याण के लिये तीन बार खोजकर प्रकट किया। यह आदित्यों और विश्वे देवाओं ने भी तीन-तीन बार प्रकट की है। ऐसी यह सब औषधियों की शक्ति से सम्पन्न औषधि पहिले सोम से सुसंगत थी। हे कूट ! तू सब रोगों और यातुधानियों को नष्ट कर ॥ ५ ॥ भूलोक से तृतीय स्वर्ग में देवता वास करते हैं वहाँ अश्वत्थ है। यह कूट पहिले सोम के साथ था। हे कूट ! तू सब रोगों और यातुधानियों को मार ॥ ६ ॥ स्वर्ग में सुवर्णमय खूँटे वाली सुवर्ण की नौका सदा घूमती है। वहाँ अमृत के प्रकाश में कूट उत्पन्न हुआ। वह कूट सब रोगों का उपाय रूप है और पहि. सोम के साथ रहता था। हे कूट ! तू सब रोगों और पिशाचियों का नाश कर ॥ ७ ॥ जिस स्वर्ग में प्रतिष्ठित पुण्यात्मा औंधे मुँह नहीं गिरते, जहाँ हिमवान् पर्वत का शीर्ष है, वहाँ अमृत के प्रकाश में कूट उत्पन्न हुआ। वह सब रोगों का शमन करने वाला कूट पहले सोम के साथ रहता था। हे कूट ! तू सब रोगों और यातुधानियों को मार ॥ ८ ॥ हे कूट ! तुझे सब रोगों को नाश करने वाले रूप से राजा इक्ष्वाकु ने जाना था। काम के पुत्र ने और यम के समान मुख वाले वसुओं ने भी तुझे सब व्याधियों का निवारक रूप से जाना था, इसलिये तू सब रोगों को दूर करता है ॥ ९ ॥ हे कूट ! तृतीय स्वर्ग तेरा शिर है। तेरा उत्पत्ति काल व्याधियों को सदा नष्ट करने वाला है। अतः इस शक्ति सम्पन्न जीवन को संतप्त करने वाले रोग को शीघ्र ही पराङ्मुख कर ॥ १० ॥

४० सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—विश्वेदेवाः, बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती, गायत्री)

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः स दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥
मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्रमथिष्टन ।
शुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥२॥
मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥ ३ ॥
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।
तामस्मे रासतामिषम् ॥ ४ ॥

मेरे मनोव्यापार में या मन्त्रीरूपी वाणी में जो त्रुटि रह गई है, उसे वाग्देवता सरस्वती पूर्ण करें। सब देवताओं सहित बृहस्पति भी उसे पूर्ण करें ॥ १ ॥ हे जलों! तुम हमारे वेदाध्ययन से युक्त सुन्दर बुद्धि को भ्रष्ट न करो। मेरा जो कर्म शुष्क होगया है, उसे आर्द्र करो। मैं सुन्दर बुद्धि से युक्त तथा ब्रह्मवर्च से सम्पन्न होऊं ॥ २ ॥ हे द्यावा पृथिवी! तुम हमारी बुद्धि को भ्रष्ट न करो, दीक्षा और तप को नष्ट न करो। जल आयुर्वृद्धि के लिये हमारी प्रशंसा करें। संसार को निर्माण करने वाले जल हमको माता के समान मङ्गलकारी हों ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय! हमको बाधाजनक अन्धकार न मिले। जो प्रकाशवती रात्रि अन्धेरे का तिरस्कार करने वाली हो, ऐसी रात्रि को हम प्राप्त हों ॥ ४ ॥

४१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता–तपः । छंद—त्रिष्टुप्)

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु ॥१॥

मर्थद्रष्टा ऋषियों ने सृष्टि के आदि काल में कल्याण-कामना करते हुए स्वर्ग को पाया और उसके साधन रूप व्रतादि से सम्पन्न तथा दण्डादि

धारण आदि से साध्य दीक्षा को किया। उसी शक्ति से राष्ट्रबल और ओज हुआ। देवगण उस सब को इस पुरुष में सुसंगत करें ॥ १ ॥

४२ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—ब्रह्म। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः, त्रिष्टुप्, जगती)

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥१॥
ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः।
शमिताय स्वाहा ॥२॥
अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः।
इममिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥३॥
अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण तं इन्द्रियं दत्तमोजः ॥४॥

ब्रह्म ही होता है, ब्रह्म ही यज्ञ है, ब्रह्म से ही स्वरों की यज्ञानुवेष्ठता आदि है, ब्रह्म से ही अध्वर्यु उत्पन्न हुए और ब्रह्म में ही हवियाँ अवस्थित हैं ॥ १ ॥ घृत से पूर्ण स्रुच भी ब्रह्म है, वेदी ब्रह्म द्वारा ही निर्मित हुई, यज्ञ ब्रह्म है, और हवि करने वाले ऋत्विज भी ब्रह्म ही हैं ॥ २ ॥ इन्द्र परम कल्याण के देने वाले और पापों से छुड़ाने वाले हैं। उन इन्द्र के लिए मैं सुन्दर स्तोत्रमयी स्तुतियों को कहता हूँ। हे इन्द्र! यजमान की आयु आदि की कामना सत्य हो। इस हवि को ग्रहण करो ॥ ३ ॥ यज्ञ-भागी देवताओं में इन्द्र श्रेष्ठ हैं, इसलिए मैं उनका आह्वान करता हूँ। जलों के स्रष्टा अग्नि का और अश्विदय का भी आह्वान करता हूँ। वे अश्विद्वय तुझे इन्द्र की शक्ति से इन्द्रियाँ और बल के देने वाले हों ॥४॥

४३ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अग्न्यादयो मंत्रोक्ता। छन्द—पंक्तिः)

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।

अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा ॥१॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे । वायवे स्वाहा ॥२॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ॥३॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे । चन्द्राय स्वाहा ॥४॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे । सोमाय स्वाहा ॥५॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे । इन्द्राय स्वाहा ॥६॥
आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोप तिष्ठन्तु अद्भ्यः स्वाहा ॥७॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मणे स्वाहा ॥८॥

जिस स्थान में ब्रह्म को जानने वाले दीक्षा और तप के द्वारा पहुँचते हैं, उसी स्थान में मुझे अग्निदेव ले जांय । जो अग्नि स्वर्ग प्राप्त करने की बुद्धि देते हैं वे मुझे भी वैसी ही बुद्धि दें ॥ १ ॥ तप और कर्म से ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिस स्थान में जाते हैं, वायु देवता मुझे वहीं ले जांय । वे वायु मेरे प्राणापान आदि पांचों प्राणों को मुझमें स्थापित करें ॥ २ ॥ तप और कर्म के द्वारा ब्रह्मज्ञानी पुरुष जहाँ जाते हैं, उसी स्थान में सूर्य देवता मुझे ले जांय और मुझे चक्षु प्रदान करें यह आहुति सूर्य के लिए हो ॥ ३ ॥ तपोधन और कर्मवान् ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिस स्थान को प्राप्त होते हैं, चन्द्र देवता मुझे भी उसी स्थान में स्थापित करें और मन प्रदान करें, स्वाहा ॥ ४ ॥ तपोधन और कर्मवान् ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिस स्थान को प्राप्त होते हैं, सोम मुझे उसी स्थान में पहुँचावें । वे सोम मुझे दूध रस युक्त करें, स्वाहा ॥ ५ ॥ तपोधन और

कर्मवान् ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिस स्थान को प्राप्त होते हैं, इन्द्र मुझे उसी स्थान में पहुँचावें। वे इन्द्र मुझे बल प्रदान करें, स्वाहा ॥६॥ तपोधन ब्राह्मण और कर्मवान् ब्रह्मवेत्ता पुरुष जिस स्थान में जाते हैं, वही स्थान मुझे जल के अभिमानी देवता प्राप्त करावें। जल मुझे अमृतत्व दें, स्वाहा ॥ ७ ॥ तप और कर्म के द्वारा ब्रह्म को जानने वाले पुरुष जिस स्थान में जाते हैं, वही स्थान ब्रह्मा मुझे प्राप्त करावें। वे ब्रह्मा मुझे ब्रह्मज्ञान प्रदान करें, स्वाहा ॥८॥

४४ सूक्त

(ऋषि—भृगुः। देवता—आंजनम्, वरुण। छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक, गायत्री)

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे।
तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् ॥१॥
यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः।
सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वांजनम् ॥२॥
आंजनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम्।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥३॥
प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥४॥
सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम्।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥५॥
देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥६॥
वीदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः।
अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ॥७॥
बह्विदं राजन् वरुणानृतमाह पूरुषः।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥८॥

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ९ ॥
मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन।
तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥ १० ॥

हे आञ्जन! तू सौ वर्ष की पूर्ण आयु को प्राप्त कराता है और चिकित्सकों का कहना है कि तू ब्राह्मण के समान शुद्ध और मंगलरूप है। हे आंजन! तू जल देवता सहित हमको सुख देने वाला हो ॥ १ ॥ शरीर को हरे रंग का बना देने वाला पांडुरोग अत्यन्त कष्टसाध्य होता है। आंजनमणि को धारणकर्त्ता पुरुष के वातादि जन्य अङ्गभेद, विसर्पादि व्रण तथा अन्य सब रोग इस मणि से नष्ट हों ॥ २ ॥ यह आंजनमणि कल्याण का देने वाला और मनुष्यों को जीवन देने वाला है। वह मुझे मृत्यु से बचावे और रथ के समान वेग वाला तथा पाप से रहित करे ॥३॥ हे प्राणरूप आंजन! मेरे प्राण की रक्षा कर वह अकाल का ग्रास न बने। तू उसके लिए सुख दे, पापदेवता निर्ऋति के बन्धन से छुड़ा। तू सिंधु का गर्भ और विद्युतों का पुष्प है। तू वातरूप प्राण है, तू सूर्य रूप नेत्रेन्द्रिय है। तू त्रिककुद पर्वत में उत्पन्न हुआ है। देवांजन! सब ओर से मेरी रक्षा कर। अन्य पर्वतों में उत्पन्न औषधियाँ तथा पर्वतों में अन्यत्र उत्पन्न औषधियाँ तेरी समानता नहीं कर सकतीं। यह आंजन रोगनाशक है, पर्वत से नीचे जाकर हर पदार्थ में व्याप्त होने में समर्थ है। यह सब रोगों का दमन कर सकता है ॥ ४—७ ॥ हे वरुण! यह प्रातः समय से सोने के समय तक बहुत सा मिथ्याभाषण कर चुका है इसे क्षमा करो! हे औषधे! तू मिथ्या भाषण के पाप से हमको क्षमा कर। ॥ ८ ॥ हे जलों! हे गौओं! हमने जो कुछ कहा है, उसके हम साक्षी हैं। हे वरुण! हमारी बात को तुम जानते हो। हे त्रैककुद पर्वतोत्पन्न आंजन! इन सब पापों से हमको छुड़ाओ ॥९॥ हे आंजन! मित्रावरुण स्वर्ग से पृथिवी पर आये और लौटकर तेरे पीछे गये। उन्होंने उस समय तुझको फिर लौट कर आने की अनुज्ञा दी ॥ १० ॥

४५ सूक्त

(ऋषि--भृगुः । देवता--आञ्जनम्: अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः ।
छन्द—अनुष्टुप् त्रिष्टुप्, बृहती)

ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ १ ॥
यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुंचताम् ॥ २ ॥
अपामूर्जं ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥ ३ ॥
चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा दिशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥ ४ ॥
आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम् ।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परिपात्वस्मान् ॥ ५ ॥
अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ६ ॥
इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ७ ॥
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये ॥ ८ ॥
भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ९ ॥
मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानाय युषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ १० ॥

जैसे ऋण लेने वाला पुरुष उसे ऋणदाता को ही लौटा देता है,

वैसे ही उत्पीड़नार्थ भेजी हुई कृत्या को हे सूर्य के चक्षु रूप आंजन ! तू भेजने वाले पुरुष को ही लौटा और उसके पार्श्व आदि का खण्डन कर ॥ १ ॥ हम में जो दुःस्वप्न का भय है, गौओं में जो दुःस्वप्न उपस्थित है, उसे अनजान वैरी पुरुष स्वर्णाभूषणों के समान धारण करे ॥२॥ यह त्रिककुदाञ्जन ओज का बढ़ाने वाला, चारों दिशाओं में कुण्ठित न होने वाला, जलों का रस रूप, अग्नि के पास प्रकट होता है. यह चारों पुत्रों को देने में समर्थ है। यह दिशाओं और कोणों को हमारे लिए सुख देने वाले करे ॥३॥ हे रक्षा-काम्य पुरुष ! यह आंजनमणि चारों दिशाओं में वीर्य रूप है। इसे तेरे बांधता हूँ। तेरे लिए सब दिशाऐं भय रहित हों। तू सूर्य के समान तेजस्वी हो और यह प्रजाऐं तुझे स्वर्ण, मणि रत्न आदि से युक्त भेंट दें ॥४॥ हे पुरुष ! तू एक अञ्जन को मणि बना, एक को आंज और एक से स्नान कर। यह आंजन चतुर्वीर है। निर्ऋति देवता के पाश से यह आंजन रूप ओषधियां रक्षा करने वाली हों ॥ ५ ॥ अग्निदेव अपने सभी गुणों सहित मेरी रक्षा करें। प्राणापान, आयु वर्च, ओज, तेज, कल्याण और अपत्य के लिए मेरे रक्षक हों ॥ ६ ॥ इन्द्र प्राणापान; आयु वर्च ओज, तेज, कल्याण और सुभूति की प्राप्ति के निमित्त ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों को सुदृढ़ करते हुये मेरे रक्षक हों ॥ ७ ॥ संसार को तृप्त करने वाले सौम्य रस के द्वारा सोम मेरी रक्षा करें। प्राण अपान, आयु, वर्च. ओज, तेज, मंगल, सुभूति के लिए भी वह मेरी रक्षा करने वाले हों ॥ ८ ॥ ऐश्वर्य सम्पादक गुण के द्वारा भग देवता मेरे रक्षक हों। वे प्राण, अपान, आयु, वर्च, ओज, तेज, मंगल, सुभूति के लिये भी मेरी रक्षा करें ॥९॥ मरुद्गण प्राण, अपान, आयु, वर्च, ओज, तेज, मंगल सुभूति के हेतु मेरी रक्षा करें ॥ १० ॥

४६ सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि--प्रजापति । देवता--अस्तृतमणिः । छन्द--त्रिष्टुप, प्रभृति)

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय ।
मास्तृतस्त्वाभि रक्षतु १ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः ।
इन्द्रइव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून् वि
षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥२॥
शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे ।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥३॥
इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव ।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥४॥
अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते ।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः
सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥५॥
घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः ।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥६॥
यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा ।
सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥७॥

हे मणे ! तू दूसरों द्वारा अबाधित तथा शत्रुओं को वश करने वाली है। सृष्टि के आदि में तुझे विधाता ने धारण किया था। हे पुरुष ! ऐसी मणि को तेरे बांधता हूं। आयु, वर्च, ओज और बल की प्राप्ति में यह मणि तेरी रक्षक हो ॥१॥ हे अस्तृत मणे ! तू सर्व श्रेष्ठ रहती हुई इस पुरुष की रक्षा कर। मणि जातीय असुर तेरी शक्ति को क्षीण न कर पावे। हे पुरुष ! जैसे इन्द्र शत्रुओं को गिराते हैं, जैसे ही तू उन्हें औंधे मुख गिरा। युद्ध रत शत्रु-सेना को वश कर। यह मणि इन कार्यों में तेरी रक्षक हो ॥२॥ प्रहार करने वाले असंख्य शत्रु भी इस मणि से पार न पा सकें, इसीलिये यह अस्तृत नाम वाली है। इन्द्र ने इस मणि में चक्षु, प्राण, बल को प्रतिष्ठित किया है, यह मणि तेरी रक्षा करे ॥३॥ हे मणे ! स्वर्गस्थ देवताओं के स्वामी इन्द्र हैं, उनके कवच से हम तुझे आच्छादित करते हैं। फिर सब देवता तुझे अपने-अपने कवचों से आच्छादित करने को

ग्रहण करें। ऐसा होने पर तू इस धारण कर्त्ता पुरुष की रक्षक बन ॥४॥ यह मणि एक सौ एक वीर्यों से युक्त है और सब देवताओं से अनुग्रहीत होने के कारण उन सबके असंख्य प्राण बल भी इसमें व्याप्त हैं। हे पुरुष! तू ऐसी मणि को धारण करके व्याघ्र के समान शत्रुओं पर पहुँचे। युद्ध-काम्य शत्रु सेना निर्वीर्य हो, इसीलिये यह मणि तेरी रक्षक हो ॥५॥ सब देवताओं की कृपा के कारण असीमित बल वाली, घृत मधु से सिंचित इन्द्र कवच से आच्छादित यह मणि शत्रु को भगाने के अनेक साधनों से सम्पन्न है। हे पुरुष! धारण करने पर यह शरीर सुख, अन्न, पुत्र, पशु आदि का सुख देने वाली है। यह तेरी रक्षा करे ॥ ६ ॥ हे पुरुष! तू सर्व श्रेष्ठ हो, शत्रु से हीन हो, शत्रुओं को मार कर भगाने में समर्थ हो, विद्या, धन, कर्म में समान पुरुषों से श्रेष्ठ हो। सविता देवता तुझे ऐसा करें और यह प्रस्तुत मणि भले प्रकार तेरी रक्षा करे ॥ ७ ॥

४७ सूक्त

(ऋषि गोपथः। देवता—रात्रिः। छन्द—बृहती; जगती, अनुष्टुप)

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥१॥

न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां
नि निशते यदेजति।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि
भद्रे पारमशीमहि ॥२॥

ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव।
अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥३॥
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥४॥
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः।

तेभिर्नो अद्य पायभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥५।
रक्षा माकिर्नो अघशस ईशत मा नो दुःशंस ईशत।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥ ६ ॥
माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधा :।
परमेभिः पथिभि स्तेनो धावतु तस्करः।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥ ७ ॥
अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु।
हनू वृकस्य जम्भयास्तेन त द्रुपदे जहि ।।८॥
त्वयि रात्रि वसामसि स्वविष्यामसि जागृहि।
गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥ ९ ॥

हे रात्रि ! तेरा अन्धकार पृथिवी के सब स्थानों में, स्वर्ग और अन्तरिक्ष के सब स्थानों में भर गया है। तेरे नीले रज्ज का यह तम तीनों लोकों पर छा गया। सब ओर अंधेरा ही अंधेरा है ।। १ ।। जिस रात्रि में यह विश्व विभक्त नहीं होता, एक ही दिखाई देता है, चेष्टावान् प्राणी चलनेमें असमर्थ होता हुआ जहाँ का तहाँ स्थित हो सो जाता है, हे प्रभूत तममयी रात्रि ! हम सब अहिंसित रहते हुये तुझ से पार हों ।।२।। हे रात्रि ! मनुष्यों के कर्म फल को देखने वाले तुम्हारे जो निन्यानवे गण हैं तथा अट्ठासी और सतत्तर गण हैं, उन सब के द्वारा तुम हमारी रक्षा करो ।। ३ ॥ हे रात्रि ! तुम्हारे छियासठ, पचपन और चवालीस गण हमारे रक्षक हों ।।४।। हे रात्रि ! तुम्हारे बाईस या ग्यारह गण हैं उन सबके सहित हमारी रक्षक होओ ।।५। मुझे मारने की धमकी देने वाला कोई भी शत्रु मुझ पर न चढ़ सके, दुर्वाक्य वाला कोई भी दुष्ट मुझ पर अधिकार न कर पावे, चोर हमारी गौओं को चुरा न पावे, शृगाल हमारी भेड़ों को न ले जाय। हे रात्रि ! ऐसा करो ।।६।। हे रात्रि ! तस्कर हमारे घोड़े का अपहरण न कर सके, राक्षसियाँ और पिशाच मेरे मनुष्यों को हिंसित न कर पावें। चोर अन्य मार्गों से होता हुआ चला जाय। दाँत वाली सर्पिणी आदि भी अन्य मार्गगामिनी हो, और हिंसात्मक

विचार वाला पापी भी दूर चला जाय ॥७॥ हे रात्रि ! पीड़ित करने वाले प्रश्वास युक्त सर्प को मस्तक हीन करो । भेड़िये की ठोड़ियों को नष्ट करके उसे मार डालो ॥८॥ हे रात्रि ! तुम्हारी रक्षा के बल पर हम टिके हैं और उसी के द्वारा निद्रा को प्राप्त होंगे । तुम हमारी गौ, अश्व, संतान आदि को सुख देती हुई हमारी रक्षा में तत्पर रहो ॥९॥

सूक्त ४८

(ऋषि—गोपथः देवता—रात्रिः । छन्द—गायत्री; अनुष्टुप् पंक्ति)

अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि ।
तानि ते परि दद्मसि ॥१॥
रात्रि मातरुषसे नः परि देहि ।
उषा नो अह्ने प र ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥२॥
यत् किं चेदं पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम् ।
यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ॥ ३ ॥
सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत ।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥४॥
ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति ।
पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति
ते नः पशुषु जाग्रति ॥ ५ ॥
वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥६॥

खुले हुये चरागाह में जो वस्तुएँ हैं, घर में जो वस्तुएँ हैं, उन सबको हे रात्रि ! हम तुम्हें सौंपते हैं ॥ १ ॥ हे रात्रि ! तुम माता की समान रक्षा करने वाली हो । अपने बाद होने वाले उषाकाल को हमारी रक्षा के लिए प्रदान करो । उषाकाल के पश्चात् होने वाला जो दिन है, उसे हमको सुख पूर्वक प्रदान करो । वह दिन फिर तुम्हें हमको दे दे ॥२॥ आकाश में उड़ने

वाले पक्षी और पृथिवी पर सरकने वाले सर्पादि, पर्वत और जंगल में घूमने वाले सिंह आदि इन सब हिंसकों से हे रात्रि ! हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥ हे रात्रि ! हमारे सोने बैठने के स्थानों की चारों दिशाओं से रक्षा करो। हम तुम्हारा ही स्तोत्र कर रहे हैं।।४।। रात्रि से सबंधित अनुष्ठान आदि करते हुये जो पुरुष रक्षार्थ जगते रहते हैं और जो रात्रि के चोरी आदि कर्मों से सावधान रहते हैं, वे पशुओं और मनुष्यों की रक्षा के लिये जागते रहें ॥ ५ ॥ हे रात्रि ! तू घृताची कहलाती है, इस बात को भारद्वाज ऋषि जानते हैं । ऐसी हे रात्रि ! हमारे पशु आदि की रक्षा के लिये तू सावधान रह ॥ ६ ॥

४९ सूक्त

(ऋषि—गोपथः भारद्वाजश्च । देवता—रात्रिः । छन्द—त्रिष्टुप्,पंक्ति,जगती)

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।
अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥ १ ॥
अति विश्वान्यरुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः ।
उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्रइव स्वधाभिः ॥ २ ॥
वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥३॥
सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥ ४ ॥
शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥५॥
स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥ ६ ॥
शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ॥ ७ ॥
भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरूप युवतिर्बिभर्षि ।

चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः ॥ ८ ॥
या अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥ ९ ॥
प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।
यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥ १० ॥

एक अवस्था वाली, सब के द्वारा पूज्य, चक्षुओं को तिरस्कृत करने वाली, आह्वानीय रात्रि विश्व में व्याप्त होने से एकाकार वाली लगती है। द्यावापृथिवी उस रात्रि की महिमा से युक्त हो रहे हैं ॥ १ ॥ सर्वत्र व्याप्त इस रात्रि की सब स्तुति करते है, यह सब वन पर्वत, समुद्र आदि को आच्छादित किये हुये है। यजमान आदि के अन्नदान के प्रभाव से सूर्य जैसे जगत पर चढ़ते हैं, वैसे ही यह भी जगत पर छा जाती है ॥ २ ॥ हे सुन्दर जन्म वाली, सौभाग्यवती रात्रि ! तू आ गई। मैं तुझे पाकर सुन्दर मन वाला बनूं तब तुम प्रसन्न होकर मेरे पशु,पुत्रादि की रक्षा करो और मनुष्यों और पशुओं के हित वाले पदार्थों की भी रक्षा करो ॥३॥ यह रात्रि, सिंह, हाथी, गैंडा आदि के तेजों को खींचती है, प्राणी के आह्वान रूप शब्द और अश्व के वेग को भी खींच लेती है। हे रात्रि ! तुम इस प्रकार विशेष रूप से दीप्तिमती होकर अपने अनेक रूप प्रकट करती हो ॥४॥ हे रात्रि ! तू मंगलमयी है, मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। रात्रि के भरण करने वाले सूर्य की भी स्तुति करता हूँ। यह रात्रि हिम का उत्पादन करने वाली है। हे रात्रि ! मेरी स्तुति को भले प्रकार जानो जिससे तुम सर्वत्र व्याप्त की मैं वन्दना कर सकूँ ॥५॥ हे विभावरि ! राजा जैसे अपने प्रशंसकों की स्तुतियों को प्रसन्न होता हुआ सुनता है, वैसे ही तुम हमारे स्तोत्र से प्रसन्न होओ ।६॥ तुम्हारे स्तोत्र सुनने पर हम पुत्र पौत्र और धनों से सम्पन्न उषाकालों से युक्त रहें। ७ ॥ हे रात्रि ! तुम शत्रुओं का शमन करने में समर्था हो। मेरे धन के अपहारकों के प्राणों को संतप्त करती हुई आगमन करो। चोर नष्ट भी हो जाय और पुनः प्रकट न हो, ऐसी कृपा करती हुई आओ ॥८॥ हे रात्रि ! तुम सर्वत्र व्याप्त होने वाली, घोर अन्धकार से

सम्पन्न धेनु रूप और चमस के समान मंगलमयी हो। तुम हमको पुष्ट करती हुई, दर्शन इन्द्रिय देती हुई आओ और जैसे दिव्य शरीर को नहीं छोड़ती वैसे हमारे शरीरों को पृथिवी पर न छोड़ ॥ ८ ॥ जो अघायु हमारे धन का अपहरण करने या बध रूप पाप करने के लिए आ रहा हो, वह शत्रु रात्रि के तेज से संतप्त होकर हमसे दूर भागे और रात्रि देवता उसकी ग्रीवा और कंठ को भी काट डाले ॥ ९ ॥ पाँव, हाथ से भी हीन होकर वह शत्रु अगाध निद्रा को प्राप्त हो और शुष्क वृक्ष के नीचे स्थान प्राप्त करे ॥ १० ॥

५० सूक्त

(ऋषि—गोपथः । देवता—रात्रिः । छन्द—अनुष्टुप्)

अध रात्रि तृष्टधूमभशीर्षाणमहिं कृणु ।
अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ १ ॥
ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृंगाः स्वाशवः ।
तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥ २ ॥
रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् ।
गम्भीरमप्लवाइव न तरेयुररातयः ॥ ३ ॥
यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते ।
एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥ ४ ॥
अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् ।
अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥ ५ ॥
यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु ।
यदेतदस्मान् भोजय तथेदन्यानुपायसि ॥ ६ ॥
उपसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः ।
उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥ ७ ॥

जिस सर्प का धूम रूप श्वास कष्टदायक है उसे हे रात्रि ! शीर्ष-हीन करो। शृगाल को नेत्रहीन करके वृक्ष के स्थान में मार कर डाल दो ॥ १ ॥

हे रात्रि ! तुम्हारे तीक्ष्ण शृङ्ग वाले वृषभ शीघ्र गति वाले हैं, उनके द्वारा तू न जीते जाने योग्य अनर्थों से पार कर ॥ २ ॥ हम अपने पुत्रादि सहित रात्रि को लांघ जांय, परन्तु हमारे शत्रु रात्रि को न काट सकें। साधन-हीन मनुष्य गम्भीर नदी में जाकर डूब जाते हैं; वैसे ही हे रात्रि ! तुम्हारे रक्षा रूप नाव से रहित हमारे शत्रु मार्ग में ही नाश को प्राप्त हों ॥ ३ ॥ हे रात्रि ! हमारे लिए पाप रूप होकर जो शत्रु आ रहा है, उसे पके हुए शाम्याक के समान पृथिवी पर गिरा दो ॥ ४ । वस्त्रापहारक, गौ और अश्वादि के अपहारक को हे रात्रि ! तुम नाश को प्राप्त कराओ । ५ ॥ हे सुभगे ! हे रात्रि ! जो शत्रु हमारे सुवर्णादि धनों को हमसे छीनना चाहते हैं, उस धन का भोगने वाला हमको बनाओ। जिस मार्ग से शत्रुओं के धन को हमें प्राप्त कराती हो, उसी मार्ग से हमारे धनों को भी हमारे पास पहुँचाओ ॥ ६ ॥ हे रात्रि ! हमारी उषा काल तक रक्षा करो, वह उषा सूर्योदय तक हमारी रक्षा करे और वह दिन सुख पूर्वक फिर तुम्हें प्राप्त करावे इस प्रकार के यह दिन-रात्रि हमको धन आदि से युक्त रखते हुए शत्रुओं से रक्षित करें ॥ ७ ॥

५१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आत्मा; सविता । छन्द—अनुष्टुप्; उष्णिक्)

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे
प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो-
हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥ २ ॥

मैं कर्मानुष्ठान की इच्छा वाला पूर्ण हूँ, मेरा शरीर भी पूर्ण है, मेरे नेत्र, श्रोत्र, नासिका, प्राण, अपान, व्यान सब पूर्ण हैं, मैं सर्वेन्द्रिय हूँ ॥ १ ॥ हे कर्म ! मैं प्रयोग करने वाला पुरुष सबको प्रेरणा देने वाले सवितादेव की प्रेरणा से, अश्विनीकुमारों की भुजाओं से और पूषा के हाथों से तुझे प्रारम्भ करता हूँ ॥ २ ॥

५२ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—कामः । छन्द—त्रिष्टुप्; उष्णिक् बृहती)

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ १ ॥
त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २ ॥
दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये ।
आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥ ३ ॥
कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि ।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥ ४ ॥
यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ ५ ॥

सृष्टि के पूर्व परमात्मा के मनमें काम भले प्रकार व्याप्त हो गया । हे काम ! सृष्टि रचना के लिए प्रथम उत्पन्न हुआ तू परमात्मा का सयोनि है । तू हविदाता यजमान को धन की पुष्टि में स्थापित कर ॥ १ ॥ हे काम ! तुम साहस से प्रतिष्ठित हो, तुम विभु और विभावा हो । हे मित्र ! तुम हमारे प्रति मित्र-भाव रखते हो । तुम शत्रुओं को वश करने वाले एवं महान बली हो । इस यजमान को ओज और बल प्रदान करो । २ ॥ पूर्वादि सब दिशाओं ने इस दुर्लभ फल की अभिलाषा करने वाले यजमान को इच्छित फल-प्राप्त कराने और अक्षय फल द्वारा सुख प्रदान करने का निश्चय किया है ।३॥ अभीष्ट फल की कामना से सम्पन्न फल मुझे मिले और ब्राह्मणों का फल-प्राप्त युक्त मन भी मुझे प्राप्त हो ॥ ४ ॥ हे कामदेव ! जिस फल की कामना से हम तुम्हारे लिये हवि दे रहे हैं, उस हविर्भाग को ग्रहण करो और हमारा इच्छित फल पूर्ण हो ॥ ५ ॥

५३ सूक्त

(ऋषि—भृगुः । देवता—कालः । छन्द—त्रिष्टुप् बृहती; अनुष्टुप्)

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥
सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥ २ ॥
पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥ ३ ॥
स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥ ४ ॥
कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥ ५ ॥
कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥ ६ ॥
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥ ७ ॥
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥ ८ ॥
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥ ९ ॥
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयम्भूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥ १० ॥

कालात्मक वस्तुओं को व्याप्त कर लेने वाले वह अश्व सप्तरश्मि वाले, सहस्र नेत्र वाले नित्य युवा; भूरि वीर्ययुक्त हैं । उस अश्व-रूप पर बुद्धिमान

ही आरूढ़ होते हैं। उस अश्व के चक्र समस्त लोक हैं ॥ १ ॥ कालात्मक संवत्सर सात चक्रों (ऋतुओं) को वहन करता है यह चक्र इसके नाभि-रूप हैं। अमृत अक्ष है। यही कालात्मक ब्रह्म चराचरात्मक विश्व को रचता और यही उसका नाश करता हुआ स्थिर रहता है ॥२॥ संसार के कारणभूत परमेश्वर काल से, कुम्भ के समान पूर्णतया व्याप्त हैं। हम साधु पुरुष उस काल को अनेक भेद से देखते हुए उसे व्योम के समान निर्लेप बताते हैं ॥ ३ ॥ वही काल परमात्मा प्राणियों को उत्पन्न करते हैं, वही भुवनरूप से स्थित हैं, वही इनके पिता होते हुए भी पुत्र हो जाते हैं। इस काल से श्रेष्ठ अन्य कोई तेज नहीं है ॥ ४ ॥ द्युलोक और प्राणियों को आश्रय देने वाली पृथिवी को काल ने ही प्रकट किया। भूत, भविष्य और वर्तमान भी इस काल के ही आश्रित हैं ॥ ५ ॥ इस संसार की रचना उसी काल ने की। काल की प्रेरणा से ही सूर्य इस विश्व को प्रकाश देते हैं। सब प्राणी काल के ही आश्रित हैं। इन्द्रियों का अधिष्ठाता काल में ही अपनी इन्द्रिय-संचालन आदि क्रियाओं को करता है ॥ ६ ॥ उसी काल में सृष्टि रचना का मन रहता है, उसी में संसार में अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाला प्राण निवास करता है। आगत काल से ही सब प्रजा अभीष्ट-सिद्धि को प्राप्त कर प्रसन्न होती है ॥ ७ ॥ काल ही तप है, काल ज्येष्ठ है, काल में ही ब्रह्म प्रतिष्ठित है। काल सभी का ईश्वर, पिता और प्रजापति है ॥ ८ ॥ यह जगत काल से ही उत्पन्न हुआ और काल में ही प्रतिष्ठित है। काल ही ब्रह्म होता हुआ परमेष्ठी ब्रह्मा को धारण करता है ॥ ९ ॥ काल ने पहिले प्रजापति को उत्पन्न किया, फिर प्रजाओं की रचना की। काल से कश्यप हुए। वह काल स्वयम्भू है ॥ १० ॥

५४ सूक्त

(ऋषि—भृगुः। देवता— कालः। छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री; अष्टि)

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥ १ ॥

कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही ।
द्यौर्मही काल आहिता ॥२॥
कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा ।
कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥३॥
कालो यज्ञं समैरयद् देवेभ्यो भागमक्षितम् ।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ।४॥
कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः ।
सर्वाँल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥५॥

काल से ही जलों की उत्पत्ति हुई, काल से ही ब्रह्म, तप, दिशाएँ और सूर्य उत्पन्न हुए । काल ही सूर्य को फिर अस्त कर देता है ॥ १ ॥ काल से वायु बहता है, काल से ही पृथिवी महिमामयी हुई है और द्युलोक भी काल के ही आश्रित है ॥ २ ॥ काल से ही भूत, भविष्य, पुत्र, पुर, ऋचा और यजुर्वेद की उत्पत्ति हुई ॥ ३ ॥ काल ने ही यज्ञ को देवताओं के भाग रूप में प्रकट किया, काल से ही गन्धर्व, अप्सराएँ हुईं । यह सब लोक उस काल के ही आश्रित हैं ॥४॥ यह अंगिरा, अथर्वा आदि महर्षि काल से ही हुए । वह काल इस परमलोक स्वर्ग तथा अन्य लोकों को देश, काल, कारण से रहित परम-ब्रह्म के द्वारा व्याप्त करके स्थित रहता है ॥ ५ ॥

५५ सूक्त

(ऋषि—भृगुः । देवता—अग्निः, छन्द—त्रिष्टुप्; पङ्क्तिः उष्णिक्)

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ १ ॥
या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड ।
रायस्पोषेण समिधा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥२॥

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥ ३ ॥
प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनस्य दाता ।
वसार्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतहिमा ऋधेम ॥ ४ ॥
अपश्चादग्धान्नस्य भूयासम् ।
अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये ॥ ५ ॥
सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ।
त्वयेद्गा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवम् ॥ ६ ॥
अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! गार्हपत्य आदि रूपों में वर्तमान तुम पूजन योग्य को हवि देते हुए हम इच्छित अन्न और धन सम्पन्न रहें तथा तुम्हारा सामीप्य प्राप्त करके नाश को प्राप्त न हों ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम अपनी अन्न देने वाली जो कृपामयी मति है, उसके द्वारा सुख प्रदान करो । हम तुम्हारा सामीप्य पाकर धन से पुष्ट और अन्न से सम्पन्न रहें । हम नष्ट न हों ॥ २ ॥ गार्हपत्य अग्नि प्रातः और सायं दोनों समय हमको सुख देते हैं । हे अग्ने ! तुम हमारे पास वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमको धन दो । हम तुम्हें हवियों से प्रदीप्त करते हुए अपने शरीरों को स्वस्थ रखें ॥ ३ । गार्हपत्य अग्नि प्रातः सायं कालों में हमें सुख प्रदान करते हैं । हे अग्ने ! तुम वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमको सब का धन दो । हम तुम्हें हवियों से दीप्त करते हुए सौ वर्ष तक जीवें ॥ ४ । पात्र के पेंदे में जले हुए अन्न को मैं न पाऊँ । अन्न सेवन करने वाले अन्नपति रुद्रात्मक अग्नि को नमस्कार करता हूँ ॥५॥ सभा में प्रतिष्ठित होने वाले तुम मेरे पुत्र मित्रादि के रक्षक होओ । सभासद इस सभा के रक्षक हों ॥ ६ ॥ हे इन्द्र और अग्ने ! तुम ऐश्वर्यवान् हो । हमको जीवन भर अन्न दो । हमको आयु दो । अश्व को तृण देने के समान जो तुमको नित्यप्रति हवि देते हैं, उन्हें अन्न प्रदान करो । ७ ॥

५६ सूक्त

(ऋषि—यमः । देवता—दुःस्वप्ननाशनम् । छन्द—त्रिष्टुप्,)

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः ।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥१॥
बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि ।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥२॥
बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन् ।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ॥३॥
नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम् ।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥४॥
यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः ।
स्वमदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥५॥
विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते ।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥ ६ ॥

हे पिशाच ! तू यमलोक से दुःस्वप्न के रूप में पृथिवी पर आया है और निर्भय होकर तू स्त्री पुरुषों के निकट जा पहुँचता है और तू दुःस्वप्न-ग्रस्त पुरुष के रथ पर एक साथ बैठकर ही जाता है ॥ १ ॥ हे दुःस्वप्न ! तुझे प्रजापति[illegible] आदि [illegible]न रात्रि की रचना से पहिले और विधाता ने सृष्टि के आरम्भ में देखा था, तभी से तू इस संसार पर छाया हुआ है । चिकित्सकों के सामने तू अन्तर्हित हो जाता है ॥ २ ॥ यह दुःस्वप्न असुरों के यहाँ से चल कर महिमा प्राप्त करने की कामना करता हुआ देवताओं के पास पहुँचा, तब उन तेंतीस देवताओं ने उस दुःस्वप्न को अनिष्ट करने वाली शक्ति प्रदान की ॥३॥ तेंतीस देवताओं द्वारा दुःस्वप्न को अनिष्ट फल वाली शक्ति देने वाली बात को उन देवताओं के अतिरिक्त पितर भी नहीं जानते । पाप नाशक वरुण द्वारा उपदेशित आदित्यों ने महर्षि त्रित में इसे स्थापित किया ॥४॥ पाप करने

वाले पुरुष जिस दु:स्वप्न रूप भयङ्कर फल को प्राप्त करते हैं और पुण्यात्मा पुरुष जिस दु:स्वप्न के अभाव में दीर्घ आयु को प्राप्त करते हैं, ऐसे हे दु:स्वप्न ! तू अपने परम बन्धु विधाता के साथ रहता हुआ प्रसन्न होता है और पापी को मृत्यु की सूचना के रूप में तू प्रकट होता है ॥ ५ ॥ हे स्वप्न ! हम तेरे परिजन, और स्वामी के भी जानने वाले हैं, तू दु-स्वप्न के समय हमारी रक्षा करने वाला हो। तू हमसे द्वेष करने वालों को साथ लेकर दूर चला जा ॥ ६ ॥

५७ सूक्त

(ऋषि—यम: । देवता—दु:ष्वप्ननाशनम् । छंद—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती)

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
एवा दु:ष्वप्न्यं सर्वमप्रिये स नयामसि ॥ १ ॥
सं राजानो अगु: समृणान्यगु: स कुष्ठा अगु: सं कला अगु: ।
समस्मासु यद् दु:ष्वप्न्यं निर्द्विषते दु:ष्वप्न्यं सुवाम ॥ २ ॥
देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर या भद्र: स्वप्न ।
स मम य: पापस्तद् द्विषते प्र हिण्म: ।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥ ३ ॥
तं त्वा स्वप्न तथा स विद्म स त्वं स्वप्नाश्वइव कायमश्वइव नीनाहम् ।
अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप यदस्मासु
दु:ष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ॥ ४ ॥
अनास्माकस्तद् देवपीयु: पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम् ।
नवारत्नीनपमया अस्माकं तत: परि ।
दु:ष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥ ५ ॥

जैसे यज्ञ में अवदानीय अङ्गों को लेकर संस्कार करने वाले ऋत्विज अन्यत्र उठा ले जाते हैं, जैसे ऋण को भार समझ कर उतारते हैं, वैसे ही हम दु:स्वप्न जनित अनिष्टों को जल के पुत्र त्रित पर उतारते हैं ॥ १ ॥ जैसे

शत्रु नाश के लिए एकत्र होते हैं, जैसे ऋण बढ़ते हुए एकत्र होते हैं, जैसे कुष्ट आदि वृद्धि को प्राप्त रोग एकत्र होते जाते हैं, जैसे फेंके हुए खुर आदि गड्ढे में एकत्र होते जाते हैं, वैसे ही दुःस्वप्न देखने से जो अनिष्ट एकत्र हो गए हैं, उन्हें हम अपने शत्रुओं पर डालते हैं ॥ २ ॥ हे देवपत्नियों के गर्भ ! हे यम के हाथ रूप स्वप्न ! तेरा मंगलमय भाग मुझे प्राप्त हो और तेरा क्रूर भाग हम शत्रु की ओर भेजते हैं । काले काक का स्वप्न के समान मुख मेरे लिए बाधक न हो ॥३॥ हे स्वप्न तेरे इस प्रकार के जन्म और आगमन को हम जानते हैं । जैसे अश्व धूल से भरे शरीर को झाड़ता और काठी आदि को गिरा देता है, वैसे ही हमारे तथा देवता और यज्ञों के बाधक शत्रु का तू पतन कर । गौ के निमित्त अपशकुन रूप दुःस्वप्न को भी तू हमारे घर से हटा ॥४॥ हे देव ! उस अनिष्ट को हमारा शत्रु अलंकार के समान धारण करे । हमारे दुःस्वप्न का जो बुरा फल है उसे तुम नौ मुट्ठी दूर हटाओ । हम अपने द्वेषी पर इस उत्पन्न कुफल को प्रेषण करते हैं ॥ ५ ॥

५८ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—मन्त्रोक्ताः । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् शक्वरी)

घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती ।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥ १ ॥
उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे ।
वर्चो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता ॥ २ ॥
वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा
पृथिवीमनु सं चरेम ।
यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा
पृथिवीमनु सं चरेम ॥ ३ ॥
व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥ ४ ॥
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।

इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ५ ॥
ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् ।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥ ६ ॥

परमात्मा विषयक बुद्धि, संवत्सर रूप ईश्वर को शब्द स्पर्श रूप हवि से परिपुष्ट करती है। साधक अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटाकर संयमाग्नि में झोंकते हैं, ऐसे हम श्रोत्र, चक्षु, प्राण आयु, वर्च आदि से युक्त रहें ॥ १ ॥ हमारे शरीरों का धारक प्राण हमें दीर्घजीवी बनावे। हम उस प्राण से शरीर में चिरकाल तक विद्यमान रहने को कहते हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष, सोम, बृहस्पति और सूर्य ने हमको प्रदान करने लिए वर्च को ग्रहण किया है ॥ २ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! वर्च प्रदान करो। हम तुम्हारे तेज से पृथिवी और आकाश में घूमें। मुझ स्वामी को अन्न से युक्त गौऐं प्राप्त हों और हम उन गौओं के साथ ही यश को भी पाकर दोनों लोकों में घूम सकने वाले हों ॥३॥ हे इन्द्रियो ! शरीर से मिलकर रहो क्योंकि यह शरीर ही तुम्हारा रक्षक है। तुम अपने कर्मों को भले प्रकार करो और अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने में समर्थ होओ। चमस के समान यह भाग साधन रूप शरीर नाश को प्राप्त न हो।॥४॥ यज्ञ के नेत्र रूप अग्नि, प्रथम पूज्य होने के कारण मुख रूप हैं। उन अग्नि के लिए मैं श्रोत्रादि से युक्त मन के द्वारा हवि प्रदान करता हूं। विश्वकर्मा के इस यज्ञ में अनुग्रह बुद्धि वाले इन्द्रादि देवता आगमन करें ॥५। देवताओं में ऋत्विज रूप तथा यज्ञार्ह, जिनके लिए हविर्भाग दिया जाता है, वे देवता जितने भी हैं, वे सब अपनी पत्नियों सहित इस यज्ञ में आकर हवि ग्रहण करें और हम पर प्रसन्न हों ॥ ६ ॥

५९ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री; त्रिष्टुप्)

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ १ ॥
यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः।
अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ।।२।।

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ॥३॥

हे अग्ने ! तुम मनुष्यों में जठराग्नि रूप से निवास करते हो । तुम कर्मों की रक्षा करने वाले हो । तुम यज्ञोंमें स्तुतियों द्वारा पूजित होते हो ॥१॥ हे देवगण ! विद्वानों के जिन कर्मों को हम अल्प ज्ञान वाले नहीं जानते हैं, उन अन्तर्हित हुए कर्मों को अग्नि देवता सम्पन्न करते हैं । सोम की पूजा करने वाले ब्राह्मणों के सामने यह अग्नि प्रतिष्ठित हैं ॥ २ ॥ हम जिस अनुष्ठान की कामना करते हैं उसे यथा स्थान पहुँचाने के लिए हम देवयान मार्ग को जान गए हैं । उस देवयान मार्ग के ज्ञाता अग्निदेव की पूजा करें क्योंकि देवताओं के होता और आह्वान करने वाले वही हैं । वे अहिंसित यज्ञों का समय निश्चित करें ॥ ३ ॥

६० सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—वागादिमन्त्रोक्ताः छन्द—बृहती; उष्णिक्)

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः ।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥ २ ॥

मेरे मुख में वाणी, नासिका में प्राण, नेत्रों में दर्शन शक्ति, दाँत अक्षुण्ण और केश पलित रोग से रहित रहें मेरी बाहुओं में बल रहे ॥१॥ ऊरुओं में ओज, जाँघों में वेग और पाँवों में खड़े रहने योग्य शक्ति रहे । आत्मा अहिंसित और अङ्ग पाप से शून्य हों ॥ २ ॥

६१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मणस्पतिः । छन्द—बृहती)

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥ १ ॥

मैं जीवन भर अपने दाँतों से खाता रहूँ, शत्रुओं के शरीरों को अपने

शरीर से दबा सकूं। हे अग्ने ! तुम मेरे यहाँ सुख से प्रतिष्ठित होओ और स्वर्ग में भी मुझे सुख से सम्पन्न रखो ॥ ॥

६२ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—ब्रह्मणस्पतिः। छन्द—अनुष्टुप्)

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रिय सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥१॥

हे अग्ने ! मुझे देवताओं का प्रिय बनाओ और मुझे राजा का भी प्रिय करो। मैं सब शूद्रों का, आर्यों का और सब देखने वालों का भी स्नेह-पात्र होऊँ ॥ १ ॥

६३ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—ब्रह्मणस्पतिः। छन्द—बृहती)

उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्ति यजमानमं च वर्धय ॥१॥

हे ब्रह्मणस्पते ! उठो और देवताओं को यज्ञ के प्रति बोधित करो। इस यजमान की आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति तथा यजमान की भी वृद्धि करो ॥ १ ॥

६४ सूक्त

(ऋषिः—ब्रह्मा। देवता—अग्निः। छन्दः—अनुष्टुप्)

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥१॥
इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि।
तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च ॥ २ ॥
यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि।
सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठय ॥ ३ ॥
एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद् भव।

आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥ ४ ॥

उन जातवेदा अग्नि के लिए मैं समिधाएँ ले आया और उन्हें दीप्त कर रहा हूँ। यह मेरे लिए श्रद्धा और वेदात्मक बुद्धि को प्रदान करें ॥ १ ॥ हे अग्ने ! हम तुम्हें समिधा द्वारा प्रवृद्ध करते हैं अतः तुम हमको धन और सन्तान से समृद्ध करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! यह यज्ञीय या अयज्ञीय काष्ठ तुम्हारे निमित्त रखे हैं, वह सब मेरे लिए मंगलमय हो। तुम उन काष्ठों का भक्षण करो। ३॥ हे अग्ने ! तुम्हारे लिए यह समिधा लाई गई हैं, तुम उनसे प्रदीप्त होओ और हम समिधा डालने वालों को आयु दो। हमारे आचार्य को अमृतत्व प्रदान करो ॥ ४ ॥

६५ सूक्त

(ऋषि— ब्रह्मा । देवता—सूर्यो जातवेदाः । छन्द—जगती)

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥१॥

हे सूर्य ! तुम अँधेरे का नाश करने वाले हो। तुम अपने तेज से आकाश पर चढ़ते हो। तुम्हें जो शत्रु हिंसित करना चाहते हैं उन रोकने वाले शत्रुओं को अपने तेज से भस्म करो। तुम अपने उसी तेज से स्वर्ग पर प्रतिष्ठित हो। १ ॥

६६ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—सूर्यो जातवेता वज्रः । छंद—जगती)

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति ।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान्
प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥ १ ॥

जो देवताओं के वैरी राक्षस लौह-पाश हाथ में लिए पुण्यात्माओं को मारने के लिए घूमते हैं, हे सूर्य ! उन सबको मैं तुम्हारे तेज से अपने आधीन करता हूँ। तुम सहस्र रश्मि वाले एवं वज्रधारी हो। शत्रुओं को मार कर हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥

६७ सूक्त

(ऋषि--ब्रह्मा । देवता--सूर्यः । छन्द--गायत्री)

पश्येम शरदःशतम् ।१॥ जीवेम शरदःशतम् ॥ २ ॥
बुध्येम शरदः शतम् ॥३॥ रोहेम शरदः शतम् ॥ ४ ॥
पूषेम शरदः शतम् ॥५॥ भवेम शरदः शतम् ॥ ६ ॥
भूयेम शरदः शतम् ॥७॥ भूयसीः शरदः शतात् ॥ ८ ॥

हे सूर्य ! हम तुम्हें सौ वर्ष तक देखते रहें ॥ १ ॥ हम सौ वर्ष तक जीवित रहें ॥ २ ॥ हम सौ वर्ष तक बुद्धि से सम्पन्न रहें ॥३॥ हम सौ वर्ष तक निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हों ॥ ४ ॥ हम सौ वर्ष तक पुष्ट रहें ॥५॥ हम पुत्रादि के प्रवाह से सौ वर्ष तक सम्पन्न रहें । सौ वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रहें ॥ ५-७-८ ॥

६८ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता--मन्त्रोक्तं कर्म । छन्द--अनुष्टुप्)

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे । १ ॥

मैं अपने व्यान और प्राण वायु के मूलाधार को अभिभवन से पृथक् करता हूँ । उन व्यान और प्राण से अक्षरात्मक वेद को वैखरी के क्रम से पृथक् कर हम कर्म करते हैं ॥ १ ॥

६९ सूक्त

(ऋषि--ब्रह्मा । देवता--आपः । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री; उष्णिक)

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥
उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ २ ॥
संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ३ ॥
जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ४ ॥

देवगण ! तुम आयु वाले हो, तुम्हारी कृपा से मैं भी आयु वाला

होऊं ।। १ ।। मैं पूर्ण आयु वाला होऊं ।। २ ।। मेरी आयु सत्कार्यों में व्यतीत हो ।। ३ ।। देवताओ ! तुम आयुष्मान् हो, मैं भी आयुष्मान् होऊं ।।४।

७० सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—इन्द्रादयो मन्त्रोक्ताः । छन्द—गायत्री)

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ।। १ ।।

हे इन्द्र ! तुम जीवित रहो, हे सूर्य ! तुम जीवित रहो, हे देवताओ तुम भी जीवित रहो और तुम्हारे अनुग्रह से मैं भी चिरकाल तक जीवित रहूं ।। १ ।।

७१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता । गायत्री । छन्द—जगती)

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।। १ ।।

मेरे द्वारा स्तुति की गई वेद की माता मुझ स्तोता को आयु, प्राण, प्रजा, पशु. कीर्ति,धन,ब्रह्मवर्च देती हुई ब्रह्मलोक के लिए गमन करे ।।१।।

७२ सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा । देवता—परमात्मा देवाश्च । छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ।। १ ।।

हम जिस कोश से वेद को निकाल कर, जिस स्थान से कर्म किये जाते हैं उस स्थान में उसे पुनः प्रतिष्ठित करते हैं ब्रह्म के कर्म प्रतिपादक वीर्य रूप वेद से जो कर्म किया है उस अभीष्ट कर्म के फल द्वारा हे देवताओ मेरा पालन करो ।। १ ।।

* इत्येकोनविंसं काण्डं समाप्तम् *

विंश काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाद)

(ऋषि—विश्वामित्रः, गोतमः विरूपः । देवता—इन्द्रः; मरुतः, अग्निः
छन्द—गायत्री)

इन्द्र त्वा वृषभं वय सुते सोमे हवामहे ।
स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥
मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः ।
स सुगोपातमो जनः ॥ २ ॥
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥३॥

हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त ऐश्वर्यवान् हो और अभीष्टों की वर्षा करने में समर्थ हो। सोम के निष्पन्न होने पर हम तुम्हें आहूत करते हैं। इसलिए यहाँ आकर इस मधुर रस युक्त सोम का पान करो ॥१॥ हे मरुद्गण ! तुम सब देवताओं से उत्कृष्ट तेज से युक्त हो। तुम जिस यज्ञ गृह में आकाश से आकर सोम पीते हो, उसका गृह स्वामी यजमान अपने आश्रितों की रक्षा करने वालों में अत्यन्त श्रेष्ठ होता है, अतः तुम मेरे घर में आकर ही सोम पीओ ॥२॥ वृषभ और बन्ध्या गौ जिनका भाग है और सोम जिनके ऊपर स्थित रहता है, ऐसे उन अग्निदेव की हम स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते है ॥३॥

२ सूक्त

(ऋषि—? । देवता—मरुतः; अग्निः; इन्द्रः; द्रविणोदाः ।
छन्द—गायत्री; उष्णिक्; त्रिष्टुप्)

मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ १ ॥

अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ २ ॥
इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ ३ ॥
देवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ ४ ॥

मरुद्गण पोता के लिए सुन्दर स्तोत्र वाले और सुन्दर मन्त्रों से युक्त यज्ञकर्म में हमारे संस्कृत सोम का पान करें ॥ १ ॥ अग्नि का समिधन करने वाले ऋत्विज के कर्म से प्रसन्न होते हुए अग्नि सोम रस पीयें। यह अग्नीध्र कर्म सुन्दर मन्त्र और स्तुतियों से युक्त हैं ॥२॥ इन्द्र ही ब्रह्मा हैं, क्योंकि वह महान् हैं। हे ब्रह्मात्मक इन्द्र ! ऋत्विज की सुन्दर स्तुतियों से पूर्ण यज्ञ कर्म में संस्कृत सोम का पान करो ॥ ३ ॥ धनदाता द्रविणोदा हमको धन दें। वे ऋत्विज् कृत सुन्दर स्तोत्र से यज्ञ में शोधित सोम रस को पीवें।

३ सूक्त

(ऋषि—इरिम्बिठिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि न श्रृणु ॥ २ ॥
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! यहाँ आओ । हमने सोम को संस्कृत किया है अतः इसे पीओ और विस्तृत कुशाओं पर प्रतिष्ठित होओ । १। हे इन्द्र ! तुम्हारे हर्यश्व मन्त्रों से रथ में जुड़ते हैं और अभीष्ट स्थान पर पहुँचाते हैं । वे अश्व तुम्हें हमारे लावें तब तुम हमारी स्तुति सुनो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! हम अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मणों ने सोमयाग किया है और संस्कारित सोम यहाँ उपस्थित है । तुम सोम पीने वाले का हम स्तोता अपने सुन्दर स्तोत्र से आह्वान करते हैं ॥ ३ ॥

४ सूक्त

(ऋषि--इरिम्बिठिः । देवता--इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥१॥
आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।
गृभाय जिह्वया मधु ॥ २ ॥
स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ॥३॥

हे इन्द्र ! हमारे पास सोम है; तुम हमारे शोभन स्तोत्र पर ध्यान देते हुए यहाँ आओ । तुम सुन्दर हनु वाले हो । हमारे इस सोम रस को पीओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! मैं तुम्हारी दोनों कोखों को सोम रस से सम्पन्न करने की इच्छा कर रहा हूँ । यह सोम तुम्हारे सब अङ्गों में व्याप्त होकर गति करे । इसलिए इस मधुर रस को अपनी जीभ के द्वारा पीओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम धन-दान आदि में प्रसिद्ध हो । हमारे द्वारा भेंट किया हुआ सोम सुस्वादु हो और तुम्हारे लिए शक्ति दे । यह सोम तुम्हें प्रसन्नता प्रदान करे ॥ ३ ॥

५ सूक्त

(ऋषि--इरिम्बिठि । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ १ ॥
तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥
इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥ ३ ॥
दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि ।
यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥
अयं य इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥
शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥ ६ ॥
यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।
न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! सन्तानवती स्त्रियाँ जैसे पुत्रादि से सब ओर से घिरी रहती हैं, वैसे ही यह सोम अध्वर्यु आदि से घिरा हुआ रखा है। यह सोम तुम्हारे लिए हो॥ १। इन इन्द्र के स्कंध सोम-भक्षण से उत्पन्न शक्ति के कारण वृषभ के समान मोटे होते हैं, पेट विशाल और भुजाऐं दृढ़ हो जाती हैं। इस प्रकार सोम के द्वारा प्रवृद्ध इन्द्र वृत्र के समान आक्रमक शत्रुओं का संहार करते हैं॥२ हे इन्द्र ! तुम जगत के अधिपति हो, तुमने वृत्र का संहार किया था इसलिए हमारी सेना के आगे चलते हुए इन वृत्र के समान घेरने वाले शत्रुओं को मार डालो ॥ ३॥ हे इन्द्र ! अंकुश के समान झुका हुआ तुम्हारा हाथ, दान के निमित्त आगे बढ़े। जिस सोम को निष्पन्न करने वाले यजमान को तुम धन प्रदान करते हुए, उसके लिए अपने हाथ को लंबा करो ॥ ४॥ हे इन्द्र ! यह सोम भले प्रकार छान कर स्वच्छ किया गया है, यह तुम्हारे लिए रखा है, इसलिए यहाँ आगमन करो। यह सोम तुम्हारे लिए संस्कारित किया गया है, इसलिए शीघ्र यहाँ आकर इस सोम को पीओ ॥५॥ हे इन्द्र ! तुमने पणियों द्वारा अपहृत गौएँ निकाल लीं। तुम स्तोत्रों के सुन्दर फलों को प्रकट करने में समर्थ हो। यह सोम तुम्हारे हर्ष के लिए संस्कृत किया गया है इसलिए हम तुम्हें आहूत करते हैं। क्योंकि तुम शत्रुओं को सब ओर से मारने में सशक्त हो ॥ ६॥ हे इन्द्र ! तुम सींगों के समान ऊँची उठने वाली रश्मियों वाले सूर्य का पतन नहीं होने देते हो। तुम्हारा कुण्डपाय्य नामक क्रतु है, उससे सोम से सम्पन्न यज्ञ में तुम अपने मन को प्रयुक्त करो॥ ७॥

६ सूक्त

(ऋषि--विश्वामित्र:। देवता—इन्द्र:। छन्द--गायत्री)

इन्द्र त्वा वृषभं वय सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत। पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २॥
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः। तिर स्तवान विश्पते ॥३॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते। क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥४॥
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम्। तव द्युक्षास इन्दवः ॥५॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे। इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥६॥
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्र सचन्ते अक्षिता पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७॥
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८॥
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! सोम के संस्कारित होने पर हम तुम्हें आहूत करते हैं। तुम इस मधुर रसयुक्त सोम को पीओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अनेक यजमानों की स्तुतियां को प्राप्त करते हो। तुम इस संस्कारित सोम की इच्छा करो और इससे तृप्तिकर सोम को पीकर अपने उदर को संतुष्ट करो ॥२॥ हे इन्द्र तुम सब देवताओं सहित यहाँ आकर हमारे सोममय यज्ञ में हवि ग्रहण करके उसकी वृद्धि करो ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम यजमानों की रक्षा करने वाले हो। यह हर्षप्रद सोम रस तुम्हारे पेट में जा रहा है ॥४॥ हे इन्द्र ! इस सोम रस को हृदय में धारण करो। यह सोम तुम्हारे लिए विशिष्ट भाग रूप है ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों से पूजन के योग्य हो। हमारे निष्पन्न सोम को पीओ। तुमको हम सोम की आहुतियाँ दे रहे हैं। यह सोम तुम्हारा सुन्दर यश रूप ही है ॥ ६ ॥ यजमान का उज्ज्वल सोम इन्द्र को सब ओर से प्राप्त हो रहा है, उसका पान करते हुये इन्द्र वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र हननकर्त्ता हो। तुम हमारे निकटस्थ स्थान में हो तो आ जाओ और दूरस्थ देश में हो तो भी शीघ्र आगमन करो और हमारी स्तुति को श्रवण करो ॥८॥ हे इन्द्र ! तुम जिस दूरस्थ देश से या निकट से, जहाँ भी हो, वहीं से बुलाये जा रहे हो। तुम इस यज्ञ मंडप में शीघ्र ही आगमन करो ॥ ९ ॥

७ सूक्त

(ऋषि—सुकक्ष; विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।

अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत् ।
उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत् ।
पिवा वृषस्व तातृपिम् ॥ ४ ॥

हे सूर्य ! स्तुति करने वालों या यज्ञ करने वालों को इन्द्र के द्वारा धन दिया जाना प्रसिद्ध है । वे अभीष्ट फलों की भी वर्षा करने वाले हैं, वे अपने सेवकों का इच्छित करते और अनिष्टों को दूर करते हैं और वे इन्द्र शत्रु को भी दबाने वाले हैं, तुम उन इन्द्र को ध्यान में रखते हुये उदित होते हो ॥ १ ॥ जिन इन्द्र ने शम्बर के माया से रचे हुये निन्यानवे नगरों को अपने बाहुबल से तोड़ डाला, उन्हीं इन्द्र ने वृत्रासुर का पूरी तरह संहार किया ॥ २ ॥ वे इन्द्र हमारे मित्र हों. वे इन्द्र हमको सुख देने वाले हों. वे इन्द्र हमको गौओं, अश्वों तथा अन्य विभिन्न धनों को दें. जिससे हम धनवान हों ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम ज्योतिष्टोम आदि को सम्पन्न करने वाले हो । तुम्हारी अनेक प्रकार स्तुति की जाती है । इस तृप्तिकर सोम की तुम इच्छा करो, इसे सेवन करते हुये उदरस्थ करो ॥४॥

८ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाज; कुत्सः, विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥ ॥
अर्वाङे हि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ २ ॥
आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥३॥

हे इन्द्र ! तुमने जैसे प्राचीन महर्षियों के सोमयाग में सोम पिया था, वैसे ही तुम हमारे इस सोम को भी पीओ । यह सोम तुम्हारे लिये हर्ष-

जनक हो। हमारे स्तोत्रों को सुनकर उनसे वृद्धि को प्राप्त होओ और फिर सूर्य को प्रकाशित करो। हे इन्द्र! पणियों द्वारा अपहृत हमारी गौएँ हमें दो, हमारे शत्रुओं का नाश करो और उपभोग्य अन्नों की वृद्धि करो ॥१॥ हे इन्द्र! विद्वान् तुम्हें सोम की इच्छा करने वाला बताते हैं, इसलिये हमारे सामने आओ। यह सोम संस्कारित हो चुका है, इसे हर्ष के लिये पीओ। तुम इस सोम को अपनी कुक्षियों में भरो। जैसे पिता पुत्र की बात सुनता है, वैसे ही तुम हमारे स्तोत्र को सुनो ॥ २ ॥ यह द्रोण कलश सोम रस से भरा हुआ इन्द्र के लिये रखा था। जिस प्रकार जल छिड़कने वाला मशक को जल से भरा रखता है, उसी प्रकार इन्द्र के पीने के लिए अध्वर्यु सोम रस को सींचता है। यह सोम इन्द्र के हर्ष के लिये उनकी ओर जाते हुये बनाते हैं ॥ ३ ॥

६ सूक्त

(ऋषि—नोधाः; मेध्यातिथिः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप् बृहती)

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ३ ॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ४ ॥

हे यजमानो! तुम्हारे यज्ञ की सम्पन्नता और अभीष्ट फल के निमित्त हम स्तुति रूप वाणी से इन्द्र की प्रार्थना करते हैं। यह इन्द्र दर्शन करने के योग्य तथा दुःखों के नाशक हैं। यह सोम के हर्ष में भरे रहते हैं। जिन दिनों के प्रकट करने वाले सूर्य हैं, उन दिनों के उदय और अस्तकाल में

गौएँ रँभाती हुई बछड़ों की ओर जाती हैं, वैसे ही हम भी स्तुति करते हुई वाणी सहित इन्द्र की ओर जाते हैं ॥ १ ॥ सुन्दर दान वाले, प्रजाओं के पोषक, दीप्तिवान, स्तुत्य और गवादि से सम्पन्न धन की हम वैसे ही प्रार्थना करते हैं, जैसे दुर्भिक्ष को प्राप्त हुए जीव कन्द-मूल-फल आदि से सम्पन्न पर्वत की प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! मैं वीर्य से युक्त शक्तिशाली अन्न को तुमसे माँगता हूँ । जिस धन के दान से भृगु ऋषि को शांति मिली थी, और जिस धन से तुमने कण्व के पुत्र प्रस्कण्व का पालन किया था, वही धन हम तुमसे माँगते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अपने जिस बल से सृष्टि के आरम्भ में समुद्रादि को पूर्ण करने के लिये जलों की कल्पना की तुम्हारा वह बल अभीष्ट का फल देने वाला है । तुम्हारी जिस महिमा को हम भूलोकवासी कहते हैं, उसे शत्रु नहीं पा सकते ॥ ४ ॥

१० सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बार्हतः प्रगाथः)

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव ॥ १ ॥
कण्वाइव सूर्याइव विश्वमिद् धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥२॥

यह गायन मन्त्रों से साध्य तथा न गाये जाने वाले मन्त्रों से साध्य मधुर स्तुतियाँ प्रकट हो रही हैं, यह सदा अन्न प्रदान करती हुई रक्षा करने में समर्थ होती हैं । जैसे रथारोही के अभिप्राय के प्रति रथ गमन करता है, वैसे ही यह इन्द्र को सन्तुष्ट करने के लिये गमन करती हैं ॥ १ ॥ कण्व गोत्रिय महर्षि जैसे तीनों लोकों के ईश्वर, फल की कामना करने वालों द्वारा पूजित इन्द्र को स्तुतियों से प्राप्त होते हैं, जैसे सूर्य अपने नियन्ता इन्द्र को प्राप्त होते हैं और भृगु वंश वाले ऋषि जैसे इन्द्र को प्राप्त होते हैं वैसे ही मनुष्य स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

११ सूक्त

(ऋषिः—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे ॥१॥
मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥२॥
इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग् वनेष्वाविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम् ॥३॥
इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥४॥
इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५॥
महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥६॥
युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांस स्वरपश्चदेवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८॥
ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुतभोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥९॥
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीरसनोदन्तरिक्षम्
विभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् ॥१०॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

इन्द्र ने अपने शत्रुओं को अपने बल से नष्ट कर डाला, वे शत्रुओं के नगरों का नाश करने वाले और शत्रुओं के धनों के प्राप्त करने वाले हैं। इन इन्द्र का शरीर मन्त्रों से प्रवृद्ध होता है, इनके पास शत्रु-नाशक असंख्य आयुध हैं। इन्होंने वृत्रादि शत्रुओं का नाश कर डाला और आकाश-पृथिवी को पूरी तरह व्याप्त कर लिया ॥१॥ हे इन्द्र! मैं इस यज्ञ रूप वाणी को अन्न से सुशोभित करता हुआ प्रकट करता हूँ। हे इन्द्र! तुम सबके अग्रगण्य हो इसलिए मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥ अपने शत्रु पर हिंसक बल को गिराने वाले इन्द्र ने वृत्र को रोका और युक्त की प्राप्ति पर मायावी राक्षसों का नाश कर डाला। शत्रुओं के नाश की कामना वाले इन्द्र ने वृत्र के कधे पृथक् कर दिए थे और पणियों द्वारा अपहृत गौओं को भी प्रकट किया था ॥३॥ इन्द्र शत्रुओं को हराने वाले तथा स्वर्ग को प्राप्त कराने वाले हैं। उन्होंने संग्रामेच्छु राक्षसों के दिन को प्रकट करके संग्राम किया और उनकी सेनाओं पर विजय पाई। यजमानों के लौकिक कर्मों के निमित्त उन्होंने सूर्य को प्रकाशित कर रखा है ॥४॥ जैसे युद्धाभिलाषी वीर शत्रु सेना में प्रविष्ट होता है, वैसे ही इन्द्र भी मनुष्यों के हित के लिए प्रवृद्ध शत्रु-सेनाओं में प्रवेश करते हैं और स्तुति करने वालों के निमित्त उषाओं को उदित करते हैं। उषाओं के श्वेत रंग की वृद्धि इन्द्र ही करते हैं ॥ ५ ॥ इन्द्र के द्वारा पूर्ण किए गए अनेकों प्रशंसनीय कर्मों की स्तोता गण स्तुति करते हैं। शत्रु को वश करने वाले इन्द्र ने अपने अस्त्रों द्वारा पापी राक्षसों को मसल डाला और शक्ति सम्पन्न दस्युओं का क्षय कर दिया ॥ ६ ॥ किसी की सहायता लिए बिना ही इन्द्र ने एकमात्र अपने ही बल से युद्ध द्वारा स्तुति करने वालों को धन प्राप्त कराया। यह इन्द्र यजमानों के सदा रक्षक हैं और मनुष्यों को इच्छित फल प्रदान करते हैं। यज्ञादि कर्म वाले यजमान के यहाँ इनके प्रसिद्ध कर्मों को गाया जाता है ॥ ७ ॥ फल की कामना वाले मनुष्य जिन इन्द्र का वरण करते हैं, जो इन्द्र बल प्रदान करते हैं, जो शत्रु सेना को तुरन्त ही दबाते हैं, जो स्वर्गीय जलों के सेवनकर्त्ता हैं; जिन इन्द्र ने इस द्यावा पृथिवी को मनुष्यों को दिया है, उन इन्द्र की स्तुति करने वाले और यजमान उन्हें

हवि देकर प्रसन्न करते हैं ॥८॥ अश्व, हाथी, ऊँट आदि इन्द्र ने मनुष्यों के उपयोग के लिए दिए हैं। गौ, भैंस तथा सुवर्णभूषण आदि भी इन्द्र ने ही दिये हैं। सूर्य को भी इन्होंने ही प्रकाशित किया है। उन्हीं ने राक्षसों का संहार किया और हर वर्ण का पालन किया है ॥ ९ ॥ इन्द्र ने ही यव आदि ओषधियों को प्राणियों के उपयोग के लिए रचा, दिनों को तथा वनस्पतियों को भी रचा। उन्हीं ने सब के उपकारक अन्तरिक्ष की रक्षा की। इन्द्र ने बल नामक असुर को चीर डाला, विरोधियों और विरुद्ध अनुष्ठान करने वालों को भी मर्दित किया ॥१०॥ उन धनैश्वर्य सम्पन्न एवं सुखदाता इन्द्र को हम इस संग्राम में आहूत करते हैं। जिस युद्ध में अन्न प्राप्त होना है, उसमें रक्षा के लिए इन्द्र का आह्वान करते हैं। शत्रुनाशक और धनों के विजेता इन्द्र को हम आहूत करते हैं ॥ ११ ॥

१२ सूक्त

(ऋषिः—वसिष्ठः; अत्रिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप)

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ।
आ यो विश्वानि शवसा ततनोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥१॥
अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥२॥
युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥३॥
आपश्चित् पिप्युस्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥४॥
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥५॥
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
स न स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥७॥

हे ऋत्विजो ! तुम अन्न की कामना करते हुए स्तोत्रों को कहो । हे यजमान ! तुम ऋत्विजों सहित इस यज्ञ में इन्द्र का पूजन करो । जिस इन्द्र ने अपनी शक्ति से जीवों की वृद्धि की वे हमारी वाणी को सुनें ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जो स्तोत्र देवताओं को बन्धु के समान प्रिय है, उसे कहता हूँ । इस स्तोत्र के द्वारा यजमान के लिए स्वर्ग फल वाले सोम वृद्धि को प्राप्त होते हैं । मनुष्यों में यह यजमान अपनी आयु को नहीं जानता है, अतः इसे जीवन यज्ञ के लिए उपयोगी आयु दो । आयु का नाश करने वाला पाप रूप जो कारण है उसे इससे दूर रखो ॥२॥ इन्द्र का रथ गौओं को प्राप्त कराने वाला है, वे उसमें अपने हर्यश्व संयुक्त करते हुए आते हैं । हमारे स्तोत्र उन्हीं इन्द्र की सेवा करते हैं । द्यावा-पृथिवी उनके आधीन हैं । उन्होंने वृत्रादि राक्षसों को भले प्रकार मार दिया है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! इस अभिषुत सोम का रस गौ के समान वृद्धि को प्राप्त हुआ है । यह ऋत्विज स्तुति के लिए सत्य फल देने वाले यज्ञ मंडप में पहुँचे हैं । अतः आप हमारे स्तोत्रों के प्रति पधार कर अन्न दो, जैसे वायु अपने नियुत् नामक अश्वों के प्रति पधारते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम बलवान् हो ! यह सुसंस्कारित सोम तुम्हें हर्ष युक्त करें तुम्हारे पास स्तोताओं के निमित्त अपरिमित धन है और तुम मनुष्य पर कृपा करने वाले एक ही हो । अतः हमको अभीष्ट फल देकर सुखी करो ॥५॥ वज्रधारी, अभीष्ट वर्षक इन्द्र की इन्द्रियों का निग्रह करने वाले स्तोता उपासना करते हैं । वे इन्द्र हमको बहुत से पुत्रों तथा अनेक गौओं से युक्त धन दें । हे देवगण ! इन्द्र की प्रेरणा से तुम भी हमारे पालन करने वाले होओ ॥६॥ सोमात्मक, वज्रधारी, अभीष्ट वर्षक, शत्रुओं को वश करने वाले, बली, वृत्रहनन कर्त्ता, देवताओं के स्वामी इन्द्र अभिषव वाले स्थान पर सोम पीने वाले हैं । वे अपने घोड़ों द्वारा आकर माध्यंदिन सवन में हमारा सोम पीकर हर्षित हों ॥ ७ ॥

१३ सूक्त

(ऋषिः वामदेवः; गोतमः; कुत्सः; विश्वामित्रः । देवता—इन्द्राबृहस्पती; मरुतः; अग्निः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१॥
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥२॥
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥४॥

हे बृहस्पते ! तुम इन्द्र के सहित सोम पियो । तुम यजमान को धन देने वाले हमारे इस यज्ञ में अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हो । तुम्हारे शरीर में सोम प्रविष्ट हो और तुम हमारे लिए पुत्रादि सहित धन प्रदान करो ॥ १ ॥ हे मरुद्गण ! द्रुतगामी अश्व तुम्हें हमारे यज्ञ स्थान पर पहुँचावें और तुम भी शीघ्रता पूर्वक यहाँ आओ । तुम्हारे लिए विशाल वेदी निर्मित की गई है । इस बिछाए हुए कुशाओं के आसन पर बैठते हुए सोम पीकर तृप्ति को प्राप्त होओ ॥२॥ जातवेदा, पूज्य अग्नि के स्तोत्र को हम उसी प्रकार संस्कृत करते है, जैसे रथकार रथ के अवयवों को संस्कारित करता है । हमारी बुद्धि इन अग्नि के प्रदीप्त करने में मंगलमयी है । हे अग्ने ! तुम्हारा बंधुत्व पाकर हम हिंसा को प्राप्त न हों ॥३॥ हे अग्ने ! तेंतीस देवताओं सहित एक रथ पर बैठकर आगमन करो । क्योंकि तुम्हारे अश्व अत्यन्त सामर्थ्य वाले हैं । इस लिए जब-जब उन देवताओं को आहुति दी जाय, तब-तब उन्हें यहाँ लाकर उन्हें सोम प्रदान करते हुए प्रसन्न करो ॥ ४ ॥

१४ सूक्त

(ऋषिः—सोभरिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथः)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे१

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम्॥ २॥
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे।
सखाय इन्द्रमूतये॥ ३॥
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम्॥ ४॥

हे सदा नवीन रहने वाले इन्द्र! तुम पूज्य और पोषणकर्त्ता हो। हम रक्षा की कामना वाले तुम्हें आहूत करते हैं। तुम हमारे किसी विरोधी के पास न जाओ। जैसे किसी अत्यन्त निपुण राजा को विजय के लिए आमंत्रित करते हैं, वैसे ही हम भी तुम्हें बुलाते है॥ १॥ हे इन्द्र! संग्राम आदि के अवसर पर हम अपनी रक्षा के लिए तुम्हारा ही आश्रय पकड़ते हैं। जो इन्द्र नित्य युवा रहते हैं, जो शत्रु को वश में करने वाले हैं, वे इन्द्र हमारी सहायतार्थ आवें। हे इन्द्र हम तुम्हें सखा मानते हैं, अतः रक्षा के निमित्त तुम्हारी ही कामना करते हैं॥२॥ हे यजमानो! तुम्हारी रक्षा के लिए मैं इन्द्र का स्तोत्र कहता हूं। वे इन्द्र हमको पहिले भी गवादि धन दे चुके हैं मैं उन्हीं अभीष्ट-दाता का स्तवन करता हूं॥ ३॥ जो इन्द्र मनुष्यों के रक्षक हैं, उनके अश्व हरित वर्ण के हैं, जो मनुष्यों पर नियन्त्रण रखते और स्तुतियों से प्रसन्न होते हैं, मैं उन्हीं इन्द्र की प्रार्थना करता हूं, वे इन्द्र हम स्तोताओं को सौ गौ और सौ अश्व प्रदान करें॥४॥

१५ सूक्त

(ऋषि—गोतमः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम्॥१॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः॥२॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे।

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियंज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥३॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव
प्रति नो हर्य तद् वचः ॥ ४ ॥
भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेमि ओजसे ॥५॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेणं वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्व दधिषे केवलं सहः ॥६॥

जिन इन्द्र का ऐश्वर्य सब मनुष्यों का पालन करने में समर्थ है, जो इन्द्र दाता, सामर्थ्यवान् धनवान् और गुणों में अत्यन्त बड़े हुये हैं, मैं उनका स्तोत्र करता हूँ। जैसे नीचे जाते हुये जल का वेग असहनीय होता है वैसे जिन इन्द्र का बल संग्राम आदि के अवसर पर असहनीय होता है, मैं उन्हीं इन्द्र का स्तवन करता हूँ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जैसे जल नीचे स्थान के अनुकूल होता है, वैसे ही तुम्हारी कामना के लिये सम्पूर्ण विश्व अनुकूल हो। शत्रुओं के धर्षक, जिनका सुवर्णयुक्त वज्र पर्वतमें भी न रुका इसीलिये संसार उनके अनुकूल होता है और तीनों यज्ञीय सवन भी उनके अनुकूल होते हैं ॥२॥ हे उषे ! जिन इन्द्र से शत्रु भयभीत रहते हैं, उनके लिये ही यह यज्ञ कर रहे हैं अतः उन इन्द्रों को अन्न के सहित हमारे यहाँ लाओ। जिनका जल अन्न की समृद्धि वाला होता है, जो इन्द्र दिशाओं को प्रकाशित करते हैं, उन्हें हमारे यज्ञ स्थान में लाओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम महान धन से सम्पन्न हो, तुम स्तुतियों के पात्र हो, हम तुम्हारे ही आश्रित हैं ! हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त महिमावान हो, हमारी स्तुतियाँ तो अल्प हैं. इसलिए हमारी वाणी सुननी ही चाहिए। जैसे राजा, प्रजा की बात को सुनता है, वैसे ही तुम हमारी बात को सुनो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे वृत्र हनन आदि महान् कर्मों को ध्यान में रखकर तुम्हारे उपासक होते हैं। तुम इस स्तोता यजमान की कामना को पूर्ण करो। तुम्हारे बल का विशाल आकाश ही मान करता है और यह पृथिवी तुम्हारे बल से

झुक जाती है, इसलिये यह भी तुम्हारा मान ही करती है ॥४॥ हे वज्रिन् ! तुमने परम विशाल पर्वत को भी खण्ड-खण्ड कर डाला था और मेघ को नदी रूप से प्रवाहित कर दिया। तुम ऐसे सब महाबलों को धारण करने वाले हो, तुम्हारी यह महिमा यथार्थ ही है ॥ ६ ॥

१६ सूक्त

(ऋषि—अयास्यः। देवता—बृहस्पतिः। छन्द—त्रिष्टुप्)

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥१॥
सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भगइवेदर्यमणं निनाय।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥२॥
साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥३॥
आप्रुषायन मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥४॥
अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत्।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ ५ ॥
यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीरकृणोदुस्रियाणाम् ॥६॥
बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत्।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७॥
अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्।
निष्टज्जभार चमस न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥८॥
सोषामविन्दत् स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥ ९ ॥
हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गाः।

अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥ १० ॥
अभि श्याव न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः ॥११॥
इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पति स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः
स नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥

जैसे मेघो के समान शब्दवान्, जल में विचरणशील, पक्षियों के समान शब्द वाली, रक्षा करने वाली और मेघों से धारा रूप से गिरती हुई ऊर्मियाँ शब्द करती हैं, वैसे ही बृहस्पति की स्तुति के लिए मंत्र झुकते हैं ॥ १ ॥ महर्षि आंगिरस जैसे भग के समान गो घृत आदि सहित विवाह-काल में पति-पत्नी को अर्यमा देवता की शरण प्राप्त कराते हैं, वैसे ही इस दम्पति को अर्यमा देवता की शरण दिलावें । जैसे सूर्य प्रकाश के लिए अपनी रश्मियों को एकत्र करते हैं, वसे ही इन पति-पत्नी को एक करें । हे बृहस्पते ! युद्ध को उद्यत वीर जैसे अश्वों को संयुक्त करते हैं, वैसे ही इन वर वधू को संयुक्त करो ॥ २ ॥ कोठियों से जैसे अन्न निकालते हैं, वैसे ही बृहस्पति स्तोताओं, संतों और अतिथियों को तृप्तिकर सुन्दर वर्ण वर्ण बल द्वारा अपहृत गौओं को पर्वत से लाकर देते हैं ॥ ३ ॥ जैसे आदित्य उल्का को नीचे की ओर करके डालते हैं, वैसे ही बृहस्पति पृथिवी को सींचने वाले मेघों को अधोमुखी करके भेजते हैं और मणि द्वारा अपहृत गौओं को निकाल कर जैसे जल भूमि को फुलाते हैं, वैसे ही गौओं के खुरों से भूमि की त्वचा को पृथक् कर डालते हैं ॥ ४ ॥ बृहस्पति देवता, वायु के जल से सिवार पृथक् करने के समान गौओं को रोकने वाले खोह स्थित अन्धेरे को प्रकाश से दूर करते हैं और बल के गो-स्थान का ध्यान करते हुए; जैसे वायु मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता है वैसे ही गौओं को इधर-उधर फैलाते हैं ॥ ५ ॥ जब बल के हिंसात्मक आयुध को बृहस्पति ने अग्नि के समान ताप वाले मंत्रों से नष्ट किया तब जैसे चबाए हुए अन्न को जिह्वा भक्षण करती है वैसे ही बल नामक असुर का उन्होंने भक्षण किया । उन्होंने पयस्विनी गौओं को प्रकट कर डाला ॥ ६ ॥ जब गुफा

में छिपी इन गौओं को बृहस्पति ने जान लिया तब पर्वत को चीर कर उन्हें ऐसे निकाल लिया, जैसे मोर आदि के अण्डे को चीर कर उसके गर्भ को निकालते हैं ॥ ७ ॥ जैसे जल के कम हो जाने पर मनुष्य नदी में स्थित मछलियों को देखता है, वैसे ही बृहस्पति ने पर्वत की गुफा पर ढके पत्थर को हटाकर गौओं को देखा। जैसे चमस पात्र को वृक्ष से निकालते हैं, वैसे ही गौ रूपधारी बल का हनन करके गुफा से गौओं को निकाला ॥ ८ ॥ अन्धेरे में छिपी हुई गौओं को देखने के लिए बृहस्पति ने उषा को प्राप्त किया, इन्हीं बृहस्पति ने प्रकाश के निमित्त सूर्य को तथा अग्नि को प्राप्त किया ॥ ९ ॥ पत्तों को निःसार करके ग्रहण करने के समान बृहस्पति ने गो रूप धन को ग्रहण किया। बल ने भी अपहृत गौऐं बृहस्पति को दीं। बृहस्पति द्वारा ही सूर्य चन्द्रमा, दिन और रात्रि को प्रकट करते हुए घूमते हैं, यह बृहस्पति का ऐसा कर्म है, जिसे कोई अन्य नहीं कर सकता ॥१०॥ बृहस्पति ने जब गौओं के छिपाने वाले पर्वत को चीरा और गौओं को प्राप्त किया, तब पालन करने वाले देवताओं ने, अश्व को अलंकृत करने के समान द्युलोक को नक्षत्रों से अलंकृत किया। उन्होंने दिन में सूर्य रूप तेज और रात्रि में अन्धकार को स्थापित किया ॥११॥ मेघ को चीरकर जल निकालने वाले बृहस्पति के लिए हम यह हवि देते हैं। वे हमारी स्तुति की प्रशंसा करें और गौओं से सम्पन्न अन्न दें तथा अश्व, पुत्र भृत्यादि से युक्त करें ॥ १२ ॥

१७ सूक्त

(ऋषि—कृष्णः। देवता—इन्द्रः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवान मूतये ॥ १ ॥
न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥२॥
विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इन्द्रायो मघवा वस्व ईशते।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥३॥

नयो न वृक्ष सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूपदः।
प्रैपामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥४॥
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत्।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ॥५॥
विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६॥
आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम्।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥
वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८॥
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत्।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१२॥

मुझ सुन्दर हाथ और वाणी वाले के स्तोत्र इंद्र की स्तुति करते हैं। यह स्तोत्र स्वर्ग प्राप्ति में सहायक एवं परस्पर संयुक्त हैं यह सदा इंद्र की कामना करते हैं जैसे सन्तान-काम्या स्त्रियाँ पति से लिपटती हैं जैसे पिता आदि को आते देखकर पुत्र उससे लिपट जाते हैं वैसे ही मेरी स्तुतियाँ इंद्र से लिपटती हैं ॥ १ ॥ हे इंद्र ! मेरा मन तुमसे पृथक् कभी नहीं होता, वह सदा तुम्हारी ही कामना करता है। तुम शत्रुओं का नाश करने वाले हो। राजा के सिंहासन पर स्थित होने के समान तुम इस कुश रूप आसन पर विराजमान होओ। इस सुसंस्कारित सोमयाग में तुम सोमपान करो ॥ २ ॥ वे इंद्र हमारी क्षुधा को मिटावें, हमारी दरिद्रता को दूर करें। क्योंकि इंद्र

ही धनों के स्वामी हैं । इन इन्द्र की सप्त नदियाँ ही अन्न की वृद्धि करती हैं ॥ ३ ॥ पक्षियों के वृक्ष पर बैठने के समान यह हर्षदायक सोम इन्द्र का ही आश्रय लेते हैं। इन सोमों के दमकते हुए मुख ने सूर्य रूप वाली ज्योति को प्रकाश के लिए मनुष्यों को प्रदान किया ॥ ४ ॥ जुआरी जैसे पाश को ग्रहण करता है वैसे ही हमारी स्तुतियाँ इन्द्र को ग्रहण करती हैं, क्योंकि इन्द्र ने उस तम नाशक सूर्य को आकाश में प्रतिष्ठित किया है । हे इन्द्र तुम्हारे बल की अनुकृति अन्य किसी के द्वारा नहीं हो सकती । तुमसे प्राचीन और नवीन कोई भी तुम्हारे जैसा काम करने में समर्थ नहीं है ॥ ५ ॥ सभी उपासकों के पास वे कामनाओं के वर्षक इन्द्र एक समय में ही पहुँच जाते हैं, और सबकी स्तुतियों को एक ही समय सुन लेते हैं । ऐसे वे इन्द्र जिस यजमान के तीनों सवनों में प्रतिष्ठित होते हैं वह यजमान शक्ति प्रदायक सोम के प्रभाव से युद्ध-काम्य शत्रुओं को वश कर लेता है ॥६॥ जैसे जल सागर में जाता है,जैसे छोटी नदियाँ सरोवर को प्राप्त होती हैं वैसे ही जब सोम इन्द्र की ओर जाते हैं तब स्तोतागण अपनी स्तुतियों से इन्द्र की महिमा को प्रवृद्ध करते हैं। जैसे जल देते हुए मेघ अन्न की वृद्धि करते हैं, वैसे ही स्तुति करने वाले विद्वान् अपने स्तोत्रों से इन्द्र की वृद्धि करते हैं ॥ ७ ॥ सूर्य से रक्षित जलों को जो इन्द्र पृथिवी पर गिराते हैं, वह क्रोधित वृषभ के समान मेघ को छिन्न-भिन्न करने के लिए जाते हैं और सोम को संस्कारित करने वाले हविदाता यजमान को तेज देते हैं ॥ ८ ॥ मेघ के विदीर्ण करने को इन्द्र का वज्र अपने तेज सहित प्रकट हो। जल का दोहन करने वाली वाणी पूर्ववत् प्रकट हो और अपने तेज से दमके । जैसे प्रकाशमान सूर्य अपने ही तेज से प्रकाशित होते हैं, वैसे ही साधुजन के रक्षक इन्द्र अत्यन्त तेजस्वी हों ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी कृपा को प्राप्त करते हुए हम यजमान तुम्हारे द्वारा प्रदान की हुई गौओं से दरिद्रता को पार करें। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अन्न से अपने मनुष्यों की क्षुधा शांत करें । हम तुम्हारी कृपा से अपने समान पुरुषों में श्रेष्ठ हों और राजा से धन पायें और फिर अपनी शक्ति से शत्रुओं

को पराजित करें ॥ १० ॥ बृहस्पति, उत्तर और ऊर्ध्व दिशाओं से आते हुए हिंसक पापियों से हमारी रक्षा करें। सम्मुख से और मध्य से आते हुए हिंसकों से इन्द्र रक्षा करें। चारों ओर से हमारी रक्षा करते हुए सखा रूप इन्द्र हमको धन दें ॥ ११ ॥ हे बृहस्पते ! हे इन्द्र ! तुम दोनों आकाश और पृथिवी के धनों के स्वामी हो। अतः मुझ स्तोता को धन देते हुए अपने रक्षा साधनों द्वारा हमारी रक्षा करते रहो ॥ १२ ॥

१८ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—मेधातिथिः प्रियमेधश्च; वसिष्ठ। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखाय।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ। तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ २ ॥
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन्। विद्धी त्वस्य नो वसो ॥४॥
मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे।
त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥
त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन्। त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥६।

हे इन्द्र ! हम कण्वगोत्रिय ऋषि तुम सखा रूप की कामना करते हुए तुम्हारे प्रयोजनीय स्तोत्रों से स्तवन करते हैं ॥ १ ॥ हे वज्रिन ! मैं नवीन यज्ञ के अवसर पर भी तुम्हारी ही स्तुति करता हूँ, अन्य देवता की नहीं करता ॥ २ ॥ इन्द्रादि देवता सोम को संस्कारित करने वाले यजमान को चाहते हैं और हर्षकारी सोम का ध्यान करते ही प्रमाद रहित हो जाते हैं ॥ ३ । हे अभीष्ट वर्षक इन्द्र ! हम तुम्हारी कामना करते हुए तुम्हारे सामने स्तुति करते हैं, अतः तुम भी हमारे स्तोत्र की कामना करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हमको, क्रूर वचन कहने वाले, निंदक, अदानशील शत्रुओं के आधीन न करो। मेरी यह स्तुतियाँ तुम्हारे निमित्त ही हैं, इन्हें स्वीकार करो ॥ ५ ॥

हे वृत्रहन इन्द्र ! तुम आगे बढ़कर युद्ध करते हो, तुम अत्यन्त महान् हो। तुम ही मेरे लिए कवच के समान रक्षक होते हो । मैं तुम्हें सहायक रूप में पाकर शत्रुओं को ललकारता हूँ ॥ ६ ॥

१६ सूक्त

(ऋषि – विश्वामित्र । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥
पुरुष्टु तस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥
वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! वृत्र हनन जैसे कर्म के लिए बल प्रदर्शनार्थ और शत्रु सेनाओं को तिरस्कृत करने के निमित्त हम तुम्हें अपने सामने बुलाते हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम सैंकड़ों कर्म करने वाले हो । यज्ञ का निर्वाह करने वाले ऋत्विज तुम्हें हमारे सामने करें और अपनी दृष्टि को भी हमारे लिए कृपा से पूर्ण करो । २ । हे शतक्रतो इन्द्र ! युद्ध स्थल में हम तुम्हारे सहस्राक्ष, पुरन्दर आदि नामों को स्तुति रूप से गाते हैं ॥ ३ ॥ इन्द्र अनेक स्तोताओं द्वारा पूजनीय है, वे मनुष्यों के रक्षक और सैंकड़ों तेजों से युक्त हैं । हम उन्हीं इन्द्र का पूजन करते हैं ॥ ४ ॥ रणक्षेत्र में अनेक योद्धाओं द्वारा विजय के लिए आहूत तथा यज्ञ में अनेक यजमानों द्वारा आहूत इन्द्र को मैं पाप निवारणार्थ और बल प्राप्ति के लिए पूजता हूँ । ५ ॥ हे इन्द्र ! युद्ध में तुम शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले होओ मैं पाप के निवारणार्थ भी तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! धन प्राप्ति के समय, युद्ध की प्राप्ति पर, अन्न की प्राप्ति के समय, पापों और शत्रुओं का नाश करते समय तुम हमारे सहयोगी बनो ।, ७ ॥

२० सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्र:; गृत्समद: । देवता—इन्द्र: । छन्द—गायत्री:; अनुष्टुप्)

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ १ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ २ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ३ ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावत: ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥४॥
इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणि: ॥ ५ ॥
इन्द्रश्च मृडयाति नो न न: पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति न: पुर: ॥ ६ ॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणि: ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! अत्यंत बल करने वाले, दु:स्वप्न के नाशक, तेज से दमकते हुए सोम को हमारी रक्षा के लिए पियो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे देखने सुनने योग्य जो बल देवता, पितर, असुर और मनुष्यों में हैं, मैं उन्हें प्राप्त करूं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा अपरिचित अन्न हमें मिले, तुम शत्रुओं से पार लगाने वाले धनों को हममें व्याप्त करो । इस सोम और स्तोत्र द्वारा हम तुम्हारे बल की वृद्धि करते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र तुम शक्तिशाली हो । तुम समीप या दूर जहाँ कहीं भी हो वहीं से हमारे पास आओ ! तुम अपने उत्कृष्ट लोक से सोम पीने के लिए यहाँ आगमन करो ॥ ४ ॥ हमारे लिए प्राप्त भीषण भय को इन्द्र हमसे दूर करते हैं वे इन्द्र सदा प्रतिष्ठित रहने

वाले और सर्वद्रष्टा हैं ॥ ५ ॥ हमारे रक्षक इन्द्र हमको सुखी करें। इन्द्र की रक्षाओं से हमारे दुःखों का नाश होगा और हमारा कल्याण होगा ॥ ६ ॥ सब दिशाओं से प्राप्त होने वाले भयों को इन्द्र दूर करे क्योंकि यह सब दिशाओं में हमारे शत्रुओं को सूक्ष्म रूप से देख लेने में समर्थ हैं ॥ ७ ॥

२१ सूक्त

(ऋषि—सव्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती; त्रिष्टुप्)

न्यू षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१॥

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि॥२॥

शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥३॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥

ते त्वा मदा अमदन् त नि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६ ॥

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥७॥

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वंगृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८॥

त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९॥

त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥
य उद्दचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम् ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११॥

हम इन इन्द्र के लिए सुन्दर स्तोत्र प्रस्तुत करते हैं। यजमान के यज्ञ मंडप में इनके लिए सुन्दर स्तुतियाँ कही जा रही हैं। सोने वाले पुरुष के धन को चोर द्वारा शीघ्रता से ले लेने के समान वे इन्द्र असुरों के धन को शीघ्रता से ले लेते हैं। मैं उन इन्द्र की भले प्रकार से स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम गौ, अश्व, गज, अन्न आदि के देने वाले हो और हिरण्य रत्नादि भी देते हो। तुम अत्यन्त प्राचीन हो,तुम अपने उपासकों की कामनाओं को प्रवृद्ध करते हो। ऐसे ऋत्विजों के सखा रूप इन्द्र की हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त मेधावी, बली और बहुकर्मा हो। सर्वत्र व्याप्त धन के तुम स्वामी हो। तुम हमको धन प्रदान करो। मैं तुम्हारी कामना करता हुआ स्तुति करता हूँ। मुझे तुम अपूर्ण मत रहने दो । ३ ॥ हे इन्द्र ! हमारी हवियों और सोमों से प्रसन्न होते हुए तुम हमको बहुत से गौ और अश्वादि धन देकर हमारे दारिद्र्य को नष्ट करो । तुम सुन्दर मन वाले हो। हम अपने शत्रुओं को क्षीण करने के लिए इन्द्र को सोम द्वारा प्रसन्न करते हुए शत्रु-विहीन होते और दिये हुए अन्न से सम्पन्न होते हैं। ४ ॥ हे इन्द्र ! हम सब की इच्छा किये हुए तुम्हारे धन से सम्पन्न हों। हम प्रजाओं को प्रसन्न करने वाले बल से युक्त हों। तुम्हारी कृपामयी बुद्धि हमें प्राप्त हो और वह हमारे लिए गौओं को देने वाली तथा क्लेशों का निवारण करने वाली हो ॥ ५ ॥ इन्द्र ! तुम साधुजनों के रक्षक हो। शत्रु-नाश का अवसर प्राप्त होने पर हमारा हव्य तुम्हें हर्षित करे और हमारे स्तोत्र द्वारा प्रवृद्ध होकर तुम हमारे लिए अभीष्ट फलों के वर्षक होओ। जब तुम अपने स्तोता यजमान के लिए कर्म करो तब यह सोम तुम्हारे लिए हर्षदायक हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र तुम अपने प्रहार-साधन वज्र से शत्रुओं के अस्त्रों पर आक्रमण करते हो और शत्रु के नगर में वास करने वाले वीरों को मरुद्गण

आदि वीरों द्वारा नष्ट कराते हो। तुमने ही मायावी नमुचि का संहार कर डाला था, इसलिए हम तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अपनी अत्यन्त तेज वाली वर्तनी नामक शक्ति के द्वारा अतिथिग्व नामक राजा के शत्रु करंजासुर का वध किया था तुम्हीं ने पर्णयासुर का भी वध किया। ऋजिश्वम् नामक राजा के शत्रु वङ्गृदासुर के सौ पुरों का भी तुमने ही ध्वंस किया था ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुमने असहाय राजा सुश्रवा को घेरने वाले साठ हजार निन्यानवे सेनाध्यक्षों को अपने उस चक्र से नष्ट किया, जिस चक्र को शत्रु प्राप्त नहीं कर सकते ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! सुश्रवा की तुमने रक्षा की और उसी के लिए तूर्वयाण नामक राजा की रक्षा की। तुमने सुश्रवा को कुत्स, अतिथिग्व और आयु का आश्रय प्राप्त कराया ॥ १० ॥ हे इन्द्र। इस यज्ञ की सम्पन्नता के समय हम तुम्हारी रक्षा प्राप्त करें। हम तुम्हारे सखा रूप हैं इसलिए हम मङ्गल को प्राप्त हों। यज्ञ के सम्पूर्ण होने पर भी तुम्हारी स्तुति करते हुए हम सुन्दर पुत्रों वाले हों और दीर्घजीवन को प्राप्त करें ॥ ११ ॥

२२ सूक्त

(ऋषि—त्रिशोकः; प्रियमेधः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्।
माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥२॥
इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे।
सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि।
यत्राभि संनवामहे ॥५॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु।

यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥६॥

हे इन्द्र ! सोम के संस्कारित होने पर सोम पीने के लिये हम तुम्हें संगत करते हैं। उस हर्षदायक सोम को उदरस्थ करते हुए तृप्ति को प्राप्त होओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी सहायता बिना अपनी रक्षा की स्वयं कामना करने वाले मूर्ख तुम्हें हिंसित न कर पावें । तुम ब्राह्मणों से द्वेष करने वालों की सेवा स्वीकार मत करो। तुम्हारे प्रति व्यंग करने वाले तुम्हें दबाने में समर्थ न हों ॥ २ ॥ हे इन्द्र इस गोरस मिश्रित सोम से ऋत्विज इस यज्ञ में तुम्हें प्रसन्न करें। जैसे प्यासा मृग सरोवर पर जाकर जल पीता है, वैसे ही तुम सोम का पान करो ॥ ३ ॥ हे स्तुति करने वालो ! इन्द्र हमें जिस प्रकार अपना मानें उस प्रकार तुम उनका पूजन करो। यह यज्ञ के पुत्र रूप इन्द्र सत्य फल से युक्त हैं और साधुजनों के रक्षक हैं ॥ ४ ॥ इन्द्र के सुन्दर अश्व उनके रथ को हमारे स्तुति-स्थान पर बिछी हुई कुशाओं के समीप लावें ॥ ५ ॥ जब पास ही रखे हुये मधुर सुस्वादु सोम को इन्द्र पीते हैं, तब उन वज्रधारण करने वाले के लिये गौएं मधुर दुध का दोहन करती हैं ॥ ६ ॥

२३ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् ।
अयुज्रन् प्रातरद्रयः ।२॥
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद ।
वीहि शूर पुरोडाशम् ॥३॥
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४॥
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५॥
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६॥
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥७॥

मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ्. याहि ।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥८॥
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥९॥

हे वज्रिन् ! हमारे यज्ञ में आहूत किये जाते हुए तुम अपने हरित् अश्वों के द्वारा सोम पीने के लिए आओ ॥१॥ हे इन्द्र हमारे यज्ञ के अवसर पर होता उपस्थित हैं और वेदी में कुशा भी बिछे हुये हैं और सोम का संस्कार करने वाले पाषाण भी प्रस्तुत हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! इन कुशाओं पर प्रतिष्ठित होओ और हमारे द्वारा प्रदत्त हवि का सेवन करो । हम तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं ॥ ३ ॥ हे इंद्र ! तुम वृत्रहन और स्तुतियों द्वारा सेवा करने योग्य हो । अतः तुम तीनों सवनों के स्तोत्रों में व्याप्त होओ ॥ ४ ॥ जैसे गौ अपने वत्स को चाटती है, वैसे ही हमारी स्तुतियाँ सोमपायी इन्द्र को प्राप्त होती हैं ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! शरीर में बल भरने के लिए सोम की शक्ति से युक्त होओ । बहुत से धन-दान के लिए हर्षित होओ । मैं तुम्हारी स्तुति करने वाला किसी अन्य का निन्दक न होऊँ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हम सोम रूपी हवियों से सम्पन्न होकर तुम्हारी कामना करते हैं । तुम हमको अभीष्ट फल दो दो ॥ ७ ॥ हे इंद्र ! तुम अपने अश्वों को प्रिय मानते हो । अपने रथ में संयुक्त उन अश्वों को दूर न छोड़कर रथ पर चढ़े हुए ही हमारे सामने आओ और इस यज्ञ सोम को पीकर हर्ष में भरो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे श्रम की बूँदों से भीगे हुये अश्व तुम्हें सुखी करने वाले रथ पर आरूढ़ कर इस कुशा पर विराजमान करने के लिये हमारे सामने लावें ॥ ९ ॥

२४ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् ।
हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥१॥
तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम् ।
कुविन्न्वस्य तृष्णवः ॥२॥

इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥३॥
इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥५॥
विद्मा हि त्वा धनंजय वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥६॥
इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब ।
आगत्या वृषभिः सुतम् ॥७॥
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये ।
एष रारन्तु ते हृदि ॥८॥
त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥९॥

हे इन्द्र ! हमारे गव्यमय सोम के पास आओ । तुम्हारा अश्वों से युक्त रथ हमारे यहाँ आना चाहता है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! कुशाओं पर रखे इस सुखकारी सोम की ओर आगमन करो और इसे पीकर तृप्त होओ ॥ २ ॥ हमारी स्तुति रूप वाणियाँ इन्द्र को हमारे यज्ञ स्थान में लाने के निमित्त इन्द्र के पास जाती हैं ॥ ३ ॥ सोम पीने के लिए इन्द्र को हम स्तुतियों द्वारा आहूत करते हैं, वे हमारे यज्ञ में अनेक बार आगमन करें ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! यह सोम चमस आदि तुम्हारे निमित्त एकत्र किए गए हैं, इन्हें तम अपने उदरस्थ करो ॥५॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हें जानते हैं कि तुम युद्धावसर पर शत्रुओं को वश में करने वाले और धनों के विजेता हो, इसलिए हम तुमसे सुख देने वाले धन को माँगते हैं ॥६॥ हे इन्द्र ! पाषाणों से निष्पन्न और गव्य मिश्रित सोम का आकर पान करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! इस सोम को पीकर उदरस्थ कर लेने के लिए मैं तुम्हें प्रेरित करता हूँ । वह सोम पीने के पश्चात तुम्हें हृदय में रमा रहे ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! हम कौशिक तुम्हारी रक्षा की कामना करते हुए निष्पन्न सोम को पीने के लिये आहूत करते हैं ॥९॥

२५ सूक्त

(ऋषि—गोतमः । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती; त्रिष्टुप्)

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।

तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥१॥
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वराइव ॥२॥
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३॥
आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४॥
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५॥
बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥६॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥७॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा रक्षित हुआ पुरुष बहुसंख्यक अश्वों वाले युद्ध में अश्वारोहियों में प्रमुख होता है और गौओं वाले पुरुषों में भी श्रेष्ठ होता है । जैसे जल समुद्र को सब ओर से भरते हैं, वैसे ही तुम भी अनेक प्रकार से प्राप्त होने वाले धन से उसे पूर्ण करते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र जैसे जल नीचे को बह कर समुद्र में जाता है, वैसे ही स्तुतियां तुम में जा मिलतीं हैं । जैसे सूर्य के प्रकाश की चकाचौंध से मनुष्य नीचे की ओर देखने लगते हैं, वैसे ही तुम्हारे तेज से दृष्टि चुराते हैं । जैसे स्तोता तुम्हें वेदी के सामने करते हैं, वैसे ही ऋत्विज् तुम्हारी सेवा करते हैं ॥ २ ॥ जिनमें यज्ञ साधन पात्र रखे हैं वे उन पात्रों के द्वारा इन्द्र का पूजन करते हैं । उन पर स्तुति योग्य उक्थ स्थापित किया गया है । हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त किये जाते इस यज्ञ का करने वाला यजमान संतान और पशु आदि से सम्पन्न हो और वह कल्याणमयी शक्ति को प्राप्त करे ॥ ३ ॥ हे इन्द्र पणियों द्वारा गौओं का अपहरण कर लेने पर अङ्गिराओं ने प्रथम तुम्हारे लिए ही हविरन्न का संपादन

किया था। यह अङ्गिरावंशी ऋषि अपने सुन्दर कर्मों से आह्वानीय अग्नि को प्रदीप्त रखते हैं। इनके नेताओं ने पणि से छीना हुआ गो, अश्व, भेड़, बकरी आदि के रूप में बहुत सा धन प्राप्त किया था ॥ ४ ॥ महर्षि अथर्वा ने इन्द्र के लिये यज्ञ करते हुये चुराई हुई गायों के मार्ग को सूर्य से पहिले ही जान लिया था जब सूर्य उदित हो गए तब कवि के पुत्र उशना ने गौओं को इन्द्र की सहायता से प्राप्त किया था। उन अविनाशी इन्द्र का हम पूजन करते है ॥ ५ ॥ सुन्दर संतान रूप फल की प्राप्ति के लिए यज्ञ की जो कुशा विस्तृत की जाती है, जिस वाणी रूप स्तोत्र का यज्ञ में उच्चारण किया जाता है, जिस यज्ञ में सोम का अभिषव करने वाला पाषाण स्तुति करने वाले के समान शब्द करता है, वहाँ इन्द्र विराजमान होते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम हर्यश्व द्वारा श्रेष्ठ गमन करने वाले और अभीष्टों के वर्षक हो। तुम्हारे लिए मैं सोम-रस पीने की प्रेरणा करता हूं। तुम स्तुतियों से हमारे इस यज्ञ में प्रसन्न होओ ॥ ७ ॥

२६ सूक्त

(ऋषि—शुनः शेपः; मधुच्छन्दाः। देवता—इन्द्र। छन्द—गायत्री)

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥

आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ २ ॥

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्। यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ३ ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥४॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥५॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः। ६॥

यज्ञावसर या युद्ध की प्राप्ति पर हम सखा रूप इन्द्र को आहूत करते हैं और अन्न प्राप्ति के अवसर पर भी हम उन्हें ही बुलाते हैं ॥ १ ॥ वे इन्द्र मेरे आह्वान को सुनकर अपने रक्षा साधनों और अन्नों सहित यहाँ आवें ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम प्राचीन स्वर्ग के स्वामी और असंख्य वीरों के प्रतिनिधि रूप

हो। मेरे पिता ने भी पहले तुम्हारा आह्वान किया था। अतः मैं भी तुम्हें आहूत करता हूँ ॥ ३ ॥ इन्द्र के महान्, दैदीप्यमान, विचरणशील रथ में हर्यश्व संयुक्त होते हैं। वे अश्व आकाश में दमकते रहते हैं ॥ ४ ॥ इन्द्र के सारथी इनके रथ में घोड़ों को जोड़ते हैं, यह घोड़े रथ के दोनों ओर रहते हैं। यह अश्व कामना करने के योग्य एवं आरूढ़ कराने वाले हैं ॥ ५ ॥ हे मनुष्यो! अन्धकार में छिपे पदार्थों को अपने प्रकाश से रूप देने वाले और अज्ञानी को ज्ञान देने वाले सूर्य किरणों सहित उदय हो गए, इनका दर्शन करो ॥ ६ ॥

२७ सूक्त

(ऋषि— गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ। देवता— इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्।
स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥
शिक्षेयमस्मै दित्सेय शचीपते मनीषिणे।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥
न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः।
यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् भूमिं व्यवर्तयत्।
चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥
वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

हे इन्द्र! तुम ऐश्वर्यवान् हो। तुम जैसे देवताओं में श्रेष्ठ धनों के स्वामी हो, वैसे ही मैं भी धन का स्वामी होऊँ। जैसे तुम्हारी स्तुति करने वाला गौओं का मित्र होता है, वैसे ही मेरी प्रशंसा करने वाला गौ आदि को प्राप्त करने वाला हो ॥१॥ हे शचिपते! जब तुम्हारी कृपा से मैं गौओं से

सम्पन्न हो जाऊँ तब इस स्तुति करने वाले विद्वान् को धन देने की इच्छा करता हुआ इसे धन दे सकूँ ॥ २ ॥ हे इन्द्र हमारी सत्य वाणी तुम्हें गौ के समान तृप्तिकर हो और सोम का संस्कार करने वाले यजमान की वृद्धि करे। यह गवादि अभीष्ट पदार्थों का दोहन करती है ॥३॥ हे इन्द्र! तुम्हारे धन-दान को कोई रोक नहीं सकता। देवगण तुम्हारे धन को अन्यथा नहीं कर सकते और मनुष्य भी तुम्हारे धन को मिटाने में समर्थ नहीं हैं। हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर यदि तुम हमको धन प्रदान करना चाहो तो उस धन को कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ ४ ॥ जो इन्द्र अन्तरिक्ष में मेघ को विस्तृत करते और पृथिवी को वर्षा के जल से फुलाते हैं। वे ही वर्षा के जल से भूमि के धान्यों को पुष्ट करते हैं। तब हमारी हवियाँ इन्द्र की वृद्धि करती हैं ॥५॥ हे इन्द्र! तुम स्तुतियों से प्रवृद्ध होते हो। हम तुम्हारी शत्रु के धनों को जीतने और रक्षा करने वाली शक्ति का वरण करते हैं ॥६॥

२८ सूक्त

(ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री)

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥१॥
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥२॥
इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च।
स्थिराणि न पराणुदे ॥३॥
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते।
वि ते मदा अराजिषुः ॥४॥

सोम-पान से उत्पन्न शक्ति के द्वारा इन्द्र ने जब मेघ को चीरा तब अन्तरिक्ष को वर्षा के जल से प्रवृद्ध किया ॥ १ ॥ अंगिराओं के लिए इन्द्र ने कन्दरा में छिपी गौओं को प्रकट किया और उन्हें निकाल कर अपहरणकर्ता

राक्षसों को भी अधोमुख कर पतित किया ॥ २ ॥ आकाश में स्थित ग्रहों और नक्षत्रों को इन्द्र ने स्थिर और दृढ़ किया। इसलिये अब इन्हें कोई गिरा नहीं सकता ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! वर्षा के जल से समुद्र आदि को हर्षित करता हुआ रस के समान तुम्हारा स्तोत्र मुख से प्रकट होता है। सोम-पान के पश्चात् तुम्हारी शक्ति विशिष्ट होती है ॥४॥

२६ सूक्त

(ऋषिः—गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री)

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः ।
स्तोतृणामुत भद्रकृत् ॥१॥
इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः ।
उप यज्ञं सुराधसम् ॥२॥
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥३॥
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः ।
अव दस्यूँरधूनुथाः ॥४॥
असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः ।
सोमपा उत्तरो भवन् ॥५॥

हे इन्द्र ! तुम स्तोत्रों और उक्थों से बढ़ते हो और स्तुति करने वालों के लिये कल्याणप्रद हो ॥ १ ॥ इन्द्र के हर्यश्व सुन्दर फल वाले हमारे यज्ञ में इन्द्र को सोम पीने के लिये लावें ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुमने नमुचि नामक राक्षस का सिर जल के फेन का वज्र बनाकर काट डाला और प्रतिस्पर्द्धी सेनाओं पर विजय प्राप्त की ॥ ३ ॥ हे इन्द्र अपनी माया से आकाश पर चढ़ने की इच्छा करने वाले असुरों को तुम अधोमुखी करते हुये पतित करते हो ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम सोम पीकर बलवान होते हो और जहां सोम का अभिषव नहीं होता वहां के समाज को नष्ट कर देते हो ॥५॥

३० सूक्त

(ऋषि:—वरुः सर्वहरिर्वा । देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—जगती)

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥१॥
हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥२॥
सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३॥
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥४॥
त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यमसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व शीघ्र गमन वाले हैं, इस विशाल यज्ञ में मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ । तुम शत्रुओं के हननकर्त्ता हो, सोम पीने से उत्पन्न हुई शक्ति द्वारा मैं अपने अभीष्ट फल को माँगता हूँ । जैसे अग्नि में घृत सींचा जाता है, वैसे ही इन्द्र अपने हर्यश्वों सहित आते हुये सुन्दर धन की वृष्टि करते हैं । उनको हमारे स्तोत्र प्राप्त हों ॥ १ ॥ प्राचीन महर्षियों ने इन्द्र को यज्ञ में शीघ्रता से बुलाने के लिये इन्द्र के अश्वों को प्रेरित किया, वह स्तोत्र मूल रूप से इन्द्र के निमित्त ही था । नव प्रसूता गौ जैसे क्षीर देकर स्वामी को तृप्त करती हैं, वैसे ही सोमों के द्वारा यजमान इन्द्र को तृप्त करते हैं । हे ऋत्विजो ! उन शत्रु-शोषक, बलवान् हर्यश्वयुक्त इन्द्र का पूजन करो । २॥ इन्द्र का लोह वज्र भी हरा है: इन्द्र का कमनीय देह भी हरे रंग का है इनके पास हरे रंग वाला ही बाण रहता है तथा इनकी सब साज सज्जा ही हरे रंग की है ॥ ३ ॥ इन्द्र का वज्र सूर्य के समान अन्तरिक्ष में स्थित है, जैसे सूर्य के घोड़े वेग से लक्ष्य को प्राप्त होते हैं, वैसे ही इन्द्र का वज्र वेग से

गन्तव्य स्थान को प्राप्त होता है। अपने हरित् वज्र के द्वारा इन्द्र ने वृत्रासुर को संतप्त किया और उन्होंने उसके सहस्रों साथियों को शोक प्राप्त कराया ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे केश भी हरे रंग के हैं। जहाँ सोम रूप हवि है वहाँ तुम हो। तुम स्तुति प्राप्त करके हवि की इच्छा करते हो और अब भी कर रहे हो। तुम अपने हर्यश्वों सहित यज्ञ में आते हो। ऐसे हे इन्द्र ! यह सोम, अन्न और उक्थ तुम्हारे ही हैं ॥५॥

३१ सूक्त

(ऋषिः—वरुः सर्वहरिर्वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—जगती)

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥१॥
अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥२॥
हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥३॥
स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत् कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥४॥
उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद् वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥५॥

सोमोत्पन्न शक्ति के निमित्त इन्द्र के अश्व उन्हें हमारे यज्ञ में ला रहे हैं। तीनों सवनों वाले सोम इन्द्र को धारण करते हैं ॥१॥ हरे रंग वाले सोम युद्धों में अटल रहने वाले इंद्र को धारण करते हैं, वही सोम उनके घोड़ों को यज्ञ की ओर प्रेरित करते हैं। जो इंद्र वेग से अपने घोड़ों द्वारा यज्ञ में आगमन करते हैं, वे सोम वाले यजमान के पास पहुँचते हैं ॥ २ ॥ इंद्र के केश, दाढ़ी मूँछ सब हरे रंग के हैं ! वे सोम के संस्कारित होने पर सोम को पीते हुये वृद्धि को प्राप्त होते हैं। अपने द्रुतगामी अश्वों से वे सोम पीने को

आते हैं, हवि उनका धन रूप है। वे अपने रथ में घोड़ों को जोड़ कर हमारे सब पापों का नाश करें ॥ ३ ॥ जैसे यज्ञ में स्रुवे चलते हैं, वैसे ही इन्द्र की हरे रंग की चिबुक सोम पीने के लिए चलती है। जब सोम से चमस पूर्ण होता है तब उसका पान करते हुए इन्द्र की चिबुक फड़कती है। उस समय वे अपने अश्वों को परिमार्जन करते हैं ॥४॥ इनका निवास द्यावा पृथिवी में है। अश्व जैसे युद्ध के लिए अग्रसर होता है, वैसे ही अपने अश्वों पर चढ़े हुए इन्द्र यज्ञ स्थान की ओर अग्रसर होते हैं। हे इन्द्र ! हमारा स्तोत्र तुम्हारी कामना करता है, तुम भी यजमान की कामना करते हुए आकर उसे अपरिमित धन देते हो ॥ ५ ॥

३२ सूक्त

(ऋषि:—वरु: सर्वहरिर्वा । देवता—इन्द्र: । छन्द:—जगती; त्रिष्टुप्)

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यं नव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्य मसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥ १ ॥
आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिवा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥ २ ॥
अपा: पूर्वेषां हरिव: सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपनी महिमा से आकाश और पृथिवी को व्याप्त करते हो। तुम सदा नवीन रहने वाले हो। तुम हमारे प्रिय स्तोत्र की इच्छा करते हो। तुम पणियों द्वारा अपहृत गौओं के स्थान को सूर्य को देते हो। वह सूर्य स्तुति करने वाले को उस गोष्ठ को दें, ऐसी कृपा करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम सोम पीने की इच्छा करने वाले और सोम पीने से हरे रंग की हुई ठोड़ी वाले हो। तुमको रथ में जुड़े घोड़े यहाँ लावें। चमस आदि में रखे हुए सोम वाले घर में आकर तुम सोम पी सको इसलिए तुम्हें अश्व यहाँ ले आवें ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्रात: सवन में सोम पान कर चुके हो, अब यह माध्यन्दिन

सवन भी तुम्हारा ही है। अतः इस सवन में सोम पीकर हृष्ट होओ। इस सोम को एक साथ ही उदरस्थ कर लो ॥ ३ ॥

३३ सूक्त

(ऋषिः—अष्टक; । देवता—इन्द्रः । छन्द;—त्रिष्टुप्)

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्य तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥ १ ॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥ २ ॥
ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! अध्वर्युओं द्वारा संस्कारित इस सोम को पीकर उदर को पूर्ण करो। जिस सोम को पाषाण निष्पन्न कर चुके हैं, उसे पीते हुए हर्षयुक्त होओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम इच्छित फल-वर्षक हो। मैं तुम्हें सोम की प्रचंड शक्ति रूपी बल के लिए प्रेरित करता हूँ। तुम यज्ञ कर्म में हवि और स्तुतियों से प्रशंसित और तृप्त होओ । २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा रक्षित पुत्रादि रूप संतान और अन्न से सम्पन्न सत्यफल के ज्ञाता और तुम्हें चाहने वाले ऋत्विज, यजमान के घर में तुम्हारी स्तुति करते हुए बैठे हैं । ३ ॥

३४ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१॥
यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान प्रकुपितां अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥ २ ॥

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनारन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवांल्लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥
य स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७ ॥
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८ ॥
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव या अच्युतच्युत स जनास इन्द्रः । ९ ॥
यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० ॥

इन्द्र के बल से आकाश पृथिवी भयभीत रहते हैं । उन इन्द्र ने प्रगट होते ही अन्य देवताओं को रक्ष्य रूप में ग्रहण किया ॥१॥ हे असुरो ! जिन्होंने विचलित भूमि को स्थिर किया, जिन्होंने पङ्ख वाले पर्वतों के पङ्ख काटकर अचल कर दिया, जिन्होंने अंतरिक्ष और आकाश को भी स्तम्भित किया, वह इंद्र हैं ॥२॥ जिस इंद्र ने अंतरिक्ष में घूमने वाले मेघ को चीर कर नदियों को प्रेरित किया और बल द्वारा अपहृत गौओं को प्रकट किया । जिन्होंने मेघों में व्याप्त पाषाणों से विद्युत को उत्पन्न किया, जो युद्धों में शत्रुओं का नाश करते हैं, वही इंद्र हैं ॥ ३ ॥ हे असुरो ! जिन्होंने दृश्यमान लोकों को स्थिर किया, जिन्होंने असुरों को गुफाओंमें डाल दिया, जिन्होंने प्रत्यक्ष शत्रुओं पर विजय पाई और जो शत्रु के धनों को छीन लेते हैं, वे इन्द्र हैं ॥४॥

शत्रु नाशक उन इन्द्र के सम्बंध में लोग विविध शंकाएँ करते हैं, वह शत्रु-रक्षक सेनाओं का समूल नाश करते हैं। हे मनुष्यों ! उन इन्द्र पर विश्वास करो, उनके प्रति श्रद्धावान होओ। वृत्रादि शत्रुओं को उनके सिवाय और कौन जीतता ? वे शत्रु-विजेता इन्द्र हैं ॥ ५॥ जो इंद्र निर्धनों को धन और असहायों को सहायता देते हैं, जो स्तोता ब्राह्मणों को इच्छित प्रदान करते हैं। जिनकी चिबुक सुन्दर है और जो सोम को संस्कारित करने वाले यजमानों के रक्षक हैं। हे मनुष्यो ! वह इन्द्र हैं ॥ ६॥ माँगने वालो को देने के लिए जिन इंद्र के पास बहुत से अश्व, गौएँ, ग्राम, रथ, गज ऊँट, आदि सब कुछ है और जिन इंद्र ने प्रकाश के लिए सूर्य का उदय किया है और उषा को प्रकट किया है। जो वर्षा के जलों के प्रेरक हैं, वे इन्द्र हैं ॥ ७॥ आकाश और पृथिवी परस्पर एकमत हुए इंद्र का आह्वान करते हैं। द्युलोक हवि के लिए और पृथिवी वृष्टि के लिए उन्हें आहूत करते हैं। समान रथ में बैठे हुए सेनापति जिन्हें आहूत करते हैं, वह इंद्र ही हैं ॥ ८॥ जिनकी सहायता के बिना विजय की कामना करने वाले व्यक्ति शत्रुओं को हरा नहीं सकते। इसलिए युद्धावसर पर वे रक्षा के लिए उन्हें बुलाते हैं। जो इन्द्र अचल पर्वतों को हटाने में समर्थ हैं और जो प्राणियों के पुण्य पाप के द्रष्टा हैं, वह इन्द्र हैं ॥ ९॥ महापापियों और इन्द्र की सत्ता को न मानने वालों को जो इंद्र हिंसित करते हैं, जो अपने कर्मों में इंद्र की अपेक्षा नहीं करते, उनके जो प्रतिकूल रहते हैं, जो वृत्र आदि असुरों के हिंसक हैं, हे मनुष्यो ! वह इन्द्र हैं ॥१०॥

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥
यः शम्बरं पर्यतरत् कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य।
अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्छत् स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१४॥
यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१५॥
जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य ।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनास इन्द्रः ॥१६॥
यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥१७॥
यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१८।

जिन इन्द्र ने चालीस वर्ष तक पर्वत में छिपकर घूमते हुए शम्बर का वध किया, जिन्होंने शयन करने वाले बली वृत्र का संहार किया, वह इन्द्र हैं ॥११॥ जिन इन्द्र की हिंसा के लिए असुरों ने सोमयागकर्त्ता अध्वर्युओं को घेर लिया, जिन इन्द्र ने वज्र से शम्बर का दमन किया और जो निष्पन्न सोम को पी चुके हैं, वह इन्द्र हैं ॥१२॥ जो जलों की वर्षा करने वाले हैं, जो कामनाओं के भी वर्धक हैं, जो सात रश्मियों वाले सूर्य रूप से स्थित हैं, जिन्होंने वज्र ग्रहण कर आकाश पर चढ़ते हुए रोहिण असुर का वध किया और जिन्होने सात नदियों को उत्पन्न किया, वह इन्द्र है ॥ १३ ॥ जिनके समक्ष आकाश पृथिवी झुकती है, जिसके बल से पर्वत भी कांपते हैं, जो सोम पीकर दृढ़ शरीर वाले और बलवान बाहुओं वाले हैं, जो वज्र को धारण करते हैं, वह इन्द्र हैं ॥१४॥ जो हवि पाक करने वाले और सोम का संस्कार करने वाले यजमान के रक्षक हैं। जो रक्षा के लिए साम गान करने वाले के रक्षक हैं, सोम और स्तोत्र जिन्हें बढ़ाते हैं, हमारा हविरन्न जिन्हें पुष्ट करता है, हे मनुष्यो ! वह इन्द्र हैं ॥१५॥ जो प्रकट होते ही आकाश पृथिवी में व्याप्त हुए, जो पृथिवी रूप माता और पितृ स्थानीय आकाश को भी नहीं जानते और जो हमारी स्तुतियों से ही देवताओं को पूर्ण करते हैं, वे इन्द्र हैं ॥ १६ ॥

जो अश्वों को चलाते हुए सोम की कामना करते हैं, जिन्होंने शम्बर को मार डाला, शुष्ण का बध किया, जिनसे सभी प्राणी भयभीत होते हैं क्योंकि वे असाधारण वीर हैं, वह इंद्र हैं ॥ १७ ॥ हे इंद्र ! तुम दुर्धर्ष होते हुए भी पुरोडाश का पाक करने वाले या सोम का अभिषव करने वाले यजमान को इच्छित अन्न-धन देते हो, तुम अवश्य ही सत्य हो। हम तुम्हारा स्नेह पाकर सुन्दर पुत्रादि से युक्त धन पाते हुए तुम्हारी स्तुति करते रहें ॥ १८ ॥

३५ सूक्त

(ऋषिः—नोधाः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥१॥
अस्मा इदु प्रयइव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥२॥
अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥३॥
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥४॥
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥५॥
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६॥
अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥७॥
अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परिष्टः ॥८॥

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥६॥
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दानवे सचेताः ॥ १० ॥

इस स्तोत्र को श्रेष्ठ ढङ्ग से इन्द्र के निमित्त उच्चारण करता हूँ। वे इन्द्र सोम पीने के लिए शीघ्रता वाले और ऋचाओं के अनुकूल रूप वाले, महान्, बलवान, अबाध गति वाले हैं। वे जैसे क्षुधाग्रस्त को अन्न देते हैं, वैसे ही मैं उनकी स्तुति करता हुआ, प्राचीन कालीन यजमानों के समान हवि अर्पित करता हूँ ॥ १ ॥ मैं इन्द्र के लिए अन्न के समान अपने स्तोत्र को प्रेषित करता हूँ, मैं शत्रुओं को बाधा देने वाले घोष को करता हूँ। ऋत्विज भी अपने हृदय से इन्द्र के लिये स्तुतियों को मार्जित करते हैं ॥ २ ॥ धन के प्रेरक इन्द्र को स्तुतियों द्वारा प्रवृद्ध करने के लिये मैं सुसस्कृत स्तोत्र का सम्पादन करता हूँ। मैं इन्द्र के लिये उपमायोग्य स्तोत्रों का उच्चारण रूप घोष करता हूँ ॥ ३ ॥ जैसे रथ-शिल्पी रथ का निर्माण करता है, वैसे ही मैं इन्द्र के लिए स्तोत्र प्रेरित करता हूँ। यह इन्द्र स्तुतियों से प्रापणीय और यज्ञार्ह हैं। मैं उनके लिए स्तुति और हवि प्रदान करता हूँ ॥ ४ ॥ अन्न की कामना वाला मैं हविरन्न को घृत युक्त स्रुवे से मिलाता हूँ और अंजन-साधन मन्त्र से भी जोड़ता हूँ जैसे अश्वों को रथ में जोड़ा जाता है, वैसे जोड़ता हूँ। असुरों के पुरों को ध्वंस करने वाले, शत्रुओं के भगाने वाले, यशवान इन्द्र की स्तुति करने के लिए उन्हें आहूत करता हूँ ॥५॥ संसार के रचयिता ब्रह्मा ने इन्द्र के लिए वज्र नामक आयुध की रचना की। वह आयुध स्तुतियों के योग्य सुन्दर कर्म वाला है, उसके द्वारा शत्रु-निग्रह होता है। वृत्रासुर के मर्मस्थल को ढूँढ कर इन्द्र ने उसी आयुध से प्रहार किया था ॥ ६ ॥ यह इन्द्र सोम-योगात्मक तीनों सवनों में सोम का पान कर गए और पुरोडाश आदि को खा गए, यह उनका असाधारण कर्म कहा जाता है। यह इन्द्र सोम पान से उत्पन्न बल से शत्रुओं को वश करते और उनके छीनने योग्य धनों को छीन लेते हैं। इन्हीं इन्द्र ने जल को निकालने के लिये मेघ को चीर डाला था

॥ ७ ॥ वृत्रासुर का नाश करते समय देवपत्नियों ने इन्द्र के लिये अर्चन साधन स्तोत्र को बढ़ाया और इन्द्र ने विस्तीर्ण आकाश पृथिवी को अपने तेज से व्याप्त किया। वे द्यावा पृथिवी इन इन्द्र की महिमा को कम करने में समर्थ नहीं हुई ॥ ८ ॥ इन्द्र की महिमा आकाश से भी ऊपर फैली हुई है। पृथिवी भी इनकी महिमा को विस्तृत करती है, अन्तरिक्ष में भी इनकी महिमा का विस्तार है। वधन करने योग्य शत्रुओं पर यह दमकते हुए इन्द्र प्रचण्ड बल वाले हैं। यह वर्षा के लिये मेघों के लाने वाले हैं ॥ ९ ॥ इन्द्र के तेज के सामने सूखते हुए वृत्रासुर को इन्द्र ने काट दिया और पणियों द्वारा अपहृत गौओं को छुड़ाया, वृत्रासुर द्वारा रोके हुये जलों को, मेघ को चीर कर निकाला और यजमान को इन्होने अन्न प्रदान किया ॥ १० ॥

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिंधवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत्।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥११॥
अस्मा इदु प्र भरा तू तुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥१३॥
अस्येदु भिया गिरयश्च दृढा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥१४॥
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्।
एषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१६॥

इंद्र के वज्र से चारों ओर से नियमित हुई नदियाँ इन्द्र के बल से ही प्रवाहित होती हैं। यह यजमान को इच्छित फल देकर धनवान बनाने वाले और जल में निमग्न तुर्वीति को प्रतिष्ठा प्राप्त कराने वाले हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! वृत्र हनन में शीघ्रता करने वाले तुम शत्रु को नाश करने के लिए वज्र प्रहार करो। जैसे मांस के इच्छुक व्यक्ति पशु को टूक-टूक कर डालते हैं, वैसे ही तुम जल को पृथिवी पर प्रवाहित करने के लिये वज्र से वृत्र के टूक-टूक करो ॥ १२ ॥ हे स्तोता ! स्तुति के योग्य इन्द्र के प्राचीन कर्मों का गान करो। जब वे इंद्र शत्रुओं का वध करते हुए वज्र को बार-बार चलावें तब उनके गुणों का गान करो ॥ १३ ॥ इंद्र के प्राविर्भाव से ही पङ्ख कटने के भय से पर्वत स्थिर होगए और आकाश-पृथिवी भी इनके भय से कम्पायमान होते हैं। नोधा ऋषि इनकी अनेक स्तोत्रों से प्रशंसा करते हुए वीर्ययुक्त हुए ॥ १४ ॥ हवियों के स्वामी इंद्र ने स्तोत्र आदि की असाधारण कामना की थी, इसलिए सोम रूपी अन्न इनके निमित्त दिया जाता है। इन्हीं इन्द्र ने सौवश्व्य की रक्षा के समय सूर्य से स्पर्धा करने वाले एतश की रक्षा की थी ॥ १५ ॥ हे इन्द्र ! गौतम गोत्रिय ऋषि इन मंत्रात्मक स्तोत्रों को तुम्हारे लिए करते हैं। इन स्तुति करने वालों में अनेक प्रकार के धन और यज्ञ कर्म की स्थापना करो। जैसे इस समय इंद्र हमारी रक्षा के लिए आए हैं, वैसे ही वे दूसरे दिन भी हमारे यज्ञ में आगमन करें ॥ १६ ॥

३६ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्द—त्रिष्टुप्)

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥१॥
तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥२॥
तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥३॥
तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४॥
तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः।

तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५॥
अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीडिता स्वोजो रुजो वि दृढा धृषता विरप्शिन् ॥ ६ ॥
तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठ प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८॥
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ।६॥
आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥१०॥
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥११॥

आह्वान योग्य इन्द्र को स्तुतियों से आहूत करता हूँ यह इंद्र काम्य वर्षक, सत्य फल रूप, बहुकर्मा, बलप्रदाता और सब प्राणियों के ईश्वर हैं। मैं उन इंद्र का अपने स्तोत्रों से भले प्रकार पूजन करता हूँ ॥ १ ॥ हमारे जिन सात पूर्व पुरुषाओं ने हवि रूप अन्न से इन्द्र की कामना की और नौ महीनों में सिद्धि पाई, वे इन्द्र की स्तुति करते हुये पितृलोक को प्राप्त हुए। यह इन्द्र शत्रुओं के हिंसक और दुर्गम को पार करने वाले हैं। यह अत्यन्त बलवान हैं, कोई इनकी बात का उल्लङ्घन नहीं कर सकता ॥ २ ॥ वीर पुत्रों और सेवकों से सम्पन्न अपरिमित धन को हम इंद्र से माँगते हैं। हे इंद्र ! हमको अविनाशी और सुख देने वाला धन दो ॥ ३ ॥ इन्द्र ! पूर्वकाल में स्तुति करने वाले ऋषि जिस सुख को तुमसे प्राप्त कर चुके हैं, हम स्तोताओं को भी वह सुख दो। उस सुख के लिए जो यज्ञ भाग तुम्हारे लिये निश्चित है, वह कौन-सा है ? तुम्हें कौन-सा अन्न हविरूप में देना चाहिये, इस बात को हमें बताओ। तुम शत्रुओं को खेद में डालने वाले तथा बहुत से धनों के

स्वामी हो ॥४॥ जिस स्तोता की वाणी, वज्र धारण करने वाले और रथ में प्रतिष्ठित इन्द्र को प्राप्त होती है और बहुकर्मा तथा बली इन्द्र से यजमान सुख की कामना करता है वह शत्रु को सामने से प्राप्त करता हुआ वश करता है ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम मन के समान वेग वाले वज्र द्वारा माया द्वारा प्रवृद्ध वृत्र का नाश कर चुके हो। तुमने ऐसे शत्रु-नगरो को भी ध्वस्त कर डाला, जिन्हें अन्य कोई नहीं कर सकता था ॥ ६ ॥ हे यजमानों ! प्राचीन ऋषियों के समान मैं भी इन्द्र को नवीन स्तोत्रों से सजाने को उद्यत हुआ हूँ। वे सुन्दर वाहनों से युक्त इन्द्र हमको सभी कठिन मार्गों से पार करें ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! पृथिवी, द्युलोक और अन्तरिक्ष में राक्षस आदि के स्थानों को ताप युक्त करो और उन्हें अपने तेज से भस्म कर डालो। ब्राह्मण द्वेषी राक्षसों के नाश के लिए आकाश पृथिवी को भी तेजमय करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्वयं के राजा हो, अपने दक्षिण हाथ में वज्र लेकर सब राक्षसी माया को दूर करो ॥ ९ ॥ हे वज्रिन ! तुम अपनी जिस मंगलमयी सम्पत्ति से दातृवत् मनुष्यों को भी श्रेष्ठ बना देते हो, उस अत्यन्त महिमा वाली संपत्ति को हमारी ओर प्रेरित करो ॥१०॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त पूजनीय, सबके रचने वाले और यजमानों द्वारा बुलाये जाने वाले हो। तुम अपने अश्वों द्वारा यहाँ आगमन करो। तुम्हारे उन अश्वों को देवता या असुर कोई भी रोक नहीं सकता। तुम उनके द्वारा शीघ्र आओ ॥ ११ ॥

३७ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्तिग्मश्रृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ २ ॥
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभि सुदासम्।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥
तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहं च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥
सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥६॥
मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥
प्रियास इत ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥
सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ६ ॥
एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥ १० ॥
नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! तुम टेढ़े सींग वाले बैल के समान भय देने वाले हो । तुम हमारे शत्रुओं को दूर भगाने में समर्थ हो । तुम हवि न देने वाले के धन को हविदाता को प्रदान करते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जब तुमने कुत्स के लिये शुष्ण को दण्ड दिया और कुयव का धन अपने अधिकार में कर लिया, तब तुमने कुत्स का उपचार करके उसकी देह-रक्षा की थी ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुमने शत्रु को वश करने वाले वज्र से वीतहव्य और सुदास की रक्षा की और तुमने पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु और पुरु की भी युद्ध में रक्षा की थी ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम युद्ध उपस्थित होने पर मरुद्गण के सहयोग से अनेक दस्युओं को मार डालते हो । तुमने राजर्षि दभीति के निमित्त वज्र ग्रहण करके चुमुरि

और धुनि नामक दस्युओं का भी नाश किया था ।५।। हे वज्रिन् ! तुम्हारा बल अत्यन्त प्रसिद्ध है। तुमने उसी बल से राक्षसों के निन्यानवे पुरों को ध्वस्त किया था और सौवें पुर में व्याप्त हो गये थे। तुमने वृत्र और नमुचि का भी संहार कर दिया था ।५।। हे इन्द्र ! हविदाता सुदास के लिए तुम्हारे धन चिरकाल के लिए हुए हैं। तुम बहुत से वर्म वाले और अभीष्ट वर्षक हो। तुम्हें यहाँ लाने के लिये हर्यश्वों को तुम्हारे रथ में जोड़ता हूँ। हमारे प्रबल स्तोत्र तुम्हें प्रसन्न हों ।। ६ । हे इन्द्र ! तुम्हारी इस स्तुति में हम त्याग योग्य न हों। हमको अपने अविनाशी रक्षा-साधनों द्वारा रक्षित करो। हम स्तुति करने वालों और विद्वानों में तुम्हारे प्रिय हों । ७ ।। हे इन्द्र ! हम तुम्हारे मित्र रूप यजमान अपने गृह में प्रसन्न रहें तुम अतिथिग्व को सुख प्रदान करो और तुर्वश तथा यादव राजाओं को तीक्ष्ण करो ।।८।। हे मघवन् ! तुम्हारे अभिगमन के समय ऋत्विज उक्थों का उच्चारण करते हैं। जो ऋत्विज तुम्हारे आह्वान से अयाज्ञिकों को नष्ट करते हैं, वे भी उक्थों को कहते हैं। अतः हम उक्थों का उच्चारण करने वालों के लिए फल देने वाले यज्ञ के निमित्त वरण करो ।।९।। हे नरोत्तम इन्द्र ! यह स्तोत्र तुम्हारे सामने आकर धन प्रदान से युक्त हैं। हम स्तोताओं के पाप शमनार्थ तुम सुख दो और हम हविदाता के मित्र के समान रक्षक होओ । १० ।। हे इन्द्र ! तुम हमसे स्तुति और हवि प्राप्त करते हुए प्रवृद्ध होओ और हमको धन तथा पुत्र दो । हे अग्नि आदि सब देवताओ ! तुम भी हमारा कल्याण करते हुये रक्षक बनो।११

३८ सूक्त

(ऋषि:— इरिम्बिठिः; मधुच्छन्दाः । देवता—इन्द्रः । छन्दः— गायत्री)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ।। १ ।।
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ।। २ ।।
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।

सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हमने सोम को संस्कारित कर लिया । तुम यहाँ आकर इन विस्तृत कुशाओं पर बैठकर सोम पान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व मन्त्रों द्वारा रथ में जुड़ते हैं और इच्छित स्थान पर ले जाते हैं, वे अश्व तुम्हें यहाँ लावें तब तुम हमारे आह्वान को सुनो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! हमारे पास संस्कारित सोम है, हम तुम्हारे पूजक, सोमयाग कर चुके हैं । तुम सोम पीने वाले हो अतः हम तुम्हें आहूत करते हैं ॥ ३ ॥ पूजा-मन्त्रों से इन्द्र का पूजन किया जाता है, साम गान में भी इन्द्र की ही स्तुति है और यह वाणी भी इन्द्र का ही स्तवन करती है ॥ ४ ॥ इन्द्र वज्रधारी और उपासकों के हितैषी हैं । इनके अश्व साथ रहते हैं । वे अश्व मन्त्रों द्वारा रथ में जोड़े जाते हैं ॥ ५ ॥ दीर्घ दर्शन के निमित्त इन्द्र ने सूर्य को द्युलोक में आरूढ़ किया और सूर्य रूप इन्द्र ने ही अपनी रश्मियों से मेघों को चीर डाला ॥६॥

३९ सूक्त

(ऋषि–मधुच्छन्दाः; गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता–इन्द्रः । छन्द–गायत्री)

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकस्तु केवलः ॥ १ ॥
व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ २ ॥
उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥
इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च ।
स्थिराणि न पराणुदे ॥ ४ ॥

प्रपामूर्मिमंदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिपुः ॥ ४ ॥

हम सब विश्व के प्राणियों की ओर से इन्द्र को आहूत करते हैं, वह इन्द्र हमारे ही हों ॥ १ ॥ इन्द्र ने अन्तरिक्ष को सोम से हर्षित होने पर वृष्टि के जल से प्रवृद्ध किया और अपने बल से मेघ को चीर डाला ॥२॥ अङ्गिराओं के लिए इन्द्र ने गुफा स्थित गौओं को प्रकट किया और निकाला । अपहरणव कर्त्ता बल को अधोमुखी करके गिरा दिया ॥ ३ ॥ आकाश में चमकते हुये नक्षत्रों को इन्द्र ने स्थिर किया । इसलिये अब कोई उन्हें हटा नहीं सकता ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! वर्षा के जल से समुद्र आदि को मत्त बनाता हुआ तुम्हारा स्तोत्र रस के समान उच्चारित होता है और तुम्हारा सोम पीने के कारण उत्पन्न हर्ष प्रकट होता है ॥ ५ ।

४० सूक्त

(ऋषि—मधुच्छन्दाः । देवता—इन्द्रः; मरुतः । छन्द—गायत्री)

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ १ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ २ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम अभय प्रदान करने वाले मरुतों के साथ रहते हो । तुम एक साथ रहते हुए सदा प्रफुल्लित होते हो । तुम दोनों का तेज एक-सा ही है । १ ॥ इन्द्र की कामना करने वालों से यह यज्ञ अत्यन्त सुशोभित है । वे इन्द्र अत्यन्त तेजस्वी एवं पाप रहित हैं ॥ २ ॥ फिर हवि देने पर वह गर्भत्व को प्राप्त होते और यज्ञिय नाम रखते हैं ॥ ३ ॥

४१ सूक्त

(ऋषि—गोतमः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥१॥
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ॥२॥
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३ ।

युद्ध में पीछे न हटने वाले इन्द्र ने वृत्र के निन्यानवे नगरों को ध्वस्त

कर डाला ॥ १ ॥ पर्वतों में अपश्रित अश्व के वीर्य की कामना करते हुए उन्होंने उसे दर्यणावत् में प्राप्त किया ॥ २ ॥ चन्द्रमण्डल रूप गृह में सूर्य रूप इन्द्र ही एक रश्मि रूप से विद्यमान हैं। अन्य सूर्य-रश्मियाँ भी इसे जानती हैं ॥ ३ ॥

४२ सूक्त

(ऋषि—कुरुस्तुतिः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम्। इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥१॥
अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम्। इन्द्र यद् दस्युहाभवः ॥२॥
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः। सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥३॥

मैंने इन्द्र से ही सत्य का स्पर्श करने वाली अष्ट पदवाली और नवस्रक्ति वाणी को अपने शरीर में धारण किया है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जब तुमने असुरों को नष्ट किया, तब तुम्हारी निर्बलता को देखकर द्यावापृथिवी ने तुम पर कृपा की थी ॥२॥ हे इन्द्र ! सुसंस्कारित सोम को पीकर अपने हनु को चलाते हुये उठो ॥ ३ ॥

४३ सूक्त

(ऋषि–त्रिशोकः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥
यद् वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम्।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥
यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति। वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओं को काटो, रण की बाधा को दूर करो और हमको ग्रहणीय धन प्रदान करो ॥ १ ॥ जो धन स्थिर व्यक्ति में रहता है तथा जो धन पार्श्वों में भरा जाता है, हे इन्द्र ! उस धन को हमें दो ॥ २ ॥ तुम्हारे द्वारा प्रदत्त जिस धन को सब उपासक प्राप्त करते हैं उस धन को हमें दो ॥ ३ ॥

४४ सूक्त

(ऋषि—इरिम्बिठिः देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।
नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥
यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।
अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥
तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् ।
महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥

मनुष्यों में सहनशील, अग्रगण्य, नित्य नवीन और पूजन के योग्य, मनुष्यों के स्वामी इन्द्र की स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥ नीचे की ओर बहने वाले जल समुद्र में जाते हैं, वैसे ही उक्थ और अन्न की कामना से किये जाते यज्ञ इन्द्र को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ मैं उन्हें स्तुति से प्रकट करता हूँ । वे तेजस्वी शत्रुओं को काटने वाले और स्तुति करने वालों को अन्न और यश देने वाले हैं । मैं उन्हें हवि से प्रसन्न करता हूँ ॥ ३ ॥

४५ सूक्त

(ऋषि—शुनः शेपो देवरातापरनामा । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

अयमु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै । ३ ॥

हे इन्द्र ! जैसे गर्भ धारण करने वाली कबूतरी के पास कबूतर जाता है वैसे ही हमारे तर्कना वाले वचन की ओर तुम आओ ॥ १ ॥ हे धनेश्वर ! तुम्हारी विभूति सत्य हो । स्तुतियाँ ही तुम्हें प्राप्त कराने में समर्थ हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम सैकड़ों कर्म करने वाले हो । तुम यहाँ हमारी रक्षा करने के लिए ऊंचे स्थान पर खड़े होओ । अन्य पुरुषों से द्वेष पाते हुये हम तुम्हारा स्तव करते हैं ॥ ३ ॥

४६ सूक्त

(ऋषि—इरिम्बिठिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्त्तारं ज्योतिः समत्सु ।
सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १ ॥
स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ २ ॥
स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च ।
अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ ३ ॥

वे इंद्र, नेता, रणस्थल में शत्रुओं को वश करने वाले और यज्ञों में ज्योति के कर्ता है ॥ १ ॥ अपनी कल्याणमयी नाव के द्वारा हमको पार लगाते हुए वे इंद्र सब शत्रुओं से हमको बढ़ावें ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपनी दसों उङ्गलियों से अन्नादि से सम्पन्न सुख को हमारे समक्ष लाते हो ॥ ३ ॥

४७ सूक्त

(ऋषि—सुकक्षः प्रभृति । देवता—इन्द्रः, सूर्यः । छन्द—गायत्री)

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १ ॥
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः ।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ३ ॥
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥५॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।

वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥६॥
आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥७॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥८॥
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥९।
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥१०॥

वे अभीष्टवर्षक इन्द्र सब में उत्कृष्ट हों । वृत्र का नाश करने के लिए हम उन्हें पुष्ट करते हैं ॥ १ ॥ इन्द्र प्रशंसनीय, सोम्य और तेजस्वी हैं, वे बलवान् प्रसन्नताप्रद यज्ञ में आते हैं । उन्हें निग्रहार्थ रज्जु के रूप में किया गया है ॥ २ ॥ वे इन्द्र श्रेष्ठ मनुष्यों पर धन पहुँचाते हैं । वे वज्र के समान बल से सम्पन्न और अविनाशी हैं ॥ ३ ॥ वाणी इन्द्र की स्तुति करती है, गायक भी इन्द्र का ही यशोगान करते हैं, पूजा मंत्रों द्वारा भी इन्द्र का ही पूजन किया जाता है ॥ ४ ॥ इन्द्र के अश्व सदा साथ रहते हैं, यह मन्त्रों द्वारा रथ में जोड़े जाते हैं । वज्रधारी इन्द्र हिरण्यमय हैं ॥ ५ ॥ दीर्घ दर्शन के निमित्त सूर्य को इन्द्र ने ही आकाश में आरूढ़ किया और यही इन्द्र सूर्य रूप से मेघों को चीरते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हमने सोम का संस्कार कर लिया, तुम इन विस्तृत कुशाओं पर बैठकर उस सोम का पान करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व मन्त्रों से जोड़े जाते हैं, वे तुम्हें अभीष्ट स्थान पर पहुँचाने में समर्थ हैं, वे अश्व तुम्हें यहाँ लायें और तुम हमारे स्तोत्र को सुनो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! हम उपासकों ने सोमयाग किया है और संस्कारित सोम हमारे पास रखा है, इसलिये सोम-पान के लिए तुम्हें आहूत करते हैं ॥ ९ ॥ तुम्हारा रथ सब प्राणियों को लाँघता हुआ जाता है, उसमें जुते हुए हर्यश्व आकाश में दमकते हैं ॥ १० ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥११॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥१२॥
उदुत्य जातवेदसं देव वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१३॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥१४॥
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनां अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ५॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन ॥१६॥
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥१७॥
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥१८॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य । १९॥
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥२० ।
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥२१।

इन्द्र के सारथी रथ में अश्वों को संयुक्त करते हैं । यह अश्व रथ के दोनों ओर रहते हैं, यह कामना करने योग्य अश्व सवारी देने के योग्य हैं ॥ ११ ॥ हे मनुष्यो ! यह सूर्य रूपी इन्द्र अज्ञानियों को ज्ञान देने वाले, अन्धकार से ढके पदार्थों को प्रकाश से प्रकट करने वाले हैं, यह अपनी रश्मियों सहित उदित हो गये हैं । तुम इनके दर्शन करो ॥ १२ ॥ उनकी रश्मियाँ उत्पन्न भूतों को जानने वाली हैं और संसार को सूर्य रूपी इन्द्र का दर्शन कराने के निमित्त इन्हें ऊपर चढ़ाती हैं ॥ १३ ॥ रात के जाने के साथ ही चोर पलायन कर जाते हैं वैसे ही इस सर्वद्रष्टा सूर्य के आते ही नक्षत्र भाग जाते हैं ॥ ४१ ॥ इनकी ज्ञानदायिनी रश्मियाँ अग्नि के समान दीप्त हुई मनुष्यों के पीछे दिखाई देती हैं ॥ १५ ॥ हे इन्द्र ! तुम भव नौका रूप हो । तुम सब के द्रष्टा, ज्योतिप्रद और सब के प्रकाशक हो ॥ १६ ॥ हे इन्द्र !

तुर मनुष्यों और देवताओं के लिए उदित होते हो। तुम सब के सामने प्रकाशित होते हो ॥ १७ ॥ हे पाप नाशक इन्द्र ! प्राचीन पुण्यात्माओं द्वारा ग्रहण किये गए मार्ग पर जो पुरुष चलते हैं, उन्हें तुम सदा कृपा-दृष्टि से देखते हो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब पर कृपा करते और उन्हें देखते हुये, रात्रि और दिन को बनाते हुए तीनों लोकों में विचरते हो ॥ १९ ॥ हे सूर्यात्मक इन्द्र ! तुम्हारी दमकती हुई सप्त रश्मियाँ अश्व रूप से रथ में युक्त होती और तुम्हें वहन करती हैं ॥ २० ॥ इन इन्द्र ने सात अश्वों को अपने रथ में संयुक्त किया है, वह अपने वज्र पर उनके द्वारा गति करते हैं ॥२१॥

४८ सूक्त

(ऋषि—उपरिबभ्रवः सार्पराज्ञी वा। देवता—गौः। छन्द—गायत्री)

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः।
अभि वत्सं न धेनवः ॥१॥
ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः।
जातं जात्रीर्यथा हृदा ॥२॥
वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन्। मह्यमायुर्घृतं पयः। ३॥
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥४॥
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः। व्यख्यन्महिषः स्वः ॥५॥
त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत्।
प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥६॥

विचरणशील गौएं जैसे अपने बछड़ों के सामने जाती हैं वैसे ही वाणी तुम्हें वर्च द्वारा सींचती हुई प्राप्त होती है ॥ १ ॥ जैसे उत्पन्न शिशु की रक्षिका माता उसे अपने हृदय से लगा लेती है, वैसे ही सुन्दर स्तुतियाँ इन्द्र को वर्च से अलंकृत करती हैं ॥ २ ॥ यह वज्रधारी मुझे यश, आयु, घृत, दुग्ध दिलावें ॥ ३ ॥ यह सूर्यात्मक इन्द्र उदयाचल को प्राप्त हो गए। इन्होंने प्राची में दर्शन देकर सब जीवों को अपनी रश्मियों से आच्छादित कर लिया। फिर इन्होंने वृष्टि जल को सींचकर स्वर्ग और अन्तरिक्ष को व्याप्त

किया। वर्षा के जल रूप प्रमृत को दुहने के कारण यह गी कहलाते हैं ॥४॥ प्राणन के पश्चात् अपानन व्यापार वाले जीवों के देह में सूर्य की प्रभा प्राण रूप से घूम रही है। वे सूर्य ही सब लोकों को प्रकाशित करते हैं ॥ ५ ॥ सूर्य की रश्मियों से दिन-रात के अंग रूप तीस मुहूर्त दीप्त होते हैं और वेद रूपा वाणी सूर्य का पक्षी के समान आश्रय पाती है। ६ ॥

४९ सूक्त

(ऋषि—नोधाः; मेध्यातिथिः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री प्रभृति)

यच्छका वाचमारुहन्नन्तरिक्ष सिषासथः। सं देवा अमदन् वृषा ॥१।
शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि। महिष्ठ आ मदर्दिवि ॥२॥
शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् वि राजति। विमदन् बर्हिरासरन् ॥३॥
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे। ५॥
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ। ६॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥७।

हे इन्द्र! जब स्तुति करने वाले विद्वान् वाणी पर चढ़ते हैं तब देवता प्रसन्न होते हैं ॥१॥ वे शक्र शिष्ट मनुष्य पर कठोर वचन न कहें। हे मंहिष्ठ! तुम आकाश को हर्ष से पूर्ण करो ॥ २ ॥ हे शक्र! कठोर वाणी का उच्चारण न करो। आप कुशाग्रों पर आकर हर्षित हुये विराजमान होते हैं ॥ ३ ॥ हे यजमानो! यह इन्द्र दुखों का नाश करने वाले, दर्शनीय एवं सोम से प्रसन्न रहने वाले हैं। तुम्हारे यज्ञ की सम्पन्नता के निमित्त हम इन्द्र की स्तुति करते हैं। जैसे सूर्य द्वारा प्रकाशित दिन के उदय और अस्त के समय गौएं

रँभाती हुई बछड़ों की ओर जाती हैं; वैसे ही हम भी अपनी स्तुतियों सहित इन्द्र की ओर जाते हैं ॥ ४ ॥ जैसे दुर्भिक्ष काल में सब जीव कन्द, मूल, फल से सम्पन्न पर्वत की स्तुति करते हैं, वैसे ही हम दानयोग्य, स्तुत्य, पोषक और गौओं से युक्त तेजवान धन की स्तुति करते है ॥५। हे इन्द्र ! मैं तुमसे बलयुक्त अन्न मांगता हूँ । जिस अन्न रूप धन से भृगु को शान्ति मिली और कण्व के पुत्र प्रस्कण्व की भी रक्षा हुई। वही धन हम मांगते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! जिस बल से तुमने समुद्र को सम्पन्न करने वाले जलों को रचा वह बल सबको अभीष्ट फल देता है। इनकी महिमा को शत्रु प्राप्त नहीं कर सकते ॥ ७ ॥

५० सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथि । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथः)

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १ ॥
कदु स्तुवन्तु ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥ २ ॥

जो मृत्युधर्मा मनुष्यों का आकार धारण करने वाले, नित्य नवीन और बलवान् हैं, उनकी स्तुति करो । उनकी महिमा का पूर्ण वर्णन न कर सको तो थोड़ा गान करने पर भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! कौन सा ऋषि तुम्हारे संबंध में तर्क करता है, किस कारण तुम सोम वाले स्तोता के बुलाने पर आते हो और सत्य की कामना वाले देवगण किस कारण तुम्हारी स्तुति करते हैं ? ॥ २ ॥

५१ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः; पुष्टिगुः । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथः)

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥
शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥
प्र सु श्रुत सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्य वसु सहस्रेणेव महते ॥ ३ ॥
शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ ४ ॥

हे स्तोताओ ! उन इन्द्र को मुझे प्राप्त कराने के प्रयत्न रूप स्तोत्र को करो। वे इन्द्र विशाल सहस्र संख्यक धन और अन्न के प्रदान करने वाले हैं ॥ १ ॥ जो हविदाता यजमान अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर उन्हें मारते हैं, उन यजमानों के लिए पर्वत से जल निकलने के समान इन्द्र का स्वर्ग रूप धन बरसता है ॥ २ ॥ अभिषव वाले स्तोता को जो इन्द्र सहस्र संख्यक धन प्रदान करते हैं, हे स्तोता ! तुम उन्हीं इन्द्र का भले प्रकार से पूजन करो ॥ ३ ॥ इन्द्र के आयुधों से पापी मनुष्य पार नहीं पा सकते क्योंकि वे आयुध सैकड़ों सेनाओं के समान शक्ति रखते हैं । जैसे भोग देने वाला पर्वत अपने पदार्थों से धनवान बनाता है, वैसे संस्कारित सोम से इन्द्र शक्ति से भर जाते हैं तो यजमान को इन्द्र धनवान बना देते हैं ॥ ४ ॥

५२ सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती)

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २ ॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! संस्कार करने पर जल के समान द्रव हुए सोम हमारे पास हैं, हम तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! सोम निष्पन्न करने के

पश्चात् ऋत्विग्गण तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम इस सोम को पीने के लिए वृषभ के समान प्यासे होकर यहाँ कब आओगे ? ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम सशक्त व्यक्ति को भी चीर देते हो और धन पर अधिकार कर लेते हो। हम तुमसे गवादि से सम्पन्न धन माँगते हैं ॥ ३ ॥

५३ सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती)

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ॥ १ ॥
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ २ ॥
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ३ ॥

यह सुन्दर चिबुक वाले इन्द्र हवि से प्रसन्न होकर शत्रुओं के नगरों को ध्वस्त करते हैं। इसे कौन जानता है कि सोम के संस्कारित होने पर यह कौन-सा अन्न धारण करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम रथ में बैठकर हर्षयुक्त मृग के समान अनेक स्थानों में जाते हो। तुम्हारे गमन को कोई नहीं रोक सकता। तुम अपने बल से ही महान् हो। सोम का संस्कार होने पर तुम यहाँ आओ ॥ २ ॥ जो शत्रुओं द्वारा हिंसित नहीं होते, वे युद्ध क्षेत्र में डटे रहते हैं। जैसे पति-पत्नि के पास जाता है, वैसे ही इन्द्र हमारे आह्वान को सुनें तो अवश्य आवें ३ ॥

५४ सूक्त

(ऋषि—रेभः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती; बृहती)

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥ १ ॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥२॥
नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥३॥

सब सेनाओं ने शत्रुओं को मूर्छित करने वाले इंद्र का वरण किया । वे इन्द्र अत्यन्त बलवान और उग्र हैं ॥ १ ॥ यह स्तुति करने वाले सोम पीने के लिए इन्द्र की स्तुति कर रहे हैं यह सोम उनकी ओर अपनी रक्षाओं सहित जाता है ॥२॥ इनके वज्र पर दृष्टि पड़ते ही स्तोता उसे प्रणाम करते हैं । हे स्तोताओ ! ऋक्व नामक पितरों सहित इस वज्र की चमक तुम्हारे कानों को व्यथित न करे ॥३॥

५५ सूक्त

(ऋषि—रेभः । देवता—इंद्र । छन्द—जगती; बृहती)

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ।१।
या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥२॥
यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥३॥

धनवान्, वज्रधारी, युद्धों में अग्रसर, उग्र, बलधारक, स्तुत्य इन्द्र को मैं आहूत करता हूँ, वे इन्द्र हमारे धन-मार्गों को सुन्दर बनावें ॥ १ ॥ हे इंद्र ! तुम स्वर्ग के अधिपति हो । राक्षसों के लिए तुम जिन बाहुओं को उठाते हो, उन बाहुओं द्वारा यजमान के स्तोता की वृद्धि करो और तुममें परायण ऋत्विज को भी बढ़ाओ ॥ २ ॥ हे इंद्र ! तुम जिस गौ, अश्व आदि को पुष्ट करते हो, उसे सोमाभिषव वाले दक्षिणादाता यजमान को दो, पणि जैसे असुरों को न दो ॥३॥

५६ सूक्त

(ऋषि—गोतमः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्ति)

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादविः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्मां इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥ ४ ॥
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥ ५ ॥
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥ ६ ॥

वृत्रहन इन्द्र को बल और हर्ष के निमित्त प्रवृद्ध किया जाता है। उन्हें हम बड़े छोटे युद्धों में आहूत करते हैं, वे उस अवसर पर हममें व्याप्त हो जांय। १। हे वीर ! तुम शत्रुओं के खण्डनकर्त्ता, दुष्टों को दण्ड देने वाले और अभिपवकर्त्ता को परम ऐश्वर्य प्रदाता हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! युद्ध के अवसर पर धर्षक पुरुष में धन के व्याप्त होने पर तुम अपने हर्यश्वों द्वारा किसे मारोगे ? किसमें धन को प्रतिष्ठित करोगे ? उस समय तुम अपने धन को हममें प्रतिष्ठित करना ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा यज्ञ सुगमता से सम्पन्न होने वाला है, तुम प्रसन्न होकर हमें गौऐं प्रदान करते हो। तुम धन को तीक्ष्ण करके हमें दो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम वीर हो, सोम के संस्कारित होने पर हर्ष में भरो और बल को धारण करो। हम तुम्हें असीमित बल वाला जानते हैं तुम हम कामनाओं वालों के रक्षक होओ ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! यह प्राणी तुम्हारे

वीर्य का पोषण करते हैं । तुम हवि न देने वाले और निन्दकों के धन को लेकर हमें दो ।। ६ ।।

५७ सूक्त

(ऋषिः—मधुच्छन्दाः प्रभृति । देवता— इन्द्रः । छन्दः—बृहती)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः ॥२॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥३॥
शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥४॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ॥५॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत् ते शुष्मं तिरामसि॥६॥
अर्वावतो न आ गह्यथा शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ७ ॥
इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ।८।
इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ॥९॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून् विचर्षणिः ।१०।

जैसे गौ को दुहने के लिए दूध दोहनकर्त्ता को बुलाते हैं वैसे ही हम प्रत्येक अवसर पर रक्षा के लिए इन्द्र को बुलाते हैं ।। १ ।। इन्द्र सदा हर्षित रहते हैं; वे धनवान हैं, गौएं प्रदान करने वाले हैं । हे इन्द्र ! हमारे सोम सवन में आकर सोम पियो ।।२।। हे इन्द्र ! हम तुम्हारी सुबुद्धियों के ज्ञाता हैं, तुम हमारी निन्दा मत कराओ । हमारे यहाँ आगमन करो ।। ३ ।। हे इन्द्र ! तुम सैकड़ों कर्म वाले हो । तुम हमारी रक्षा के लिए इस बल देने वाले सोम को पिओ ।। ४ ।। हे इन्द्र ! तुम बहु कर्मा हो । मैं तुम्हारी उन इन्द्रियों का वरण करता हूँ जो देवता पितर आदि में हैं ।।५।। हे इन्द्र ! तुम्हारा अपरिमित अन्न हमें मिले । तुम हममें दमकते हुए धन को, जो शत्रुओं से पार लगा सके, हममें प्रतिष्ठित करो । हम इस स्तोत्र से इस सोम को बढ़ाते हुए

तुम्हें बल से सम्पन्न करते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम दूर या समीप जहाँ कहीं हो, वहीं से हमारे पास आओ । हे वज्रिन् ! अपने उत्कृष्ट लोक से भी सोम पीने के लिए इस पूजन गृह में आगमन करो ॥ ७ ॥ हे ऋत्विज ! वह इन्द्र भयानक भय को भी दूर करने वाले हैं, उन इन्द्र को कोई हटा नहीं सकता, वे सर्वद्रष्टा हैं ॥ ८ ॥ यदि इन्द्र हमारी रक्षा करें तो हमारे दुःखों का नाश होकर सुख प्रत्यक्ष हो । वे सदा मंगल करने वाले हैं ॥ ९ ॥ वे इन्द्र ! सब दिशाओं में व्याप्त हमारे शत्रुओं को देखते हैं । वे सब दिशाओं और उप-दिशाओं से प्राप्त होने वाले भयों को हमसे पृथक् करें ॥ १० ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ॥ ११ ॥
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ १२ ॥
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ १३ ॥
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते । १४ ॥
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ १५ ॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ १६ ॥

इसे कौन जानता है कि सोमाभिषव पर यह कौन-से अन्न को धारण करते हैं यह हवि रूप अन्न से हृष्ट हुए इन्द्र शत्रुओं के नगरों को अपनी शक्ति से तोड़ते हैं ॥ ११ ॥ तुम रथ पर आरूढ़ होकर हर्षयुक्त मृग के समान अनेक स्थानों पर जाते हो । सोमाभिषव काल में तुम्हें कोई रोक नहीं सकता । तुम अपने ही बल से महान् होकर घूमते हो । इसलिए सोम के संस्कारित होने पर यहाँ आओ ॥ १२ ॥ जो शत्रुओं से बली होने के कारण रण के लिए

उद्यत होने पर भी हिंसित नहीं होते। जैसे पत्नी के पास पति जाता है, वैसे ही यह इन्द्र स्तोता के द्वारा बुलाए जाने पर आते हैं ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! संस्कारित होने के कारण जल के समान द्रव हुए सोम से युक्त हम ऋत्विज तुम्हारा स्तोत्र करते हुए बैठे हैं ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! सोम के निष्पन्न हो जाने पर उक्थ गायक ऋत्विज तुम्हें आहूत करते हैं। तुम वृषभ के समान प्यास में भर कर कब हमारे सोम को पीने के लिए पधारोगे ॥ १५ ॥ हे इन्द्र ! तुम धनों को अपने आधीन करने वाले हो। सहस्रों साधनों से युक्त व्यक्ति को भी मर्दित करते हो। हम तुमसे गौओं से सम्पन्न धन को माँगते हैं ॥ १६ ॥

५८ सूक्त

(ऋषि—नृमेधः; भरद्वाजः। देवता—इन्द्रः सूर्यः। छन्द—प्रगाथः)

आयन्तइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ १ ॥
अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ २ ॥
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥ ३ ॥
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ ४ ॥

जैसे रश्मियाँ नित्य प्रति सूर्य के साथ रहती हैं, वैसे ही जलों के स्वामी इन्द्र के साथ रहती हैं। उन इन्द्र के जल रूप धनों को हम वितरण करने की कामना करते हैं। जैसे इन्द्र तीनों काल के धनों को बाँटते हैं, वैसे ही हम उस धन के भाग पर ध्यान देते हैं ॥ १ ॥ हे स्तुति करने वालो ! तुम धनदाता इन्द्र का हृदय से आश्रय लो। इन्द्र का दान मंगलमय है इसलिए उनकी स्तुति करो। वह अपने उपासक की कामना का नाश नहीं करते। इस प्रकार स्तुति करके माँगने वाला पुरुष दान के निमित्त इन्द्र के मन को आनन्दित करता है ॥ २ ॥ हे सूर्य रूप इन्द्र ! हे आदित्य ! तुम महान् हो,

यह बात यथार्थ है। तुम सत्य रूप वाले हो। तुम्हारी महिमा भी प्रशंसित है। अतः तुम महिमावान् हो, यह यथार्थ ही है।। ३ ।। हे सूर्य ! तुम स्वयं महान् हो, हवि रूप अन्न से भी महिमा में प्रवृद्ध हो। तुम अपनी महिमा द्वारा ही राक्षसों से संघर्ष करते हो तुम व्यापक ज्योति रूप एवं अहिंसित हो ॥ ४ ॥

५९ सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथिः; वसिष्ठः। देवता—इन्द्रः। छन्द—प्रगाथ)

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव ॥ १ ॥
कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद्धीतमानशुः।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥
उदिन्न्वस्य रिच्यऽतेंशो धनं न जिग्युषः।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति त रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ ३ ॥
मन्त्रमखर्वं सुधित सुपेशस दधात यज्ञियेष्वा।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ ४ ॥

यह स्तोत्र और गायन योग्य वाणियाँ योग्य उत्पन्न हो रही हैं। यह धन प्रदायिनी वाणी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करती है। यह अन्न देने वाली वाणी सदा रक्षा करती है। जैसे रथ अपने स्वामी को गन्तव्य स्थान पर पहुँचाने के लिए गमन करता है, वैसे ही यह वाणियाँ इन्द्र को संतुष्ट करने के लिए चलती हैं ।।१।। जैसे त्रैलोक्याधिपति इन्द्र के लिए कण्वों की स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं, जैसे धाता, अर्यमा आदि सूर्य अपने प्रेरक इन्द्र में मिलते हैं, जैसे भृगुवंशी ऋषि इन्द्र का आश्रय लेते हैं, वैसे ही प्रिय बुद्धि वाले मनुष्य इन्द्र का ही स्तव करते हैं ॥ २ ॥ इन इन्द्र का यज्ञ भाग जीते हुए धन के समान होता है। जो इन्द्र हर्यश्व वाले हैं, उन्हें पाप हिंसित नहीं कर सकते। सोम प्रदान करने वाले यजमान में यह इन्द्र बल स्थापित करते हैं ॥ ३ ॥ हे स्तोताओ ! सुन्दर तेज और रूप प्रदान करने वाले यज्ञिय मन्त्रों का उच्चारण

करो । जो इन्द्र की सेवा करने वाला पुरुष है, वह पूर्व बंधनों से मुक्ति को प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

६० सूक्त

(ऋषि–सुतकक्षः सुकक्षो वा; मधुच्छन्दाः । देवता–इन्द्र । छन्द–गायत्री)

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
एवा ते राध्यं मन. ॥ १ ॥
एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभि ।
अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २ ॥
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही ।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित् संन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या ।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम वीर हो, स्थिर हो तथा दुष्कर्म करने वाले वीरों के रोकने वाले हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपरिमित धन वाले हो । तुम मेरे सहायक होओ । अपनी पोषण-शक्तियों से हम यजमानों में दान शक्ति की स्थापना करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्नों के ईश्वर हो । ब्रह्मा के समान तन्द्रा युक्त मत होओ । तुम बुद्धि देने वाले संस्कारित सोम के द्वारा अत्यन्त आनन्द में भरो ॥३ । इन्द्र की भूमि गौओं के देने वाली है, वह हविदाता यजमान को पकी हुई शाखा के समान हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हविदाता यजमान की रक्षा के लिए तुम्हारे रक्षा-साधन शीघ्र ही प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ इन्द्र को सोम-पान कराते समय स्तोम, उक्थ और शंसा नामक स्तुतियाँ रमणीय होती हैं ॥ ६ ॥

६१ सूक्त

(ऋषिः—गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्रः । छन्दः—उष्णिक्)

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥
येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥
तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ४ ॥
यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।
गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ५ ॥
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ६ ॥

हे वज्रिन् ! शत्रुओं को पराजित करने वाले, अश्वों की, श्री से युक्त और अभीष्टों के वर्षक तुम्हारे हर्ष की हम पूजा करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! आयु और मनु को तुमने जिस सोम के प्रभाव से तेज प्राप्त कराया था, उसी सोम से पुष्ट हुये तुम इस यजमान के कुशा वाले आसन पर प्रतिष्ठित हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! यह उक्थ गायक तुम्हारी महिमा का गान कर रहे हैं। तुम प्रत्येक अवसर पर धर्म कार्य करते हुये विजय प्राप्त करो ॥ ३ ॥ वे इन्द्र बहुतों द्वारा स्तुत हैं, बहुतों ने उनका आह्वान किया था, तुम उन्हीं इन्द्र का यश गाओ और स्तुति रूप वाणी से उन्हें प्रतिष्ठित करो ॥ ४ ॥ जिन इन्द्र के धर्म-आश्रय के कारण द्यावा पृथिवी उनके महान् बल, जल, पर्वत और वज्र को धारण करते हैं उन्हीं इन्द्र की पूजा करो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम विजय युक्त यश के कारण तेजस्वी हो और अकेले ही शत्रुओं का नाश करते हो ॥ ६ ॥

६२ सूक्त

(ऋषि–सोभरिः प्रभृति । देवता–इन्द्रः । छन्द–बृहती, उष्णिक्)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवयस्वः ।
वाजे चित्र हवामहे ॥ १ ॥
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्धयवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ५ ॥
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ ६ ॥
विभ्राजं ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ७ ॥
तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ८ ॥
यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।
गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ९ ॥
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम सदा नवीन रहते हो । अन्न प्राप्ति के अवसर पर हम रक्षा की कामना वाले ही तुम्हें आहूत करते हैं । विजय प्राप्त कराने को

हमारी ओर ही आओ, विपक्षियों की ओर मत जाओ। जैसे परम गुणी राजा को विजयाकांक्षा से बुलाते हैं, वैसे ही हम तुम्हें बुलाते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! कर्म के अवसर हम तुम्हारा ही आश्रय लेते हैं। तुम शत्रुओं को वश में करने वाले, नित्य युवा एवं अत्यन्त बली हो, तुम हमें सहायक के रूप में प्राप्त होओ। हम अपनी रक्षा के लिये तुम सखा रूप का ही वरण करते हैं ॥ २ ॥ हे यजमानो ! तुम्हारी रक्षा के लिये इन्द्र का आह्वान करता हूँ। जो इन्द्र हमको पहले गो आदि के रूप में धन प्रदान कर चुके हैं, वे अभीष्ट फल देने में सदा समर्थ हैं। मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ ॥ ३ ॥ जो इन्द्र मनुष्यों के रक्षक हैं, जिनके हरित् वर्ण के अश्व हैं जो सबके नियामक हैं, जो स्तुतियों से प्रसन्न होते हैं, मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ। वह इन्द्र हम स्तोताओं को गौऐं और अश्व दें ॥ ४ ॥ हे स्तुति करने वालो ! तुम विद्वान् एवं धर्मात्मा हो। उन महान् इन्द्र की साम-गान द्वारा स्तुति करो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुमने ही सूर्य को आकाश में प्रकाशित किया, तुम शत्रुओं के तिरस्कारक विश्वेदेवा और महान् विश्वकर्मा हो ॥६॥ हे इन्द्र ! देवता तुम्हारे मित्र भाव को प्राप्त हैं। स्वर्ग में दमकते हुये सूर्य तुम्हारे द्वारा ही ज्योतिर्मान हैं ॥ ७ ॥ हे स्तोताओ ! वह इन्द्र अनेकों द्वारा आहूत किये जा चुके हैं। अनेकों ने उनकी स्तुतियाँ की हैं। तुम भी उन्हीं पराक्रमी इन्द्र को स्तुतियों से सुशोभित करो ॥ ८ ॥ जिन इन्द्र की महिमा से आकाश-पृथिवी, जल, पर्वत, वज्र और वन तथा स्वर्ग को भी धारण करते हैं, उन्हीं इन्द्र का पूजन करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम विजयात्मक यश के लिये तेजस्वी हुये हो। तुम शत्रुओं को अकेले ही नष्ट कर देते हो ॥ १० ॥

६३ सूक्त

(ऋषि—भुवनः साधनो वा; भरद्वाजः; गोतमः; (पर्वतः)। देवता—इन्द्र।
छन्द—त्रिष्टुप्; उष्णिक्)

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।
यज्ञं च न नस्तन्वं च प्रजां च दित्यै रिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ १ ॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥ २ ॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ३ ॥
य एक यद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ४ ॥
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५ ॥
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अंग ॥ ६ ॥
य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हंसि न्यत्त्रिणं तमीमहे ॥ ७ ॥
येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् ।
येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ ८ ॥
येन सिन्धुं महीरपो रथाँइव प्रचोदयः ।
पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ९ ॥

यह इन्द्र, सब विश्वेदेवा और भुवन सुख प्राप्ति का यत्न करते हैं । वे इन्द्र आदित्यों के सहित हमारे यज्ञ, देह और प्रजा को सामर्थ्य प्रदान करें ॥१॥ देवत्व की रक्षा के लिये जिन देवताओं ने राक्षसों का संहार किया था, वे आदित्यवान और मरुत्वान इन्द्र हमारे देह की रक्षा करने वाले हों ॥ २ ॥ जो अपनी शक्ति से सूर्य को प्रत्यक्ष कर सके, जिन्होंने पृथिवी को अन्नवती किया, उन्हीं से हम देवताओं का हितकारी अन्न प्राप्त करें और वीरों से युक्त रहते हुये शतायुष्य हों ॥३॥ इन्द्र हविदाता यजमान को धन प्रदान करते हैं, इस कार्य में उनके समान अन्य कोई नहीं है ॥ ४ ॥ वे इन्द्र अयाज्ञिक को अपने पद-प्रहार द्वारा कब ताड़ना देंगे और हम स्तुति करने वालों की

प्रार्थनाओं को कब सुनेंगे ? ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! जो सोमवान पुरुष अनेक स्तुतियों से तुम्हारी प्रार्थना करता है, वह पुरुष प्रचण्ड बल और ऐश्वर्य से सम्पन्न होता है ॥ ६ ॥ जो इन्द्र सोम के अत्यन्त पान करने वाले हैं और जिनमें बलप्रद हर्ष उत्पन्न होता है ऐसे हे इन्द्र ! अपने जिस बल से तुम असुरों का नाश करते हो, उसी बल को हम माँगते हैं ॥ ७ ॥ जिस बल से तुमने दशाश्व, अध्रिगु और स्वर्णर की रक्षा की थी, तथा जिस बल से तुमने समुद्र को पुष्ट किया था, उसी बल को हम तुमसे माँगते हैं ॥ ८ ॥ जिस बल से तुमने रथ के समान, जलों को समुद्र की ओर गमनशील बनाया, उस बल को, हम अमृत के मार्ग में अग्रसर होने के लिये माँगते हैं । ९ ॥

६४ सूक्त

(ऋषि—नृमेधः, विश्वमनाः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः ।
गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः । २ ॥
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥
एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ४ ॥
इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥ ५ ॥
तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ॥
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥

हे इन्द्र ! तुम सत्य के द्वारा विजय प्राप्त करते हो, तुम हमारे प्रिय हो, तुम्हें कोई ढक नहीं सकता । तुम स्वर्ग के अधिपति और स्वर्ग के

समान विस्तारयुक्त हो । तुम हमें अपने प्रिय के रूप में स्वीकार करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम सामने आकर सोम पीने वाले हो । तुम आकाशपृथिवी दोनों में ही आविर्भूत होते हो । तुम स्वर्ग के अधीश्वर और सोमाभिषव वाले की वृद्धि करने वाले हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम असुरों को मारने वाले और उनके दृढ़ पुरों को नष्ट करने वाले हो । तुम स्वर्ग के अधिपति और मनुष्यों की वृद्धि करने वाले हो ॥ ३ ॥ हे अध्वर्युओ ! मधु से भी मधुर अन्न से इन्द्र को तृप्त करो । यह इन्द्र यजमान की सदा वृद्धि करते हुये स्तुतियों को प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने हर्यश्वों पर आरूढ़ होते हो । तुम्हारे पूर्व कर्म वाले बनों और कल्याणों की समानता कोई नहीं कर सकता तथा तुम्हारी स्तुतियों को भी कोई नहीं पा सकता ॥ ५ ॥ हम अन्न की कामना वाले हैं अन्न के अधीश्वर इन्द्र को हम आहूत करते हैं । विधि पूर्वक किये जाने वाले यज्ञानुष्ठानों से यह इन्द्र बारम्बार वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥६॥

६५ सूक्त

(ऋषि—विश्वमनाः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १ ॥
अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः ।
घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २ ॥
यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे ।
ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ ३ ॥

यह इन्द्र स्तुति के योग्य हैं. उनके इधर आने के लिये हम सखा रूप इन्द्र की स्तुति करते हैं । यह इन्द्र सभी कर्मों के फलों को प्रेरित करने वाले हैं ॥ १ ॥ हे स्तोताओ ! इन तेजस्वी, दर्शनीय, वाणी रूप अन्न वाले गौओं को न रोकने वाले इन्द्र को मधु घृत से भी मधुर वाणी का उच्चारण करो ॥ २ ॥ कार्य साधन के लिये यह इन्द्र अपरिमित बल वाले हैं और दीप्तमती दक्षिणा के रूप हैं ॥ ३ ॥

६६ सूक्त

(ऋषि—विश्वमनाः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मि वाजिनं यमम् ।
अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ १ ॥
एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।
सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २ ॥
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३ ॥

हे ऋत्विज ! जो इन्द्र अपने अश्वों को खोलकर अविचलित भाव से यज्ञ में बैठे हैं, उन्हीं प्रशंसनीय इन्द्र की यजमान के मंगल के लिये स्तुति करो ॥ १ ॥ वे इन्द्र सदा नवीन, महान मेधावी हैं, तुम उन्हीं इन्द्र की पूजा करो । २ ॥ हे वज्रिन् ! जैसे आदित्य अपने परिपदों के जानने वाले हैं, वैसे ही तुम संतप्त करने वाले सशक्त असुरों के ज्ञाता हो ॥ ३ ॥

६७ सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि—परुच्छेपः, गृत्समदः । देवता—इन्द्रः मरुतः, अग्निः, । छंद—अष्टि जगती)

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा
यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ १ ॥
मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि
मोत जारिषुरस्मत् पुरोत जारिषुः ।
यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ २ ॥
अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो
जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।

य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ३ ॥
यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥४॥
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृप्णुहि ।५॥
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ॥६॥
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः।७।

सोमाभिषवकर्त्ता अपने शत्रुओं का और देवताओं के शत्रुओं का पराभव करता है, वह बहुत से घरों को प्राप्त करता हुआ विविध पदार्थों के दान की इच्छा करता है, वह शत्रुओं से घिरा हुआ न रहकर अन्नवान होता है। उसे इन्द्र समस्त पार्थिव धनों को प्रदान करते हैं ।। २ ।। हे मरुतो ! तुम्हारा सन्ताप देने वाला तेज हमारे सामने आकर हमें जीर्ण न करे । तुम्हारा जो नवीन, चयनयोग्य अविनाशी बल है, उस शत्रुओं को दुःसाध्य-बल को हम में प्रतिष्ठित करो ।। २ । अग्निदेव धनप्रदाता, देव-होता, उत्पन्न हुओं के ज्ञाता और यज्ञ के अनुष्ठाता हैं । यह अपनी ज्वालाओं से यज्ञ को सुसज्जित करते हैं । तथा होमे हुए घृत की बूंदों और उनकी दीप्ति की इच्छा करते हैं । ३ ॥ हे मरुतो ! तुम स्वर्ग के नेता हो । फल देने के समय तुम अपनी पृषती नामक अश्विनियों द्वारा यज्ञ में आगमन करते हो । तुम इन कुशाओं पर विराजमान होकर सोम पिओ ।। ४ ।। हे अग्ने ! देवताओं को इस यज्ञ लाकर उनका पूजन करो । तुम होता रूप से तीनों स्थानों में विराज कर हविर्भाग पहुँचा कर स्वयं भी हवि ग्रहण करो और मधुर सोम को पीकर तृप्त होओ ।। ५ ।। हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे देह के बल की वृद्धि करने वाला है, अन्यों को वश करने के लिये तुम्हारी बाहुओं में बल और ओज संयुक्त है । हे इन्द्र !

यह सोम अभिषुत होकर तुम्हारे लिये पात्र में रखा है तुम ब्राह्मण के तृप्त होने तक इसे पियो ॥ ६ ॥ मैं पहले के समान ही इन्द्र का आह्वान करता हूँ। यह हवि ऐश्वर्यवान बनाने वाला है। हे इन्द्र ! अध्वर्युओं द्वारा प्रदत्त इस सोम रूप मधु को पिओ ॥ ७ ॥

६८ सूक्त

(ऋषि—मधुच्छन्दाः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद् रेवतो मदः ॥२॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि ॥३॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥४॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥५॥
उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
एमाशुमाशवे यज्ञश्रियं नृमादनम्। पतयन्मन्दयत् सखम् ॥७॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः। प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥८॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो। धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा। तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत। सखाय स्तोमवाहसः ॥ ११ ॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ १२ ॥

सरलता से दूध दुहने के लिये दोहनकर्त्ता को जैसे बुलाते हैं, वैसे ही रक्षा का अवसर आने पर हम हर बार इन्द्र को ही आहूत करते हैं। १। इन्द्र ऐश्वर्यवान हैं, वे सदा हर्षित रहते हैं और गौएँ प्रदान करते हैं। हे इन्द्र ! इन सोम सवनों में आकर सोम पिओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे पास जो सुबुद्धियाँ हैं, उन्हें हम जानते हैं। तुम हमारी निन्दा होने से रोको और हमारे यहाँ आगमन करो ॥ ३ ॥ हे स्तोताओ ! इन्द्र को कोई हिंसित नहीं कर सकता, वह इन्द्र मित्रों का मंगल करते हैं, उन्हीं का

आश्रय लो ॥ ४ ॥ हे स्तोताओ ! तुम इन्द्र का आश्रय लो जिससे हमारी निन्दा करने वाले निन्दा न करें ॥ ५ ॥ हम इतने यशस्वी हों कि हमारे यश को शत्रु भी गावें, इन्द्र द्वारा सुख देने पर हम सुन्दर कृपियों से सम्पन्न हों ॥ ६ ॥ हे स्तोता ! यह इन्द्र मनुष्यों को मुदित करते, सखाओं को प्रसन्न करते और यज्ञ की शोभा रूप हैं, इन इन्द्र का अश्व के ऊपर भरण कर ॥ ७ ॥ हे इन्द्र तुम सोम पान करके वृत्र के लिये घन रूप होओ और रणक्षेत्र में हमारे अश्व के रक्षक होओ ॥ ८ ॥ हे इन्द्र तुम सैकड़ों कर्म करने वाले हो । हम हवियों द्वारा तुम्हें आहूत करते हैं । हे इन्द्र ! धन प्राप्ति के निमित्त हम तुम्हें अपने यज्ञ में बुलाते हैं ॥ ९ ॥ इन्द्र धन के पालन करने वाले एवं रक्षक हैं, वे सोम का संस्कार करने वाले के लिये सखा रूप हैं । हे स्तोताओ ! तुम उनकी स्तुति करो ॥ १० ॥ हे मित्र रूप स्तोताओ ! तुम यहाँ आकर विराजमान होओ और इन्द्र का गुण गाओ ॥ ११ ॥ हे स्तोताओ ! वरण करने वालों के ईश्वर—वे इन्द्र अत्यन्त विशाल हैं, उनको सोमाभिषव होने पर बुलाओ ॥ १२ ॥

६९ सूक्त

(ऋषि—मधुच्छन्दः । देवता—इन्द्रः; मरुत । छन्द—गायत्री)

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् ।
गमद् वाजेभिरा स नः ॥ १ ॥
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ २ ॥
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये सोमासो दध्याशिरः ॥ ३ ॥
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ४ ॥
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥५॥
त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ६ ॥
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन् विश्वानि पौंस्या॥७
मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ॥८॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ९ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥१०॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥११॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम् ।१२॥

इन्द्र चिन्ता के अवसर पर हमारे सामने आविर्भूत होते हैं वे हमारे पास अश्वों सहित आगमन करें ॥ १ ॥ जिन इन्द्र के युद्ध रत होने पर इनके अश्वों को शत्रु नहीं घेरते, हे स्तोताओ ! उन इन्द्र की स्तुति करो ॥ २ ॥ दधियुक्त सोम पवित्र है। यह सोमपायी इन्द्र के सेवन के लिए अग्रसर हो रहे हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम सोम को पीने के लिये शीघ्र हो अपने देह का विस्तार करते हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! स्फूर्तिदायक सोम तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट हो और वे तुम्हें तृप्त करें ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हें स्तोम, उक्थ्य और हमारी वाणी रूप स्तुतियाँ प्रवृद्ध करें ॥ ६ ॥ जिन इन्द्र में सहस्रों पराक्रम व्याप्त हैं, वे इन्द्र यज्ञ कर्म की रक्षा करने वाले हैं। हम उन्हीं की सेवा करें ७ ॥ हे इन्द्र ! शत्रु हमारे देह के प्रति हिंसा-भावना न रखें। तुम हमारे वध रूप कारण को दूर हटाओ। तुम हमारे स्वामी हो ॥ ८ ॥ इन्द्र के रथ में हर्यश्व जोड़े जाते हैं, वह आकाश में दमकते हुए स्थावर जङ्गम प्राणियों को लाँघते हैं ॥९॥ इन्द्र के रथ में हर्यश्वों को सारथी जोड़ते हैं। वह रथ के दोनों ओर रहने वाले अश्व कामना करने योग्य, सवारी करने के योग्य हैं और सबको वश में करते हैं ॥ १० ॥ हे मृत-धर्मा मनुष्यो ! अज्ञानी को ज्ञान देने और अन्धेरे में छिपे रूप रहित पदार्थ को रूप देने वाले सूर्य रूप इन्द्र अपनी रश्मियों सहित उदित हो गये हैं। इनके दर्शन करो ॥ ११ ॥ यह मरुद्गण हवि देने वाले गर्भत्व को प्राप्त होते हुये यज्ञिय नाम से प्रसिद्ध होते हैं ॥ १२ ॥

७० सूक्त

(ऋषिः—मधुच्छन्दाः। देवता—इन्द्रः मरुतः। छन्दः—गायत्री)

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु ॥१॥
देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः। महामनूषत श्रुतम् ॥२॥

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ ३ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ४ ॥
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥५॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ॥६॥
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ७ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥८॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥९॥
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुमने उषा के पश्चात् ही अपनी ज्योतिमती शक्तियों द्वारा गुफा में छिपे धन को पाया । १ ॥ हे स्तुतियो ! हम देवताओं की इच्छा वाले स्तोता, उन इन्द्र के सामने अपनी सुबुद्धि को प्रस्तुत करें, इस प्रकार उन महिमावान् इन्द्र की स्तुति करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम सदा ही निर्भीक मरुतों के साथ देखे जाते हो । तुम मरुतों के साथ नित्य ही प्रसन्न रहते हो । तुम्हारा और उनका तेज भी एक सा ही है ॥ ३ ॥ इन्द्र की कामना करने वालों से यज्ञ सुशोभित होता है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम ज्योतिर्मान स्वर्ग से आओ । हमारी वाणी रूप स्तुतियाँ इन्द्र में ही जुड़ती हैं ॥ ५ ॥ इन्द्र पृथिवी पर हों, महर्लोक में हों अथवा स्वर्ग में हो, जहाँ कहीं भी हों वहीं से उन्हें बुलाना चाहते हैं ॥ ६ ॥ पूजक यजमान इन्द्र को पूजते हैं, स्तोता इन्द्र के ही यश का गान करते हैं ॥ ७ ॥ इन्द्र के साथ रहने वाले अश्व मन्त्रों द्वारा रथ में जोड़े जाते हैं वे मनुष्यों के हितैषी इन्द्र वज्र धारण करते हैं ॥ ८ ॥ इन्द्र ने ही सूर्य को दीर्घ दर्शन के निमित्त स्वर्ग में आरूढ़ किया और इन्द्र ने ही सूर्य रूप से अपनी रश्मियों द्वारा मेघ का भेदन किया ॥९॥ हे इन्द्र ! श्रेष्ठ धन प्राप्त कराने वाले युद्धों में अपने असीमित रक्षा-साधनों से रक्षा करो ॥ १० ॥

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥११॥
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुत ॥१२॥

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा। ईशानो अप्रतिष्कुतः। ॥ १४ ॥
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति। इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ १५ ॥
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः ॥ १६ ॥
एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्। वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १७ ॥
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै। त्वोतासो न्यर्वता ॥ १८ ॥
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि। जयेम सं युधि स्पृधः ॥१६॥
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्। सासह्याम पृतन्यतः ॥ २० ॥

यह इन्द्र वृत्र पर वज्र प्रहार करते हैं। अधिक या थोड़ा धन पाने पर भी हम इन्द्र को ही आहूत करते हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्र! तुम सत्य धन के दाता हो और फलों के वर्षक। तुम किसी के हटाये भी नहीं हटते। इस चरु का भक्षण करो और हमारी वृद्धि करो ॥ १२ ॥ मैं धन प्राप्ति के हर अवसर पर तथा बराबर मिलते रहने वाले धन से सन्तुष्ट रहता हुआ इन्द्र के जिन स्तोत्रों को ध्यान में लाता हूँ, उनमें इन्द्र की महिमा के छोर को नहीं पाता ॥ १३ ॥ हे इन्द्र! तुम कृपियों को सम्पन्न करने वाली शक्ति से फलों को भेजते हो। तुम ईशान हो। तुम्हारा तिरस्कार कोई नहीं कर सकता ॥ १४ ॥ इन्द्र पंच क्षितियों के ईश्वर तथा मनुष्यों और ऐश्वर्यों के भी ईश्वर हैं ॥ १५ ॥ इन्द्र का ध्यान यदि अन्य प्राणियों की ओर हो तो भी हमें उन्हें आहूत करते हैं। वे इन्द्र हमारे ही हों ॥१६॥ हे इन्द्र! तुम सदासह, प्रीतिकर, धनरूप, और फलवर्षक बल को हमारी रक्षा करने के लिए धारण करो ॥ १७ ॥ हम तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर अश्वों से सम्पन्न हों और वृत्राकार शत्रुओं को नष्ट कर डालें ॥१८॥ हे इन्द्र! तुम्हारे द्वारा रक्षित हम तुम्हारे वज्र को विकराल रूप से ग्रहण करते हुए, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥ १६ ॥ हे इन्द्र! हमारे वीर अहिंसित रहें, उन्हें साथ लेकर हम सेना सहित आक्रमण करने वालों को वश में करें ॥ २० ॥

७१ सूक्त

(ऋषि–मधुच्छन्दाः । देवता–इन्द्रः । छन्द–गायत्री)

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥१॥
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ॥२॥
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्रइव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥ ३ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥७॥
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ ८ ॥
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभि स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥ ९ ॥
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रतित्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥ १० ॥

इन्द्र श्रेष्ठ और महान् हैं, वे महिमावान हों। उनका पराक्रम आकाश के समान विशाल हो ॥ १ ॥ बुद्धि की कामना वाले विद्वान् मनुष्य पुत्र के साथ भी युद्ध में लग जाते हैं ॥ २ ॥ सोमपायी इन्द्र की कुक्षि ककुदयुक्त बैल तथा गहन जल वाले समुद्र के समान वृद्धि को प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ इन्द्र की गौ देने वाली पृथिवी हवि देने वाले को वृक्ष की पकी हुई शाखा के समान है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हविदाता यजमान के निमित्त तुम्हारे रक्षा-साधन सदा उपलब्ध रहते है ॥ ५ ॥ सोम-पान के समय स्तोम, उक्थ और शस्या इन्द्र के लिए रमण करने योग्य होती हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! यहाँ आओ। सब सोम सवनों में सोम से हर्ष में भरे ओज से तुम्हारा अभीष्ट महान् है ॥ ७ ॥ हे अध्वर्युओ ! तुम उक्थों और चमसों से सोम को मनाओ। सोम अभिषव होने पर इन्द्र को प्रफुल्लित करने वाला है ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम सुन्दर चिबुक वाले हो। तुम सोम सवनों में इन हर्षवर्द्धक सोमों के द्वारा हर्ष को प्राप्त होओ ॥ ९ ॥ जैसे विद्वेषिणी स्त्रियाँ सेंचन समर्थ पति को भी छोड़ देती है, वैसे ही यह स्तुतियाँ क्या तुम्हें भी त्याग देती हैं ? ॥ १० ॥

स चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित् ते विभु प्रभु ॥११॥
अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥१२॥
स गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥१३॥
अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥१४
वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥१५॥
सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥१६॥

हे इन्द्र ! वरण करने योग्य, सुन्दर, सत्तावान धनों को हमारी ओर प्रेरित करो ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमको महान् और यशस्वी होने के ऐश्वर्य का प्रेरण करो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! धेनुओं से युक्त और हवियों से सम्पन्न यश को हमें दो और अक्षुण्ण आयु को भी हमें दो ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! सहस्रों द्वारा सेवन करने योग्य 'श्रव' को तथा रथिनी इषाओं को हमें दो ॥१४॥ हम धनेश्वर, वसुपति, ऋग्मिय और यज्ञ आने वाले इन्द्र के रक्षा-साधनों को पूजते हैं ॥ १५ ॥ महान् इन्द्र के लिए 'न्योकस्' में हर बार सोम अभिषुत होने पर शत्रु भी इन्द्र के बल की सराहना करते हैं ॥ १६ ॥

७२ सूक्त (सातवाँ अनुवाक)

(ऋषि—परुच्छेपः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अष्टि)

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः—
पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयव स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ १ ॥
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य-
निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥२॥
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो-

हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥३॥

हे इन्द्र ! फल वर्षा की याचना वाले, विभिन्न स्वर्गों की कामना वाले, सब सवनों में तुम्हीं से याचना करते हैं । नौका के समान अन्न के पूले से युक्त तुम्हें हम बल-भार में नियुक्त करते है । हम इन्द्र की कामना से स्तोत्र को प्रबोधिती करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! अन्न कामना वाले दम्पति गो-दानके अवसर पर तुम्हारा ध्यान लगाते हैं और फल देने की याचना करते हैं । तुम स्वर्ग गमन करने वाले दो व्यक्तियों के ज्ञाता हो,तुम्हारा वर्षणशील एवं सहायक वज्र प्रकट होता है ॥२॥ सूर्य का ज्ञापन करने वाली उषा की हवि को स्वर्ग प्राप्ति के निमित्त प्रदान करते हैं । हे वर्षणशील इन्द्र ! तुम युद्ध की इच्छा वाले शत्रुओं के संहार करने को वज्र ग्रहण करते हो । तुम मेरे नवीन रचे हुये स्तोत्र का श्रवण करो ॥ ३ ॥

७३ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः, वसुक्र । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती त्रिष्टुप्)

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥१॥

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः । २ ॥

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ ३ ॥
यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥४॥
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रःश्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ५ ॥

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघानं ।
तत्तदिदस्य पौंस्य गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥६॥

हे वीर इन्द्र ! यज्ञ के सभी सवन तुम्हारे लिये हैं । तुम्हारे लिए ही इन मन्त्रों को बढ़ाता हूँ । तुम सबके पोषक एवं आहुति के योग्य हो ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम उग्र हो । तुम्हारे सुन्दर दर्शन, वीर्य, धन और महिमा को अन्य कोई नहीं पा सकता । २॥ हे यजन करने वालो ! तुम हवियों द्वारा इन्द्र को सम्पन्न करो । तुम मनुष्यों को अभीष्ट फलों से सम्पन्न करते हो । मेरे हवि रूप अन्न का सेवन करो ॥ ३ ॥ इन्द्र के हर्यश्व स्वर्णिम वज्र को एवं रथ में लगी लगामों से उसे खेंचते है, तब अत्यन्त तेजस्वी इन्द्र रथ पर आरूढ़ होते हैं ॥४। सोम के अभिषुत होने पर इन्द्र हमारे यज्ञ गृह में आते हैं और वायु जैसे वन को कंपित करता है, वैसे ही मधु को कम्पायमान करते हैं । उस सोम रस से अपनी मूँछों को आर्द्र करने वाले इन्द्र की ही यह वृष्टि है ॥५॥ जो इन्द्र दुष्कर्म करने वालों का वध करते हैं, विकृत वाणी वालों की वाणी को मधुर कर देते है, उनके पिता के समान बल की वृद्धि करने वाले पराक्रमों की हम स्तुति करते हैं ।।७॥

७४ सूक्त

(ऋषि--शुनः शेपः । देवता—इन्द्रः । छन्द--पङ्क्ति)

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ताइव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु तुवीमघ ॥१॥

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ।।२।

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥३॥

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥४॥

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥५॥
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥६॥
सर्वंपरिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्ववेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७॥

हे सोमपायी इन्द्र ! हमारे सहस्रों गौ, घोड़े और शुभ्रियों को अमृतत्व को कहो क्योंकि तुम अमृतत्व को प्राप्त हो ॥ १ ॥ हे धनपति इन्द्र ! तुम शत्रुओं को दंशित करने में समर्थ हो, तुम अपने उस सामर्थ्य को हमारे सहस्रों गौ, अश्व और शुभ्रियों में भरो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! मुझे दोनों नेत्रों द्वारा निद्रित करो । हमारे सहस्रों गवादि में निद्रा प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे बहुधनेन्द्र ! तुम हमारे सहस्रों गौ, अश्व आदि में धन को भरो । हम जागृत रहें और शत्रु निद्रा के वशीभूत हों ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम पाप रूप वृत्ति वाले रासभ को मार डालो । तुम हमारे गवादि में नाशक शक्ति भरो ॥५॥ वायु कुण्डृणाची के द्वारा जङ्गल से दूर प्रस्थान करता है । हे इन्द्र ! हमारे गौ आदि प्राणियों में कुण्डृणाची को कहो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! कृकदाश्व को नष्ट करो, परिक्रोश को हटाओ । हमारे गौ, अश्व आदि प्राणियों में से परिक्रोश को दूर करो ॥७॥

७५ सूक्त

(ऋषि—परुच्छेदः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अत्यष्टिः ।

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः
सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ ॥
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः ।

सासहानो अवातिरः।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः॥ २॥
आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ
सखीयतो यदाविथ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत॥३॥

हे इन्द्र! गोदान के अवसर पर अन्न की कामना वाले दम्पत्ति तुम्हारा ध्यान करते हुये फल देने के लिये तुम्हें आकर्षित करते हैं। तुम स्वर्ग को गमन करने वाले दोनों को जानते हो। उस समय तुम अपने वर्षणशील सहायक वज्र को प्रकट करते हो॥१॥ यह इन्द्र शरद् ऋतु की वस्तुओं में प्रकट होकर बारम्बार शत्रुओं को व्यथित करते हैं। इनके बल को मनुष्य जानते हैं। हे इन्द्र! जो मर्त्यलोक वासी तुम्हारा पूजन नहीं करता उस पर तुम शासन करो और इस पृथिवी तथा जलों को प्रवृद्ध करो॥ २॥ हे सेचन समर्थ जलो! हम तुम्हारे वीर्य का वर्णन करते हैं। इन्द्र के हर्षोन्मत्त होने पर तुम उनकी रक्षा करते हो। मित्रों का पालन करते हो। पृतनाओं में सेवनीय कर्मों के करने वाले हो। तुम नदियों के आश्रय में रहो और हमको अन्न प्रदान करते हुये स्नान कराने वाले होओ॥३॥

७६ सूक्त

(ऋषिः—वसुक्रः। देवता—इन्द्रः। छन्दः—त्रिष्टुप्)

वने न वायो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान्॥१॥
प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम्।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान्॥२॥
कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव।

कद् वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ।३।
कदु द्यु्म्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४॥
प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधाइव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नरं इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५॥
मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ॥६॥
आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥७॥
व्यानडिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥८॥

हे अश्विनीकुमारो ! तुम देवताओं के भरण करने वाले हो । यह निर्दोष और इन्द्र की कामना करने वाला स्तोम हममें है, इन्द्र इसकी बहुत समय से कामना करते थे। वे इन्द्र मनुष्यों में श्रेष्ठ, सोम को प्राप्त करने वाले हैं। यह स्तोम उन्हीं की ओर अग्रसर होता है ॥ १ ॥ हम वीरों में श्रेष्ठ इन्द्र के सत्य में रहें और दूसरी उषा के भी पार हों। त्रिलोक ऋषि ने सैकड़ों उषाएँ प्राप्त कराईं। कुत्स ऋषि ने संसार रूपी रथ को अन्नवान् किया ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम्हें प्रसन्न करने वाला कौन-सा स्तोम हमको देने वाला होगा ? कौन-सा अश्व तुम्हें मेरे पास लावेगा ? तुम मेरे स्तोम के प्रति आओ, तुम उपमेय हो, मैं तुम्हें हवियों द्वारा प्रसन्न कर सकूँगा ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने आश्रितों को किस बुद्धि से यशस्वी बनाते हो ? तुम महान् कीर्ति वाले हो अतः यथार्थ सखा के समान इसे अन्नवती बुद्धि से सम्पन्न करो ॥४॥ हे इन्द्र ! इसकी इच्छा पूर्ति के लिए जो माता के समान मिलती है, उन रश्मियों से हमें अर्थ के समान पार करो। पवन इसी अन्न दें। हे इन्द्र ! तुम अपनी पुरातन स्तुतियों को इसकी मति में लाओ ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! यह घृतयुक्त सोम तुम्हारे लिये सुस्वादु हों । पृथिवी और आकाश

अपने श्रेष्ठ काव्य के लिये सुमति वाले हों ॥ ६ ॥ इन्द्र के निमित्त यह पात्र मधुर रस से पूर्ण किया गया है। वह इन्द्र अपने बल से ही पृथिवी पर प्रवृद्ध होते हैं और वही सत्य के द्वारा पूजित होते हैं ॥ ७ ॥ इन्द्र का बल श्रेष्ठ है, वह सेनाओं में व्याप्त होते हैं। असंख्य वीर इनके सख्य भाव की कामना करते हैं। हे इन्द्र! तुम जिस सुमति द्वारा प्रेरणा देते हो, उसी रथ के समान सुमति से हमारे वीरों में व्याप्त होओ ॥ ८ ॥

७७ सूक्त

(ऋषिः-वामदेवः। देवता-इन्द्रः। छन्दः-त्रिष्टुप्)

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १ ॥
अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥
कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात्।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३ ॥
स्वर्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥ ४ ॥
ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥ ५ ॥
विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६ ॥
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः।
प्राणांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥

इन्द्र के अश्व हमारी ओर गतिवान हों। धन के स्वामी, सत्यनिष्ठ

सोमपायी इन्द्र यहाँ आगमन करें । स्तुति करने वाला विद्वान् इसी कारण स्नानादि कर्म कर रहा है और हम सोम का संस्कार कर रहे हैं ॥१॥ हे वीर ! हमारे इस यज्ञ को प्राप्त करो, अपने मार्ग को हमारे समीप करो । यह विद्वान् रसना के समान; इन्द्र के लिये उक्थ उच्चारण करते हैं ।२। इन्द्र फलों के वर्षक हैं, वे वर्षा-जल के द्वारा पृथिवी को सम्पन्न करते हुये आगमन करें । ऋत्विज यज्ञ कार्य कर रहा है । सात स्तोता शोभन स्तोत्रों से स्तुति कर रहे हैं ॥ ३ ॥ जिन मन्त्रों के द्वारा दर्शनीय स्वर्ग का ज्ञान होता है, जो मंत्र सूर्य को प्रकाशित करते हैं, जिन मन्त्रों से सूर्य रूपी इन्द्र दूर से भी अन्धेरे को दूर करते हैं, वे अत्यन्त बली इन्द्र कामनाओं की स्थापना करते हैं ॥ ४ ॥ सोमपायी इन्द्र अपरिमित धन का प्रेरण करते हैं, वे सब लोकों में व्याप्त होने से महिमामय हैं । उन्हीं इन्द्र की महिमा पृथिवी और आकाश को पूर्ण करती है ॥ ५ ॥ स्वेच्छा से संचालित मेघों द्वारा इन्द्र ने हितकारी जलों की वृद्धि की । वे जल अपने शब्द से पाषाणों को भी तोड़ देते हैं और इच्छा होने पर गोचर भूमि पर छा जाते हैं ।६॥ हे इन्द्र ! यह पृथिवी तुम्हारे वज्र को सावधानी से रक्षा करती है । यही समुद्र की भी रक्षा करती है । आवरक वृत्र को जलों ने छिन्न-भिन्न कर दिया है । हे इन्द्र ! तुम अपने बल से ही पृथिवी के स्वामी हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम अनेक यजमानों द्वारा बुलाये जा चुके हो । तुम जिस जल को प्रदान करते हो, वह जल पहले ही प्रकट होकर बहने लगता है । तुम आंगिरसों द्वारा स्तुत, मेघों को चीरते हुये हमको अपरिमित अन्न देते हो ॥ ८ ॥

७८ सूक्त

(ऋषि—शयुः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—गायत्री)

तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद् गवे न शाकिने ॥ १ ॥
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २ ॥

कुविस्तस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्।
शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ।

हे स्तोता ! सोम के संस्कारित होने पर इन्द्र की स्तुति करो, जिससे वे हम सोमवानों के लिये गौ के समान कल्याण करने वाले हों ॥१॥ यह इन्द्र हमारी स्तुतियों को यदि सुन लेते हैं तो गौओं से सम्पन्न अन्न को देने से नहीं रुकते ॥२॥ हे इंद्र ! तुम वृत्रहन हो, अपरिमित अन्न वाले हो। तुम गौ से सम्पन्न स्थान पर आकर हमको धन से पूर्ण करो ॥ ३ ॥

७६ सूक्त

(ऋषि:—शक्तिः, वसिष्ठः। देवता—इन्द्रः। छन्दः—बार्हतः प्रगाथः)

इन्द्रं क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १ ॥
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमुः।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! पिता द्वारा पुत्र को इच्छित वस्तु देने के समान ही हमें अभीष्ट वस्तु प्रदान करो। हे पुरुहूत ! इस संसार यात्रा में इच्छित पदार्थ दो जिससे हम दीर्घजीवी होकर इस लोक के सुखों का अनुभव करें ॥१॥ हे वीर इन्द्र ! हम पर आधि-व्याधियों का आक्रमण न हो। अमंगलमय वाणियाँ और पाप हम पर आक्रमण न करें। हम तुम्हारी कृपा को पाकर मनुष्यों से युक्त रहें और कर्मों को सदा सफलता पूर्वक करें ॥ २ ॥

८० सूक्त

(ऋषि—शंयुः। देवता—इन्द्रः। छन्द—प्रगाथः)

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ १ ॥
त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान् सुषहान् कृधि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपने महान् और ओजस्वी धन से हमें सम्पन्न करो । हे वज्रिन् ! तुमने अपने जिस धन से आकाश-पृथिवी को पूर्ण किया है उसी धन को हमें प्रदान करो ।। १ ।। हे इन्द्र ! तुम उग्र हो हमारे भय के सब कारणों को दूर करो और शत्रुओं को वशीभूत करने वाले बल से हमें सम्पन्न करो । हम तुम्हें रक्षा के लिये आहूत करते हैं ।। २ ।।

८१ सूक्त

(ऋषि—पुरुहन्मा । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथ)

यद् द्याव इन्द्र ते शत शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ।। १ ।।
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।। २ ।।

हे इन्द्र ! हे प्रभो ! सैकड़ों आकाश-पृथिवी भी यदि तुम्हारी समानता करना चाहें तो भी तुम्हारे समान प्रवृद्ध नहीं हो सकते ।। १ ।। हे वज्रिन ! हमारे गोचर स्थान में अपने अद्भुत रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करो और अपनी महिमा द्वारा ही हमारी वृद्धि करो ।। २ ।।

८२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता— इन्द्रः । छन्द—प्रगाथ)

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ।। १ ।।
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ।। २ ।।

हे इन्द्र ! तुम्हारे समान प्रभुता को मैं प्राप्त होऊँ, मैं स्तुति करने वालों को धन देने वाला होऊँ और पापत्व के कारण पक्षियों द्वारा व्यथित न किया जाऊँ ।।१।। हे इन्द्र ! मैं जिधर से चाहूँ वहीं से धन पाऊँ, जो

मुझसे उत्कृष्ट होना चाहे उसे स्वर्ग का दण्ड दूँ। हे इन्द्र! मुझे इस प्रकार की शक्ति देने वाला अन्य कौन रक्षक हो सकता है?॥ ८॥

८३ सूक्त

(ऋषि—शंयुः। देवता—इन्द्रः। छन्द—प्रगाथः)

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्।
छर्दियंच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः॥ १॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव॥ २॥

हे इन्द्र! मुझे मंगलकारी गृह प्रदान करो और हिंसात्मक शक्तियों को वहाँ से दूर करो॥ १॥ तुम्हारे जो बल शत्रुओं को संतप्त करते और मारते हैं, अपने उन्हीं बैलों से हे इन्द्र! हमारे शरीरों की रक्षा करो। २॥

८४ सूक्त

(ऋषि—मधुच्छन्दाः। देवता—इन्द्रः। छन्द गायत्री)

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः।
अण्वीभिस्तना पूतासः॥ १॥
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।
उप ब्रह्माणि वाघतः॥ २॥
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः।
सुते दधिष्व नश्चनः॥ ३॥

हे इन्द्र! यहाँ आओ। यह निष्पन्न सोम तुम्हारे ही हैं॥ १॥ हे इन्द्र! यह विद्वान् ब्राह्मण तुम्हें अपने से श्रेष्ठ मानते हैं। अतः इन मन्त्रों से सम्पन्न एवं सोमवान ऋत्विजों के समीप आओ॥ २॥ हे इन्द्र! तुम अश्वों वाले हो, शीघ्र ही हमारे स्तोत्रों की ओर आगमन करो और हमारे संस्कारित सोम के पास अपने अश्वों को रोको॥ ३॥

८५ सूक्त

(ऋषि–प्रगाथ मेध्यातिथिः । देवता–इन्द्रः । छन्द–प्रगाथः)

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोऽभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥
यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥
वि ततूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥

हे स्तोताओं ! तुम अन्य किसी देवता का आश्रय न लो, अन्य किसी देवता की स्तुति न करो । हे संस्कारित सोम वाले होताओ । तुम इन्द्र की स्तुति करते हुये बारम्बार उक्थों को गाओ ॥ १ ॥ वे इन्द्र वृषभ के समान चरने वाले, शत्रुओं के द्वेषी, अवक्रक्षी अजुर, महिष्ठ, संवननीय एवं दोनों लोकों में रक्षक हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी रक्षा प्राप्त करने को अनेक पुरुष तुम्हें आहूत करते हैं । हमारा यह स्तोत्र भी तुम्हारी वृद्धि करने वाला है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम शीघ्र आकर विशाल रूप धारण करो । इन विद्वानों मनुष्यों और यजमान की उङ्गलियाँ शीघ्रता कर रही हैं । तुम हमारे पालन के लिये अन्न को हमारे समीप लाते हुए हमें प्रदान करो ॥ ४ ॥

८६ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ १ ॥

कर्मवान् मन्त्र द्वारा तुम्हारे रथ में अश्वों को संयुक्त करता हूँ । हे

विद्वान् इन्द्र ! उस सुखकारी रथ पर आरूढ़ होकर हमारे इस सोम के पास आगमन करो ॥ १ ॥

८७ सूक्त

(ऋषि: – वसिष्ठ: ।। देवता—इन्द्र: इन्द्र बृहस्पती: । छन्द:—त्रिष्टुप्)

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१॥
यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् ॥२॥
जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥३॥
यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम् ॥४॥
प्रेन्द्रस्य वोच प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ॥५॥
तवेदं विश्वमभितः पशव्य यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥६॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

हे अध्वर्युओं ! इन्द्र पृथिवी पर वर्षा करने वाले हैं, उनके लिए सोम के दूध रूप अंश की आहुति दो । वह इन्द्र सोम की कामना करते हुये पीने के लिये आते हैं ।। १ ॥ हे इन्द्र ! तुम आकाश में सुन्दर अन्न धारण करते हो और यज्ञादि कर्मों के अवसर पर सोम का पान करते हो । अतः इस सोम की कामना करते हुए, इसकी रक्षा करो ।। २ ।। हे इन्द्र ! तुम प्रकट होते ही सोम पर जाते हो । तुमने संग्राम में जीतकर देवताओं को धन दिया ।

तुम विशाल अन्तरिक्ष में गमन करते हो वह अन्तरिक्ष तुम्हारी महिमा का बखान करता है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम मनुष्यों सहित संग्राम करो । हम तुम्हारी शक्ति से इस संग्राम में विजय पाते हुये यशस्वी हों । तुम अपनी जिन भुजाओं से बड़े-बड़ों से युद्ध करते हो, उन भुजाओं के बल से हम युक्त हों ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे नये पुराने कर्मों का वर्णन करता हूँ । तुमने जिन राक्षसी मायाओं का सामना किया है इससे सोम तुम्हारा ही हो गया है । ५ ॥ हे इन्द्र ! यह सब पशु धन तुम्हारा है, तुम गौओं के पालन करने वाले हो । तुम सूर्य रूपी चक्षु से देखने वाले हो । तुम अपने उपासक के फल में बलवान रहते हो, ऐसे तुम्हारा धन हम पायें । ६ ॥ हे बृहस्पते ! हे इन्द्र ! तुम दोनों ही दिव्य और पार्थिव धनों के स्वामी हो । तुम अपनी रक्षक शक्तियों द्वारा हमारी रक्षा करते हुये स्तुति करने वाले हमे धन प्रदान करो ॥ ७ ॥

८८ सूक्त

(ऋषि - वामदेवः । देवता—बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप)

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥
धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥
बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्व श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ३ ॥
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥ ४ ॥
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्त्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥ ५ ॥
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥

जिन बृहस्पति ने पृथिवी के छोर को भी अपने घोष से स्तंभित किया, उनका पुरातन ऋषि बारम्बार ध्यान करते हैं। वे बृहस्पति प्रसन्न करने वाली जिह्वा वाले हैं, विद्वान् ब्राह्मण उन्हें प्रथम रखते हैं ॥ १ ॥ हे बृहस्पते! जो ऋत्विज तुम्हें हमारी ओर आकर्षित करते हैं, उन गमनशील, अहिंसित, घृत विन्दु युक्त ऋत्विजों की तुम रक्षा करो ॥२॥ हे बृहस्पते! ऋतस्पृश् ऋत्विज तुम्हारी रक्षा साधनों वाली महान् रक्षा के निमित्त बैठे हुये पर्वतों से पथन किए हुये सुन्दर मधु की तुम पर वर्षा करते हैं ॥ ३ ॥ वे बृहस्पति महान् ज्योतिषचक्र से परम व्योम में आविर्भूत होते हुये सप्त रश्मि बनकर अन्धकार को मिटा देते हैं ॥ ४ ॥ ऋचा युक्त गण द्वारा वे बृहस्पति मेघ को चीरते हैं। वे हव्य से प्रेरित होकर इच्छा करने वाली गौओं को बारम्बार शब्द करते हुये प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ हे बृहस्पते! हम सुन्दर वीर संतानों से सम्पन्न धन के स्वामी हों। हम उन बृहस्पति की हवियों और नमस्कारों द्वारा पूजा करते हैं ॥ ६ ॥

८६ सूक्त

(ऋषि – कृष्णः। देवता – इन्द्रः। छन्दः – त्रिष्टुप्)

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥ १ ॥
दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम्।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २ ॥
किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥ ३ ॥
त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥ ४ ॥
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान्।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ॥ ५ ॥

यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६॥
आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥७॥
प्र यमन्तर्वृ षसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन् नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥८॥
उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥९॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीवः कृणोतु ॥ ११ ॥

हे ब्राह्मणो ! तुम इन्द्र के लिये स्तोमों को भरो । मंत्र रूप वाणी से पार जाओ । हे स्तुति करने वालो ! तुम इन्द्र को सोम से सुसंगत करो ॥१॥ हे स्तोताओ ! अपनी मित्र रूप वाणी को दुहो और शत्रुओं को क्षीण करने वाले इन्द्र को बुलाओ । धन से सम्पन्न कोश के समान शुद्ध सोम को इन्द्र के लिये सींचो ॥२। हे इन्द्र ! तुम भोगने वाले हो । तुम शत्रु के क्षीण करने वाले हो। मुझे क्षीण न करो । मुझे धन मिलने वाला सौभाग्य दो । मेरी बुद्धि कर्मों की ओर अग्रसर हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! मेरे पुरुष तुम्हें ही आहूत करते हैं । जो वीर तुम्हारी मित्रता की कामना करता है और हवि वाला अनुष्ठान करता है वह सोम का सत्कार करता है ।४॥ जो हविर्वान् पुरुष इन्द्र के निमित्त सोमों को संस्कारित नहीं करता उसका धन सरकता जाता है और इन्द्र उसे शत्रुओं मे मिलाते हुये उस पर वज्र प्रहार करते है ॥ ५ । जो इन्द्र हमारे अभीष्ट को पूर्ण करने वाले हैं, जिन इन्द्र की हम प्रशंसा करते हैं, उन इन्द्र से शत्रु समीप आते ही भयभीत हो और संसार के सभी प्राणी इन इन्द्र को नमस्कार करें ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने उग्र वज्र से पास के

या दूर के शत्रु को व्यथित करो । हमको अन्न वाली बुद्धि देते हुए अन्न तथा पशुओं से पूर्ण धन में प्रतिष्ठित करो ॥७॥ जिन इन्द्र के पास तीव्र सोम गमन करते है वे इन्द्र धन की बाधक रस्सी को रोकते और सोम का संस्कार करने वाले स्तोता को असीमित धन प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥ जैसे क्रीड़ा कुशल व्यक्ति प्रतिपक्षी को द्यूत में हराता है क्योंकि वह कृत नामक अक्ष को ही खोजता है । वह खिलाड़ी इन्द्र की कामना करता हुआ उस जीते हुये धन को व्यर्थ ही न रोकता हुआ इन्द्र के कार्य में लगाता और उन्हें स्वधावान् करता है ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! दरिद्रता से प्राप्त हुई दुर्बुद्धि को हम पशुओं के द्वारा लांघ जांय । अन्नों से भूख को शान्त करें । प्रतिपक्षी खिलाड़ी से जीतते हुये हम राजाओं में स्थित उत्कृष्ट धन को बल सम्पन्न अक्षों से प्राप्त करें ॥ १० ॥ जो शत्रु हमारे वध रूप पाप की इच्छा करता है, उससे बृहस्पति देवता चारों दिशाओं से हमें रक्षित करें और अपने अन्य मित्रों से हमें उत्कृष्ट बनावें ॥ ११ ॥

६० सूक्त

(ऋषि–भरद्वाज; । देवता–बृहस्पतिः । छन्द–त्रिष्टुप्)

यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥
जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूंरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥ २ ॥
बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥

प्रथम प्रकट होने वाले, मेघों को चीरने वाले, सत्य से सम्पन्न आंगिरस बृहस्पति हवि प्राप्त करने योग्य हैं । वे पालन करने वाले, आकाश-पृथिवी में शब्द करने वाले, द्विबर्हज्मा, प्राघर्मसत् और वर्षा करने वाले हैं ॥ १ ॥ देवहूति में लोक को करने वाले, मनुष्यों के लिए गमनशील बृहस्पति मेघों को चीर कर पुरों को तोड़ते हैं, शत्रुओं पर विजय

प्राप्त करते हुये सेनाओं का सामना करते हैं, ॥ २ ॥ बृहस्पति ने गौओं से सम्पन्न बृहद गोष्ठों और धनों पर विजय प्राप्त करली। वे जल-दान के निमित्त स्वर्ग में आरूढ़ होते और मंत्रों से शत्रुओं को नष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

९१ सूक्त (आठवाँ अनुवाक)

(ऋषि—अयास्यः । देवता—बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्)

इमां धीयं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्यः उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥ १ ॥
ऋत शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥ २ ॥
हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥ ३ ॥
अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥४॥
विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥
इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ॥ ६ ॥
स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७ ॥
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥ ८ ॥
तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥ ९ ॥
यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥ १० ॥

सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुत विश्वमिन्वे ॥११॥
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून् देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१२॥

बृहस्पति ने सत्य द्वारा आविर्भूत सप्तशीर्षा बुद्धि को प्राप्त किया है और विश्व से उत्पन्न उन अस्यास्य ने इन्द्र से कहकर तुरीय को उत्पन्न कराया ॥ १ ॥ सत्य कथन द्वारा प्राण के वीर्य से उत्पन्न हुये अङ्गिरा यज्ञ स्थान में प्रथम समझे जाते हैं ॥ २ ॥ बधक मेघों का उद्घाटन करते हुये बृहस्पति स्तुति-सी करते हुये विद्वान् से लगते हैं ॥ ३ ॥ दो से फिर एक से हृदय गुहा में अवस्थित वाणियों को उद्भुत करते हुये अन्धेरे में प्रकाश की कामना वाले प्रकाशों को प्रकट करते हैं ॥ ४ ॥ पुर को चीर कर पश्चिम में सोते हैं । समुद्र के भागों का त्याग नहीं करते । आकाश में कड़कते हुये बृहस्पति, उषा, सूर्य, मन्त्र और गौ को पाते हैं ॥ ५ ॥ कामधेनुओं के पालक मेघ को इन्द्र छिन्न-भिन्न करते हैं । इन्होने दधि की इच्छा से गो अप हारक पणियों को व्यथित किया ॥ ६ ॥ वह इन्द्र घन देने वाले तथा पृथिवी को पुष्ट करने वाले मेघ को चीरते हैं और ब्रह्मणस्पति वर्षणशील मेघों द्वारा घन में व्याप्त होते हैं ॥ ७ ॥ वह मेघ वृषभ और गौओं पर जाने की कामना करते हुये अपनी बुद्धियों द्वारा उन्हें पाते हैं । उन प्रनवरण शब्द का पालन करने वाले बृहस्पति मेघों द्वारा गौओं में संयुक्त होते हैं ॥ ८ । उस युद्ध में सिंह के समान गर्जन करने वाले बृहस्पति को हम अपनी सुबुद्धियों से प्रवृद्ध करते हैं और युद्धों के अवसर पर उन्हें प्रसन्न करते हैं ॥ ९ ॥ जब यह विश्व रूप आकाश रूपी भवन पर चढ़कर अन्न प्रदान करने की इच्छा करते हैं, तब ज्योति को ग्रहण करते हुये बुद्धि के द्वारा बृहस्पति को प्रवृद्ध करते हैं ॥१०॥ अन्न के पोषक कारणों से आशीर्वाद को सत्य करते हुये स्तुति करने वाले के रक्षक होओ । हे द्यावापृथिवी ! तुम अग्नि सम्बन्धी ऋचाओं के प्रचण्ड होने पर श्रवण करो । जितने युद्ध हैं वे सब विगत हो जाँय ॥ ११ ॥ मेघ के मस्तक को अपनी महिमा द्वारा ही इन्द्र काट देते हैं । वे प्रहार करके सात

नदियों को प्रकट करते हैं। हे आकाश और पृथिवी ! तुम हमारी पोषण करने वाली होओ ॥ १३ ॥

९२ सूक्त

(ऋषि--प्रियमेधः. पुरुहन्मा । देवता--इन्द्रः । छन्द--गायत्री; अनुष्टुप्; पंक्ति; बृहती प्रगाथ)

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
यत्राभि संनवामहे ॥ २ ॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥
उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत । ५ ।
अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ६ ॥
आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७ ॥
अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥८॥
सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ ९ ॥
यो व्यतीँरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे ।
तक्वो नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १० ॥

हे स्तोता ! गौओं के स्वामी इन्द्र को जिस प्रकार पाऊं उसी प्रकार तुम उनका पूजन करो। यह इन्द्र अपने सत्यनिष्ठ उपासकों की रक्षा करते हैं ॥ १ ॥ जिन कुशाओं पर हम इन्द्र का पूजन कर रहे हैं, उन कुशाओं पर इन्द्र के अश्व रथ को जोड़ें ॥ २ ॥ जब गौऐं इंद्र के लिये दूध को दुहती हैं तब वे इन्द्र सब ओर से मधुर सोम रसों को प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ अघ्न के गृह रूप स्वर्ग में हम और इन्द्र गमन करें। हम इक्कीस बार मधु को पीकर इन्द्र का सख्य भाव प्राप्त करें ॥ ४ ॥ हे स्तोताओ ! इन्द्र को श्रेष्ठ रीति से पूजो। अपने शत्रुओं को वश करने के लिये उनका पूजन करो ॥ ५ ॥ जब इन्द्र के प्रति मन्त्र चलता है तब कलश शब्दवान होता है उस समय पिशङ्ग पदार्थ गमन करता हुआ धनुष की प्रत्यचा के समान शब्द करता है ॥ ६ ॥ हे स्तोताओ ! इन शुभ्र धेनुओं में स्थित अविनाशी पदार्थ को ग्रहण करते हुये, इन्द्र के पीने के लिये सोम को लाओ ॥ ७ ॥ इस पदार्थ को इन्द्र ने, अग्नि ने, विश्वेदेवाओं ने पी लिया है। हे जलो ! संवित्सरी के वत्स के समान वरुण की स्तुति करो ॥ ८ ॥ हे वरुण ! तुम्हारे पास पुरस्तात्, वर्षयन्ती, अभ्रपत्नी, अश्वा, मेघपत्ना त्रितुवा, असन्धा नाम की सात नदियाँ हैं। जैसे नगर से बाहर जल निकलता है; वैसे ही उन नदियों से जल प्रवाहित होता है ॥९॥ जो हविदाता के लिए सुयुक्तों को फलित करते हैं, जो नेता हैं, सक्त हैं, उनकी उपमा उनका देह ही है, अर्थात् अन्य कोई नहीं है ॥१ ॥

अतोदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः।
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ ११ ॥
अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम्।
स पक्षन्महिषं मृग पित्रे मात्रे विभुक्तुम् ॥ १२ ॥
आ त सुशिप्र दंपते रथ तिष्ठा हिरण्ययम्।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपाद मरुषं स्वतिगामनेहसम् ॥ १३ ॥
तं घेमित्था नमस्विन उप राजमासते।
अर्थं चिदस्य सुधित यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १४ ॥

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥ १५ ॥
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १६ ॥
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ १७ ॥
नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥ १८ ॥
अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥ १९ ॥
यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ २० ॥
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ २१ ॥

इन्द्र सब शत्रुओं को वश में करते हैं, वे भार को संभालने वाले हैं। इन्होंने मंत्र से पकते हुये ओदन का नवीन होते हुये भी भेदन किया ॥ ११ ॥ वे अपने रथ पर उत्कृष्ट कुमार के समान आरूढ़ होते हैं और द्यावा पृथिवी रूप पिता-माता के निमित्त विभुक्रतु, पकि करते हैं ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! तुम इस स्वर्ण निर्मित रथ पर आरूढ़ होओ और हम भी तुम्हारी कृपा से सुन्दर वाणियों से सम्पन्न, सहस्रों मार्ग से युक्त स्वर्ग पर चढ़ें ॥ १३ ॥ उन इन्द्र को इस प्रकार की महिमा जानने वाले व्यक्ति अपने राज्य में प्रतिष्ठित करते हैं। हवि देने वाले यजमान के लिये ऋत्विगण इनके समीपस्थ धन को प्राप्त कराते हैं ॥ १४ ॥ प्रियमेधा वाले ऋत्विज इनके पूर्व भवन से हितकारी अन्न से सम्पन्न होकर 'प्रयति' का उपयोग करते हैं ॥ १५ ॥ राजा इन्द्र ज्येष्ठ हैं, वे रथ द्वारा गमन करते हुये सभी सेनाओं के पार होते हैं। मैं उनका स्तव करता हूँ ॥ १६ ॥ हे पुरुहन्मन् ! इन्द्र की सत्ता मध्यलोक, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक

में भी है। क्रीड़ा के निमित्त ऊँचा हुआ वज्र उनके हाथ में सूर्य के समान दर्शनीय है। इस धारक यज्ञ में अन्न प्राप्ति के निमित्त उन्हीं इन्द्र को सुसज्जित करो ॥ १७ ॥ जो पुरुष उन महान् पराक्रमी, ऋभ्वस, धृष्ट, वृद्धिकर और धर्षक तेज से सम्पन्न इन्द्र की उपासना में लगता है, उसे उसके कर्म से कोई रोक नहीं सकता ॥ १८ ॥ वे प्रचण्ड इन्द्र विशाल आश्रय मार्ग वाले; वाणियों द्वारा स्तुत और सेनाओं में असहनीय है. उनका आकाश और पृथ्वी लोक स्तव करते हैं ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! सौ-सौ आकाश और पृथ्वी हों या सहस्रों सूर्य आकाश पृथ्वी बन जांय तो भी वह तुम्हारी समानता करने में समर्थ नहीं हैं ॥ २० ॥ हे इन्द्र ! हमारी गोचर भूमि में अपने रक्षा साधनों से हमें रक्षित करते हुये हमारी वृद्धि करो ॥ २१ ॥

९३ सूक्त

(ऋषि—प्रगाथ; देवजामयः। देवता— इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः।
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥
पदा पणीरराधसो नि बाधस्व महाँ असि। नहि त्वा कश्चन प्रति ॥२॥
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम्। त्वं राजा जनानाम् ॥३॥
ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते। भेजानासः सुवीर्यम् ॥ ४ ॥
त्वामिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः। त्व वृषन् वृषेदसि ॥ ५ ॥
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः। उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ६ ॥
त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वो। वज्रं शिशान ओजसा ॥ ७ ॥
त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा। स विश्वा भुव आभवः ॥८॥

हे वज्रिन् ! यह स्तुति तुम्हारे लिये प्रमुदित करने वाली हो, तुम ब्रह्म द्वेषियों को नष्ट करो और हमको धन दो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! पणियों के धन को छीन कर उन्हें मार डालो। तुम महान् हो। कोई भी तुम्हारी प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक सकता ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम संस्कारित सोमों के तथा मनुष्यों के भी स्वामी हो ॥ ३ ॥ जल की कामना करती हुई और श्रेष्ठ वीर्य से व्याप्त

होती हुई ओषधियाँ उत्पन्न होते ही इन्द्र की आराधना करती हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र तुम फलों की वर्षा करने वाले अपने धर्षक ओज सहित आविर्भूत हुए हो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र तुम अन्तरिक्ष को लाँघने में समर्थ हो वहाँ तुम वृत्र का नाश करते हो तुम्हारा ओज स्तम्भित करने वाला है जिससे द्युलोक स्थिर हुआ है ॥६॥ हे इन्द्र ! तुम प्रीतिकर मन्त्र के धारण करने के पश्चात् तीक्ष्ण वज्र को अपने ओज से धारण करते हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! सभी उत्पन्न होने वाले पदार्थों को तुम अपने बल से अधीन करते हो अतः सब शक्तियों को अपने वश में करो ॥ ८ ॥

९४ सूक्त

(ऋषिः—कृष्णः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्द—त्रिष्टुप् जगती)

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥
सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥
एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥
एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥ ४ ॥
गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥५॥
पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्या नि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥
एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यो ऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७॥
गिरींरज्रान् रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।

समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥
इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ॥९॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥

जो इन्द्र धन के ईश्वर हैं, धर्म से स्वगवान् हैं, वे हर्ष के निमित्त आगमन करें और वही अपनी शक्ति से, दबाने वाले शत्रुओं को हर प्रकार से क्षीण करें ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे हाथ में वज्र रहता है तुम्हारे अश्व हर प्रकार से तुम्हारे अधीन रहते हैं, तुम्हारे रथ में बैठने का स्थान श्रेष्ठ है, अतः स्वर्ग से सुन्दर मार्ग द्वारा आओ और हम तुम्हारे सोम-पान की कामना वाली शक्ति को प्रवृद्ध करते हैं ॥ २ ॥ इन वज्रधारी राजा, भयंकर शत्रुओं का क्षय करने वाले, सत्य से सशक्त, फलों की वर्षा करने वाले इन्द्र को हमारे इस यज्ञ स्थान में इनके बलवान अश्व लेकर आवें ॥३॥ हे ऋत्विज ! ज्ञानी, बली, द्रोण पात्र से सुसंगत होने वाले स्कंभ को जल में सींचो । मैं 'केनिपानो' को बढ़ाने के लिये तुममें होऊँ । तुम मुझे बल दो और भले प्रकार आश्रय दो ॥४॥ हे इन्द्र ! इस स्तोता को शुभ आशीर्वाद दो, इस यजमान में धन को प्रतिष्ठित करो । हे स्वामिन् ! इस सोम के गृह में आकर कुशा के इस आसन पर विराजमान होओ । तुम्हारे पात्र धारण शक्ति के कारण अनाधृष्य हैं ॥५॥ हे इन्द्र ! जो अपने ज्ञान और कर्म के अनुसार देवयान आदि मार्गों से जाने की कामना करते हैं, जो सर्व साधारण को कष्टसाध्य देवहूति आदि कर्मों को करते हैं, परन्तु तुम्हारी कृपा न होने से वे यज्ञ रूप नाव पर नहीं चढ़ पाते, इसलिये साधारण कर्मों को करते हुये मर्त्यलोक में ही रुके रहते हैं ॥६॥ जिन अश्वों को दुर्युज संयुक्त करते हैं वे 'अपाक' रहें ।

जो दाता को बहुत से भोज्य पदार्थों से युक्त हैं, वे मेघ हों ॥ ७ ॥ सोम के रस से हर्षित हुये इन्द्र पर्वतों को धारण करते, अन्तरिक्ष के पदार्थों को कुपित करते और द्युलोक को कम्पित करते हैं। आकाश पृथिवी को विष्कम्भित करते हुये उक्थों को श्रेष्ठ बनाते हैं ॥८॥ हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे अंकुश को धारण करता हूँ, तुम उसके द्वारा नख वाले पीडक प्राणियों को नष्ट करते हो इस हृदय में तुम पूजित होओ और सोम के निष्पन्न होने पर धन को जानने वाले होओ ॥९॥ हे अनेकों द्वारा आहूत इन्द्र ! हम यजमान तुम्हारे द्वारा प्रदत्त गौओं से दरिद्रता को लांघ जांय और तुमने जो अन्न दिया है उससे हम अपने भृत्य पुत्र आदि की भूख को मिटावें। हम अपनी शक्ति से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें और अपने समान पुरुषों में श्रेष्ठ बन कर धन पावें ॥१०॥ पूर्व दिशा से आते हुये हिंसक शत्रु से इन्द्र हमारी रक्षा करें और धन दे। पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा से आते हुये हिंसक शत्रुओं से बृहस्पति हमें बचावें ॥ ११ ॥

९५ सूक्त

(ऋषि — गृत्समदः, सुदाः। देवता—इन्द्रः। छन्दः — अष्टिः, शक्वरी)

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत् । स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् सगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।

अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्ता-
मन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ४ ॥

वे इन्द्र त्रिकद्रुक सोम यागों में सोम पीते और यवादि के मिश्रण से तृप्ति पाते हैं। विष्णु द्वारा निष्पन्न सोम पर अधिकार करते हैं क्योंकि वह सोम उन्हें हर्ष देता हुआ इनसे सुसंगत होता है ॥ १ ॥ इन्द्र के बल को पूजो, इन्द्र की आराधना करो। वह युद्ध में शत्रुओं को मारते हैं। अन्य पुरुषों की प्रत्यंचाऐं धनुषों पर न चढ़ पावे। वह प्रेरक इन्द्र हमारी स्तुति को जान गए हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र! तुमने मेघ को मार कर नदियों को दक्षिण की ओर गमनशील बनाया। तुम सब वरणीय पदार्थों को पुष्ट करते और शत्रुओं को मिटाते हो। हम तुम्हें हृदय से लगाते हैं। अन्य पुरुषों की प्रत्यचाऐं उनके धनुषों पर न चढ़ पावें ॥३॥ हे स्वामिन्! हमारे सब शत्रुओं की वृद्धियाँ नष्ट हों। जो शत्रु हमारी हिंसा करने की कामना वाला है, उस पर मरण-साधन वज्र को चलाओ, अपना धन हमको दो। अन्य पुरुषों की प्रत्यचाऐं उनके धनुषों पर न चढ़ पावें ॥ ४ ॥

९६ सूक्त

(ऋषिः—पूरणः प्रभृति । देवता—इन्द्रः, प्रभृति । छन्दः—त्रिष्टुप्
जगती, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, पङ्क्ति)

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥ १ ॥
तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इहा पाहि सोमम् ॥ २ ॥
य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥ ३ ॥
अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥ ४ ॥

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥ ५ ॥
मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ ६ ॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥ ७ ॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ८ ॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥९॥
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम इस हवि रूप अन्न वाले यजमान के रथियों के रक्षक बनो । हे इन्द्र ! सोमों को संस्कारित किया जा चुका है अतः अपने अश्वों को छोड़कर यहाँ आओ । अन्य यजमानों के यहाँ रमण मत करो ॥१॥ हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे लिए ही अभिषुत हुए हैं, यह स्तुतियाँ तुम्हारा ही आह्वान कर रही हैं । तुम सब के ज्ञाता हो । हमारे यज्ञ में आकर इस सोम को पीओ ॥ २ ॥ जो देव-काम्य पुरुष सोम को निष्पन्न करता है, उसके स्तोत्रों को इन्द्र स्वीकार कर लेते और सुन्दर वाणी द्वारा उसे तुष्ट करते हैं ॥३॥ जो पुरुष सोम का संस्कार नहीं करता, वह इन्द्र के प्रहार के योग्य होता है । उस ब्रह्मद्वेषी और हविर्दान न करने वाले को इन्द्र नष्ट कर देते हैं ॥४॥ हे इन्द्र ! हम अश्व, धेनु और अन्न की कामना वाले तुम्हारे आश्रय के लिए, नवीन सुबुद्धि से सुसंगत होकर तुम्हें आहूत करते हैं ॥ ५ ॥ हे रोगी पुरुष ! मैं तेरे जीवन के निमित्त हवि देता हुआ तुझे क्षयादि रोगों से मुक्त करता हूँ । हे इन्द्राग्ने ! यदि इसे पिशाची ने पकड़ लिया हो तो उसके पाप से इसे छुड़ा दो ॥ ६ ॥ यह दुर्गति को प्राप्त हो गया है, इसकी आयु क्षीण हो गई है और

मृत्यु का सामीप्य प्राप्त कर चुका है तो भी मैं इसे निर्ऋति के अङ्क से खींचता हूँ। इसे सौ वर्ष की आयु प्राप्त कराने के लिए मैंने इसका स्पर्श किया है ॥ ७ ॥ मैं इस रोगी को सहस्रों सूक्ष्म दृष्टियों, सैकड़ों वीर्यों और सौ वर्ष वाली आयु के लिए हवि द्वारा मृत्यु से छीन लाया हूँ। इसे इन्द्र हो आयु पर्यंत के लिए पापों से पार लगावें ॥ ८ ॥ हे रोगिन्! तू सौ वर्ष तक जीवित रहता हुआ बढ़। सौ हेमन्तों और सौ वसंतों तक स्थित रह। इन्द्र, अग्नि, सविता, बृहस्पति तुझे शतायुष्य बनावें। इस हवि द्वारा मैं तुझे शतायु करके ले आया हूँ ॥ ९ ॥ हे रोगिन्! तू लौट आ। तू पुनः नवजीवन प्राप्त कर। इस कर्म द्वारा मैंने तेरी दर्शन शक्ति और पूर्ण आयु प्राप्त कर ली है ॥ १० ॥

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ ११ ॥
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२ ॥
यस्ते हन्ति पतयन्त निपत्स्नुं यः सरीसृपम्।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३ ॥
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये।
योनिं यो अन्तरारेढि तमितो नाशयामसि ॥ १४ ॥
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १५ ॥
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १६ ॥
अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १७ ॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ १८ ॥

हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥ १९ ॥
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्म कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृह मि ते ॥ २० ॥
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्म भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भसमो वि वृहामि ते ॥ २१ ॥
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ २२ ॥
अङ्गे अङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीवर्हेण विष्वञ्चं
वि वृहामसि ॥ २३ ॥
अपेहि मनसस्पतेप क्राम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ २४ ॥

अग्नि देवता राक्षसों को नष्ट करने वाले हैं, वे मन्त्र से युक्त होते हुए तेरे दूषित रोगों को बाधा दें । वह रोग तेरे गर्भाशय में व्याप्त हो रहा है ॥ ११ ॥ जो दुष्ट रोग तेरे गर्भाशय में व्याप्त हो रहा है, उसे अग्निदेव मन्त्र के बल से नष्ट करें ॥ १२ ॥ तेरे गिरते या निकलते हुए गर्भ को जो नष्ट करने की इच्छा करता है, हम उसे नष्ट करते हैं ॥ १३ ॥ जो रोग तुम पति पत्नी में व्याप्त है, जो तेरी योनि में और उरुओं में व्याप्त है हम उसे नष्ट करते हैं ॥ १४ ॥ जो पिशाच पति, उपपति या भाई बनकर आता हुआ तेरे गर्भस्थ शिशु को नष्ट करना चाहता है, उसे हम मारते हैं ॥ १५ ॥ जो तुझे स्वप्न में या अन्धकार में प्राप्त होकर तेरी संतान का क्षय करना चाहता है, उसे हम नष्ट करते हैं ॥ १६ ॥ मैं तेरे नेत्र, नासिका, श्रोत्र, ठोड़ी आदि से शीर्षण्य और यक्ष्मादि रोगों को मस्तक और जीभ से बाहर करता हूँ ॥१७॥ मैं तेरी अस्थियों से, नाड़ियों से, कन्धों और भुजाओं से तेरे यक्ष्मा रोग को नष्ट करता हूँ ॥ १८ ॥ हे रोगिन् ! मैं तेरे हृदय से यक्ष्मा को निकालता हूँ ।

हृदय के समीपस्थ क्लोम से, हलीक्ष्ण से पित्ताधारों, पार्श्वों, प्लीहा और यकृत से तथा उदर से भी तेरे यक्ष्मा रोग को नष्ट करता हूँ ॥ १९ ॥ हे क्षय-ग्रस्त रोगिन् ! तेरी आँतों से, गुदा से, उदर से, दोनों कुक्षियों से, प्लाशि से तथा नाभि से तेरे यक्ष्मा रोग को बाहर निकाल कर हटाता हूँ ॥ २० ॥ तेरे ऊरु, जानु, पाँवों के ऊपर तथा आगे के भाग से, कमर से, कटि के नीचे और गुह्य देश में प्राप्त हुए यक्ष्मा रोग को बाहर से निकाल कर पृथक् करता हूँ ॥ २१ । मज्जा, अस्थि, सूक्ष्म नाड़ियाँ, स्थूल नाड़ियाँ, उङ्गलियाँ, नख तथा तेरे शरीर की सब धातुओं से तेरे यक्ष्मा रोग को निकाल कर हटाता हूँ ॥२२॥ हे रोगिन् ! तेरे सब अङ्गों, सब रोम कूपों और जोड़ों में व्याप्त यक्ष्मा को हम दूर करते हैं । तेरे त्वचागत, नेत्र गत यक्ष्मा रोग को भी मन्त्र द्वारा नष्ट करते हैं ॥२३ । हे रोग ! तू मन पर भी अधिकार करने वाला है, तू दूर हो । इस जीवित पुरुष के मन से दूर होने को निर्ऋति से कह ॥ २४ ॥

९७ सूक्त

(ऋषि—कलिः । देवता—इन्द्रः; । छन्द—प्रगाथः; बृहती)

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ २ ॥
कदून्वस्याकृतमिन्द्रयास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥ ३ ॥

हे स्तोताओ ! हमने इन्द्र का सोम से पुष्ट किया है । तुम भी प्रसन्न मन से उन्हें संस्कारित सोम प्रदान करो । उन इन्द्र को स्तोत्रों द्वारा सुसज्जित करो ॥ १ ॥ इन्द्र का वृक शत्रुओं को भगाने वाला है, वह मेढ़ों का मथन करने वाला है । हे इन्द्र ! तुम अपनी रमणीय बुद्धि द्वारा इस यज्ञ में आकर हमारी स्तुतियों को सुनो ॥ २ ॥ यह किसने नहीं सुना कि इन्द्र ने वृत्र का नाश किया । ऐसा कोई पराक्रम नहीं जो इन्द्र में न हो । ३ ॥

६८ सूक्त

(ऋषि—शंयुः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—बार्हतः; प्रगाथः)

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हम स्तुति करने वाले, अन्न प्राप्ति वाले यज्ञ में तुम्हें ही बुलाते हैं । तुम सज्जनों के रक्षक और जलों को प्रेरित करने वाले हो । जब कोई घेर लेता है तब तुम्हीं आहूत किये जाते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे द्वारा पूजित होकर इस विजयाकांक्षी नरेश के लिये अश्व, रथ, धेनु आदि दो । हे इन्द्र ! तुम हाथों में वज्र धारण करने वाले हो ॥ २ ॥

६६ सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बार्हतः प्रगाथः)

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ १ ॥
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुमने पहिले सोमपान किया था, उसी प्रकार सोमपान के लिये ऋभु देवता और रुद्र देवता तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ निष्पन्न सोम का हर्ष प्राप्त होने पर वे इन्द्र यजमान को धन वृष्टि की और बल की वृद्धि करते हैं । यह स्तुति करने वाले उन इन्द्र की महिमा को ही पूर्ववत् गाते हैं ॥ २ ॥

१०० सूक्त

(ऋषि—नृमेधः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

अधा ह्रीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे ।

उदेव यन्त उदभिः ॥ १ ॥
वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वासं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥२॥
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे ।
इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ३ ॥

जैसे जल की कामना करने वाले मनुष्य जल में जल को मिलाते हैं, वैसे ही हे इन्द्र ! तुम्हारी कामना वाले मनुष्य तुम्हें सोम रूपी जलों से मिलाते हैं ॥ १ ॥ हे वज्रिन् ! तुम प्रत्येक स्तुति पर अपनी वृद्धि की इच्छा करते हो, इसलिए यह मन्त्र तुम्हें जल के समान प्रवृद्ध करते हैं ॥ २ ॥ युद्ध में प्रस्थान करने वाले इन्द्र के यशोगान से मन्त्र द्वारा जुड़ने वाले इन्द्र के अश्व रथ में संयुक्त होते हैं ॥ ३ ॥

१०१ सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथिः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री)

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥
अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२॥
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥

वे अग्नि सबके ज्ञाता और होता रूप है, वे यज्ञ के कर्मों को उत्कृष्ट बनाते हैं । अतः हम उन अग्निदेव का वरण करते हैं ॥ १ ॥ हव्य वाहक, बहुतों के प्रिय, प्रजापति अग्नि को यजमान हवि प्रदान करते हैं, इसलिए हम भी अग्नि को हवि देते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! ऋत्विज के लिए प्रदीप्त होते हुये तुम हमारे होता हो, अतः देवताओं को हमारे यज्ञ में लाओ ॥ ३ ॥

१०२ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री)

ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः समग्निरिध्यते वृषा ॥ १ ॥

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईडते ॥ २ ॥
वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥

वे अग्ने स्तुतियों और नमस्कारों के योग्य हैं, वे फलों की वर्षा करने वाले एवं दर्शनीय हैं । वे अपने धूम को तिरछा करते हुए प्रज्ज्वलित होते हैं ।। १ ।। देवताओं को वहन करने वाले अश्व के समान, वे फलों की वृष्टि करने वाले अग्नि प्रदीप्त होते हैं तब हविदाता यजमान उन अग्नि की पूजा करते हैं :। २ ।। हे वृषन् ! हे अग्ने ! हम हवि की वर्षा करने वाले तुम फलों की वर्षा करने वाले को भले प्रकार प्रज्ज्वलित करते हैं, अतः तुम भले प्रकार प्रदीप्त होओ ।। ३ ॥

१०३ सूक्त

(ऋषि —सुदीतिपुरुमीढौ; भर्गः । देवता—अग्निः । छन्द—बृहती)

अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ।। १ ।।
अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ २ ।।
अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ।। ३ ॥

हे मनुष्य ! अग्नि की गाथाओं द्वारा तू अन्न प्राप्ति के लिए अग्नि की स्तुति कर । वह अग्नि धन देने के लिये प्रसिद्ध; दीप्त एवं शोभायमान हैं । तू उन्हें ही पूज ॥ १ ।। हे अग्ने ! हम होता तुम्हें आहूत करते हैं, तुम अपनी सभी शक्तियों के सहित आओ । प्रयता हविष्मती बर्हि तुम से सुसंगत हो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम अङ्गिरा गोत्री हो । तुम जल के पुत्र रूप हो । यज्ञ के स्रुच तुम्हारे सामने घूमते हैं । तुम सदा नवीन, बलवान्, अग्नि की यज्ञ में हम भी स्तुति करते हैं ।। ३ ।।

१०४ सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथिः नृमेधः । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथः)

इमा उत्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥१॥
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥२॥
आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥३॥
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥४॥

हे इन्द्र ! तुम अपरिमित ऐश्वर्य से युक्त हो। हमारी अग्नि के समान पवित्र वाणियाँ तुम्हें प्रवृद्ध करें। हे स्तोताओ ! तुम इन्द्र के लिये स्तोत्र उच्चारण करो ॥ १ ॥ जल द्वारा प्रवृद्ध समुद्र के समान यह अग्नि ऋषियों की हवियों से सहस्रगुणा प्रवृद्ध होते हैं। मैं इन अग्नि की महिमा का यथार्थ रूप में बखान कर रहा हूँ। इन अग्नि का बल यज्ञों में दर्शनीय होता है ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम हवि के योग्य हो। तुम हमको सभी यज्ञों में सुशोभित करो। वह इन्द्र वृत्र के हननकर्त्ता हैं, वह ऋचाओं के अनुकूल अपना रूप प्रकट करते हैं। वे इन्द्र हमारे सवनों को, हवियों को और मन्त्रों को सुशोभित करें ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम धनों के देने वाले हो, तुम प्रभुता प्रदान करते हो, तुम जल के पुत्र को हम प्रदीप्त सहित वरण करते हैं ॥४॥

१०५ सूक्त

(ऋषि—नृमेध;पुरुहन्मा । देवता—इन्द्रः । छन्द—बार्हतः प्रगाथ;बृहती)

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥१॥
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥२॥

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥३॥
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ ४ ॥
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥५॥

हे इन्द्र ! तुम अशस्ति के नाशक, कल्याण के करने वाले, हिंसात्मक युद्धों में प्रतिस्पर्धा करने वाले हो। तुम स्वय सब से त्वरा करते हो ॥ १ ॥ तुम्हारे त्वरावान बल के पीछे,पुत्र के पीछे माता-पिता के पहुँचने के समान, आकाश-पृथिवी जाते हैं। जब तुम वृत्र का नाश करने में लगे थे तब उसकी द्वेष वृत्तियाँ तुम्हें नष्ट करने की कामना कर रही थीं ॥ २ ॥ यहाँ से प्रेरित होने वाली रक्षक शक्तियाँ तुम्हें अप्रहित, अजर, रथितम, अतूर्त, तुग्र्यवृध, प्रहेता, हेना और द्रुतकर्मा बना रहीं थीं ॥ ३ ॥ मनुष्यों के राजा, सेनाओं के उल्लंघक, वृत्रहन, ज्येष्ठ और रथों द्वारा मन्त्रों के सामने जाने वाले जो हैं उनका स्तोत्र करता हूँ ॥ ४ ॥ हे पुरुहन्मन् ! उन इन्द्र की सत्ता अन्तरिक्ष और स्वर्ग में भी है। उनका क्रीड़ा के लिये हाथ में ग्रहण किया हुआ वज्र सूर्य के समान दर्शनीय है। इस यज्ञ में तुम उन इन्द्र को ही सुशोभित करो। ॥

१०६ सूक्त

(ऋषि—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ। देवता—इन्द्रः। छन्द— उष्णिक्)

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् ।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥
तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥
त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥

तुम्हारा इन्द्रात्मक बृहद् बल बुद्धि से वरण करने योग्य है। वह कर्म रूपी वज्र को तीक्ष्ण करता है ।१॥ हे इन्द्र ! आकाश तुम्हारा वीर्य है, जल और पर्वत तुम्हें प्रेरित करते हैं और पृथिवी तुम्हारे द्वारा ही अन्न की वृद्धि करती है ॥२॥ हे इन्द्र ! सूर्य, वरुण, यम और विष्णु तुम्हारे प्रशंसक हैं। वायु का अनुगत बल तुम्हें हर्ष देता है ॥३॥

१०७ सूक्त

(ऋषि—वत्सः; बृहद्दिवोऽथर्वा; ब्रह्मा; कुत्सः। देवता—इन्द्रः सूर्यः। छन्द—गायत्री; त्रिष्टुप्; पङ्क्तिः)

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः। समुद्रायेव सिन्धवः ॥१॥
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत्। इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥२॥
वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा। शिरो बिभेद वृष्णिना ॥३॥
तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥४॥
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि स ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥५॥
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥६॥
यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥७॥
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥८॥
नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥९॥
स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम्।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥१०॥

समुद्र के लिये जैसे नदियाँ झुक कर चलती हैं, वैसे ही इन कर्मवान् इन्द्र के लिये समस्त प्रजायें झुकती हैं ॥ १ ॥ आकाश-पृथिवी को इन्द्र ने चर्म के समान लपेट लिया था, इन्द्र का यह महान् पराक्रम है ॥ २ ॥ क्रोधित वृत्र के शिर को इन्द्र ने अपने शतपर्वा एवं शोणित वर्षक वज्र द्वारा काट डाला था ॥ ३ ॥ यह इन्द्र बलवान् तथा धनवान हैं, भुवनों में उत्कृष्ट हैं, उत्पन्न होते ही शत्रुओं का वध करते हैं, इनके प्रकट होते ही इनकी रक्षक शक्तियाँ बलवती हो जाती हैं ॥ ४ ॥ स्थावर जंगम जगत ब्रह्म में लीन हो जाता है, बल द्वारा प्रवृद्ध शत्रु दासों को त्रास देता है। युद्धों में वैतनिक सैनिक उन इन्द्र की ही प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥ यह वीर जन्म, संस्कार और युद्ध की दीक्षा लेने के कारण त्रिजन्मा कहाते हैं, उन वीरों को स्वादिष्ट पदार्थों से सम्पन्न करो। हे इन्द्र! तुम वीरों में प्रविष्ट होकर संग्राम में तत्पर होओ ॥ ६ ॥ हे वीर! तुम प्रत्येक युद्ध में धनों को जीतते हो। यदि ब्राह्मण तुम्हारी स्तुति करे तो उन्हें बली बनाओ। सुख के अवसर पर दुःख देने वाले पुरुष तुम्हें प्राप्त न हों ॥ ७ ॥ तुम्हारे द्वारा ही रणक्षेत्र हम विपक्षियों को मरवा डालते हैं। मैं अपने तप द्वारा सिद्ध हुये वचनों से तुम्हारे शस्त्रों को प्रेरित करता और पक्षी के समान वेग वाले तुम्हारे बाणों को मन्त्रों के द्वारा तीक्ष्ण करता हूँ ॥ ८ ॥ जिस घर में अन्न द्वारा पालन हुआ है, जिसे श्रेष्ठ प्राणियों ने धारण किया है उस घर में माता द्वारा शक्ति स्थापित हो, फिर इस घर में सब शोभन पदार्थों को लाओ ॥ ९ ॥ हे स्तोता! परम तेजस्वी, विचरणशील, श्रेष्ठ स्वामी इन्द्र की स्तुति करो। यह पृथिवी रूपी इन्द्र इस यज्ञ स्थान में व्यस्त हो रहे हैं ॥ १० ॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूपमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥ ११ ॥
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥१२॥
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥ १३ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥१४॥
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥१५॥

यह राजा स्वर्गाधिपति इन्द्र के लिये स्तोत्रों को करता हुआ स्वर्ग की कामना करता है। वह इन्द्र मेघ के जल की वृष्टि करते हुये संसार को जल से पूर्ण करते हैं ॥ ११ ॥ महर्षि अथर्वा ने अपने को इन्द्र मानते हुये कहा—"पाप-रहित मातरिश्वरी इसे प्रसन्न करती हुई बल-वृद्धि करती हैं ॥१२॥ यह रश्मिवंत इन्द्र सब दिशाओं की ओर उठते हुये अपने प्रकाश से दिन को प्रकट करते हैं और सब अन्धकारों और पापों से पार होते हैं ॥ १३ ॥ रश्मियों का पूजनीय समूह मित्र, वरुण और अग्नि के चक्षु रूप से उदित हो रहा है। यह सूर्य ही प्राणियों के आत्मा हैं और अपनी महिमा से आकाश पृथिवी और अन्तरिक्ष को पूर्ण करते हैं ॥ १४ ॥ पति के पत्नी के पीछे जाने के समान सूर्य भी इन उषाओं के पीछे जाते हैं। उस समय भद्र पुरुष देव-कार्य में दिन को लगाते हुये सूर्य के निमित्त श्रेष्ठ कर्मों को करते हैं ॥ १५ ॥

१०८ सूक्त

(ऋषि—नृमेधः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री; उष्णिक्)

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १ ॥
त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥
त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

हे सैकड़ों कर्म करने वाले इन्द्र ! हमको धन, बल और शत्रुओं को हराने वाली सन्तान दो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे पिता और माता हो, अतः

हम तुमसे सुख माँगते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम हविरन्न की कामना करने वाले हो। मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। मुझे वीरों से युक्त धन प्रदान करो ॥ ३ ॥

१०६ सूक्त

(ऋषिः—गोतमः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—पङ्क्ति)

स्वा गोरित्था विपूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥
ता यस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥२॥
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥३॥

स्तोत्र रूप वाणियाँ विपुवत् यज्ञ के स्वादिष्ट मधु को इस प्रकार पीती हैं, जिससे रात्रियों तक इन्द्र से सुसंगत होकर वह इन्द्र को हर्षित करती रहें। हे यजमान ! इसके पश्चात् तू अपने राज्य पर सुशोभित होगा ॥१॥ पृश्नियाँ इस सोम को पक्व कर रही हैं। इन्द्र की यह गौएँ इन्द्र के बाणों और वज्र की प्रेरणा करती हैं। इन रात्रियों के पश्चात् हे यजमान ! तू अपने राज्य पर प्रतिष्ठित होगा ॥ २ ॥ वाणियाँ हवि के द्वारा इन्द्र को पूजती हैं और यजमान के महान् व्रत इन्द्र में मिलते हैं। इन रात्रियों के पश्चात् हे यजमान ! तू अपने राज्य पर प्रतिष्ठित होगा ॥ ३ ॥

११० सूक्त

(ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१॥
यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥२॥
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञ मत्नत । तमिद् वर्धन्तु नो गिरः ॥३॥

सेवा के योग्य इस यज्ञ में निष्पन्न सोम से युक्त हमारी वाणियाँ स्तुति करती हुई इन्द्र को पूजें ॥ १ ॥ सब विभूतिमयी सभायें जिन्हें प्राप्त होती हैं, उन इन्द्र को सोम के संस्कारित होने पर आहूत करते हैं ॥ २ ॥ इस ज्ञानदायक यज्ञ को त्रिकद्रुकों ने प्रारम्भ किया, उसे हमारी वाणियाँ प्रवृद्ध करें ॥ ३ ॥

१११ सूक्त

(ऋषि—पर्वतः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १ ॥
यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।
अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥ २ ॥
यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! त्रित में यज्ञ में, आप्त्य और मरुत् में जो तुम हर्षित होते हो, वह जलमय सोम से ही हर्षित होते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम दूरस्थ समुद्र अथवा हमारे यज्ञ में हर्ष को प्राप्त होते हो, वह जलमय सोम से ही हर्षित होते हो ॥ २ । हे इन्द्र ! तुम सोम के संस्कारक यजमान की वृद्धि करने वाले हो, जिसके उक्थ में तुम विहार करते हो, वह जलयुक्त सोम से ही करते हो ॥ ३ ॥

११२ सूक्त

(ऋषिः—सुकक्षः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—गायत्री)

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ १ ॥
यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत् सत्यमित् तव ॥२॥
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्तां इन्द्र गच्छसि ॥३॥

हे सूर्यात्मक इन्द्र ! तुम वृत्र का नाश करने वाले हो, जिस समय उदित होते हो, वह समय तुम्हारे ही आधीन है ॥ १ ॥ हे इन्द्र तुम जिसे चाहते हो कि यह मृत्यु को प्राप्त न हो तो वह सत्य ही होता है ॥ २ ॥ जो सोम पास या दूर कहीं भी संस्कृत होते हैं, उनके पास इन्द्र स्वयं ही पहुँच जाते हैं ॥ ३ ॥

११३ सूक्त

(ऋषि—भर्गः, । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथः)

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥
तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

इन्द्र दोनों लोकों में हितकर कार्य करने वाले हैं, वे इन्द्र हमारे वचन को मानने से सुनें कि इन्द्र देवता सोम पीने को आ रहे है ॥ १ ॥ वे इन्द्र अभीष्टों के वर्षक और अपने तेज से तेजस्वी हैं । आकाश-पृथिवी को तनू करते हैं । तुम उपमान को प्राप्त होते हो और सोम की कामना करते हो ॥ २ ॥

११४ सूक्त

(ऋषिः—सौभरिः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—गायत्री.)

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥
नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम प्रकट होते ही संभक्ति करते हो और युद्ध में 'आपित्व' की कामना करते हो । तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम्हें 'सुराशु' पुष्ट करते हैं । तुम जब गर्जनशील होते हो तब पिता के समान आहूत किये जाते हो । तुम धन वाले मनुष्य को सख्य भाव के लिये प्राप्त करते हो ॥ २ ॥

११५ सूक्त

(ऋषि--वत्सः । देवता—इन्द्रः । छन्द--गायत्री)

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्यइवाजनि ॥ १ ॥
अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥ २ ॥
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुऋ॑षयो ये च तुष्टुवुः ।
ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥

मैं सूर्य के समान उत्पन्न हुआ हूँ और पिता ब्रह्मा की बुद्धि को मैंने पा लिया है ॥ १ ॥ मैं प्राचीन स्तोत्र द्वारा वाणियों को सुसज्जित करता हुआ इन्द्र को बली करता हूँ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जिन ऋषियों ने तुम्हारी स्तुति की है या जिन्होंने तुम्हारी स्तुति नहीं की, इससे उदासीन रहते हुए मेरी स्तुति द्वारा ही वृद्धि को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

११६ सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती)

मा भूम निष्टयाइवेन्द्र त्वदरणाइव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोपासो अमन्महि ॥ १ ॥
अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सुकृत् सुते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हम तुम्हारा ऋण न चुका सकने के कारण दुष्ट शत्रु के समान न माने जायँ । तुम्हारे द्वारा त्याज्य वस्तुओं को हम भी दावानल के समान त्याज्य समझें ॥ १ ॥ हे वृत्रहन् ! हम तुम्हारी वृद्धि के द्वारा सुखी हों । हम अपने को नाश से रहित मानें ॥ २ ॥

११७ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—गायत्री)

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।

सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ।
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥
बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! जो सोम पाषाण से संस्कारित किया है, वह तुम्हें हर्षित करे। पाषाण संस्कार करने वाले के हाथ में स्थित है। हे इन्द्र ! तुम इस सोम को पीओ ॥१॥ हे हर्यश्ववान इन्द्र ! तुम अपने जिस शोभन मद से मेघ को चीरते हो, वह तुम्हें हर्षित करे ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जिस यश को वसिष्ठ पूजते हैं उस मन्त्र समूह वाली मेरी वाणी को यज्ञ में स्वीकार करो ॥ ३ ।

११८ सूक्त

(ऋषि—भर्ग; मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बार्हतः प्रगाथः)

शग्ध्यू षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥
पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ २ ॥
इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामहे इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ३ ॥
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! मेरी याचना है कि मैं तुम्हारे सब रक्षा-साधनों से यश और सौभाग्य प्राप्त करने के लिये तुम्हारा अनुयायी होऊँ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम नगर वासियों को अश्व रूप हो और धन को अपरिमित करते हो। तुम गौओं के बढ़ाने वाले, हिरण्यमय और अहिंसित दान वाले हो। मैं तुम्हारे आश्रय में जिन वस्तुओं के लिये आया हूँ उन वस्तुओं को मुझ में प्रविष्ट करो ॥ २ ॥ हम इन्द्र की सेवा करने वाले संग्राम उपस्थित होने पर धन प्राप्ति

के निमित्त इन्द्र को आहूत करते हैं ॥ ३ ॥ इन्द्र ने सूर्य को तेजोमय किया है और आकाश-पृथिवी को अपनी महिमा से विस्तृत किया है। यह इन्द्र सब भुवनों में आश्रित होते हैं। यह सोम इन्द्र के लिए निष्पन्न किये जाते है ॥ ४ ॥

११६ सूक्त

(ऋषि—आयुः; श्रुष्टिगुः। देवता—इन्द्रः। छन्द—बार्हतः प्रगाथः)

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥ २ ॥

हे ऋत्विजो ! मैंने प्राचीन स्तोत्र से इन्द्र की स्तुति की है। अब तुम भी यज्ञ की प्राचीन ऋचाओं से स्तुति करो। स्तोताओं की बुद्धि मंत्रों से सम्पन्न हो गई है ॥ १ ॥ इस यजमान के लिये धन बढ़ता और बल प्राप्त होता है। इन इन्द्र के लिये सोम सिद्ध होते हैं। शीघ्रता करने वाले ब्राह्मण पूजा-मंत्र की प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

१२० सूक्त

(ऋषि—देवातिथिः। देवता—इन्द्रः। छन्द—बार्हतः प्रगाथ)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥
यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम चारों दिशाओं में स्थित मनुष्यों द्वारा आहूत होते हो। तुम पूर्ण रूप से शत्रु के नाश करने वाले हो। तुम इस यजमान के लिये आओ ॥१॥ हे इन्द्र ! कण्व गोत्री ऋषि तुम्हें हवि प्रदान करते हैं। तुम रुम, रुशम और श्यावक में एक साथ आनन्द प्रकट करते हो। तुम यहाँ आओ ॥ २ ॥

१२१ सूक्त

(ऋषि—देवातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बार्हतः प्रगाथः)

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥

हे वीर इन्द्र ! हम तुम्हें बिना दुही गौओं के समान प्रेरित करते हैं । तुम संसार के ईश्वर और स्वर्ग के द्रष्टा हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! कोई पार्थिव और दिव्य प्राणी तुम्हारे समान नहीं है । हे इन्द्र ! हम गौ, अश्व और अन्न की कामना से तुम्हें आहूत करते हैं ॥ २ ॥

१२२ सूक्त

(ऋषि—शुनःशेपः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षमन्तो याभिर्मदेम ॥१॥
आ घ त्वावान् त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।
ऋणोरक्ष न चक्र्योः ॥ २ ॥
आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥

हम यज्ञ में इन्द्र के आगमन करने पर अन्न की विभिन्न विभूतियों से सम्पन्न होते हुये सुख पावें ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी दया प्राप्त करने वाला पुरुष स्तोताओं के अनुग्रह से चलने वाले रथ के दोनों पहियों के अक्ष के समान दृढ़ हो जाता है ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा उपासक तुम्हारे बल को प्राप्त करता हुआ चलने वाले रथ के अक्ष के समान दृढ़ होता है ॥ ३ ॥

१२३ सूक्त

(ऋषि—कुत्सः । देवता—सूर्यः । छन्द—त्रिष्टुप्)

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।

यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ १ ॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ २ ॥

ये सूर्य अपनी महिमा से रश्मियों को अपने में समेट लेते हैं तो फैले हुये सब कार्यों को समेट लेते हैं और तब अन्धकार को सब ओर से समेटती हुई पृथिवी वस्त्र को अर्पण करती है ॥ १ ॥ मैं मित्रावरुण की महिमा को कहता हूँ ये सूर्य रूप से स्वर्ग में अपना रूप बनाते हैं, उनका तेज प्रकाशमान है। इनका दूसरा तेज काले वर्ण का है, उसे सूर्य रश्मियाँ भरण करती हैं ॥ २ ॥

१२४ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः ; भुवनः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री; त्रिष्टुप्)

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥
इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ ३ ॥
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्व मभिरक्षमाणाः ॥ ५ ॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्व धामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ ॥

ये सदा बढ़ाने वाले मित्र किस रक्षा-साधन द्वारा हमारी रक्षा करेंगे। वह रक्षात्मक वृत्ति किस प्रकार पूर्ण होगी ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हर्षजनक हवियों में सोम रूप अन्न का कौन-सा अंश श्रेष्ठ है, जिसके द्वारा प्रसन्न होते हुए

तुम धन को भक्तों में बांट देते हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम, हम स्तुति करने वालों के सखा रूप हो । तुम हमारे सामने सैकड़ों बार आविर्भूत हुये हो ॥ ३ ॥ इस यज्ञ को ऋत्विज और सब देवताओं सहित इन्द्र सम्पन्न करें, आदित्यवान इन्द्र हमारे देह और सन्तान को सशक्त करें ॥ ४ ॥ देवत्व की रक्षा के निमित्त जिन देवता ने राक्षसों को नष्ट किया, वे इन्द्र आदित्यों और मरुतों सहित हमारे शरीरों की रक्षा करें ॥ ५ ॥ वे देव अपने बल से सूर्य को सबके सामने उदय करते हैं । उन्होंने पृथिवी को हवियुक्त किया है । हम देवताओं के सेवक उन्हीं के द्वारा अन्न प्राप्त करें और वीरों से सुसंगत रहते हुए सौ वर्ष की आयु प्राप्त करें ॥ ६ ॥

१२५ सूक्त

(ऋषि—सुकीर्तिः । देवता—इन्द्रः; अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ॥ १ ॥
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥ २ ॥
नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥ ३ ॥
युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥४॥
पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥५॥
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ६ ॥
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तुम पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं से हमारे शत्रुओं को रोको जिससे हम तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख से सुखी हो सकें ॥ १ ॥ हे अग्ने ! जैसे जौ सम्पन्न कृषक बहुत से जौओं को मिलाकर काटते हैं वैसे ही हवि से संयुक्त हुई कुशाओं का सेवन करो ॥ २ ॥ युद्धों में हमको अन्न नहीं मिला, फसलों के समय भी आवश्यकतानुसार अन्न प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये मित्र इन्द्र की कामना करते हुए हम अश्व, गौ और अन्न की याचना करते हैं ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! नमुचि राक्षस से युद्ध होते समय तुमने रमण योग्य सोम को पीकर इन्द्र की रक्षा की ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! माता-पिता द्वारा पुत्र का पालन करने के समान तुमने अपने शत्रु-नाशक कौशल से इन्द्र की रक्षा की है। हे इन्द्र ! तुमने सुशोभित सोम को पिया है। तुम्हें सरस्वती अपनी विभूतियों से सींचे ॥ ५ ॥ रक्षक एवं ऐश्वर्यवान् इन्द्र अपने रक्षा साधनों से हमको सुख दें। वह बलवान इन्द्र हमारे शत्रुओं को मार कर, हमारे भय को दूर करें। हम सुन्दर प्रभाव पूर्ण धन से सम्पन्न हों ॥ ६ ॥ रक्षक इन्द्र दूर से हमारे शत्रुओं को भगावें। उन यज्ञ के योग्य इन्द्र की कृपा बुद्धि में रखते हुये हम उनकी मङ्गलमय भावना को सदा प्राप्त करते रहें ॥ ७ ॥

१२६ सूक्त

(ऋषि—वृषाकपिरिन्द्राणी च। देवता—इन्द्रः। छन्द—पंक्ति)

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१॥
परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२॥
किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद् वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३॥
यमिमं त्व वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥४॥

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुपत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५॥
न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत ।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६॥
उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥७॥
किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८॥
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९॥
संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१०॥

वृषाकपिदेव ने इन्द्र को देवता के समान समझा । वे वृषाकपि पुष्टियों के पालक हैं और मेरे मित्र हैं इसलिए मैं इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हूँ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम वृषाकपि से द्रुत वेग वाले हो । तुम शत्रुओं को व्यथित करने में समर्थ हो । तुम जहाँ सोम-पान का साधन नहीं है, वहाँ प्राप्त नहीं होते, इसलिये इन्द्र सबसे बढ़कर हैं । २ ॥ हे इन्द्र ! इन वृषाकपि ने क्यों तुम्हें हरा मृग बनाया है जो तुम इन्हें पुष्टिदायक अन्न प्रदान करते हो । इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम जिन वृषाकपि का पालन करते हो, क्या इसके समान कुत्ता अँगड़ाई लेता है, क्या बराह की कामना वाला कान पर जँभाई लेता है ? इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं ॥ ४ ॥ कपि ने मेरे स्नेहियों को तनू किया और व्यक्ता ने दोषयुक्त किया । दुष्कृत्य में प्रागट्य सुगम नहीं होता, मैं इसके शिर को शब्दवान् करता हूँ । इंद्र सबसे उत्कृष्ट हैं ॥ ५ ॥ मेरी स्त्री न तो सुयाशुतरा है, न सुभसत्तरा है और प्रतीच्यवीयसी तथा सक्थियों को उठाने वाली भी नहीं है, इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं ॥ ६ ॥ हे अम्ब ! मेरा शिर, कांट, सक्थि पक्षी के समान फड़क रहे हैं । जैसा होना होगा,

वैसा हो। इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं ॥ ७ ॥ हे शूरपत्नी ! तू सुन्दर भुजा, सुन्दर उङ्गली, पृथुस्तु एवं पृथु जांघ वाली है। तू क्यों हमें वृषाकपि के सामने हिंसित करती है ? इंद्र सर्वोत्कृष्ट है ।८॥ यह नहुष अपने देह को नष्ट करने की इच्छा करता हुआ मुझे वीर रहित समझता है। परन्तु मैं वीर पति से युक्त हूँ। मेरे पति मरुद्गण के मित्र इन्द्र सर्व श्रेष्ठ हैं ॥ ९ ॥ यज्ञ में पुरुष के साथ नारी होत्र रूप से बैठती है। वह इस प्रकार यज्ञ की रचयित्री है, वह वीरपत्नी इन्द्राणी स्तुति के योग्य है क्योंकि इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १० ॥

इन्द्राणीमासु दारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रिय देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२॥

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रिय काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।१३।

उक्ष्णो हि मे पंचदश साकं पचन्ति विंशतम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।१४।

वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१५॥

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १६॥

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१७॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१८॥

अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१९॥

धन्व च यत् कृन्तत्रं कति स्वित् ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२०॥
पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२१॥
यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्वस्य पुल्वघो मृगः कमगं जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२२॥
पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२३॥

मैं इन्द्राणी को अत्यन्त सोभाग्यशालिनी मानता हूं क्योंकि इनका पति मृत्यु को प्राप्त नहीं होता और न वृद्ध होता है, अन्य नारियों के पति तो मरणधर्मा मनुष्य हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्राणि ! मैं अपने सखा वृषाकपि के सिवाय और कहीं नहीं जाता । इनकी हवि जल से संस्कारित होती है, वे मुझे सब देवताओं में अधिक प्रिय हैं । मैं इंद्र सब देवताओं से उत्कृष्ट हूँ ॥१२॥ हे वृषाकपिरूप सूर्य की पत्नि ! तू सुपुत्रों से सम्पन्न और धन से युक्त हैं । तेरी जल रूपी हवि को यह इन्द्र सेवन करे, क्योंकि वे सबके उत्कृष्ट हैं ॥ १३ ॥ मुझ महान् के पन्द्रह साक बीस का पाक करते हैं मैं उनका सेवन करता हूँ । मेरी कुक्षियाँ पूर्ण हैं । इंद्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१४॥ हे इन्द्र ! तीक्ष्ण सींग वाले बैलों के गौओं में शब्द करने के समान जिनके हृदय में तुम्हारा मन्थ सुख देता है, वही सुख पाता है, क्योंकि इंद्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १५ ॥ सक्थियों में कपृत लटकाने वाला ऐश्वर्य प्राप्त नहीं करता । बैठने की इच्छा वाले जिसका रोमश अंगड़ाई लेता है, वह सामर्थ्यवान् होता है । इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १६ ॥ जिसका रोमश बिजृम्भन करता है, वह असमर्थ होता है और जिसका कपृत् सक्थियों में लटकता है वह सामर्थ्य वाला होता है इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! वृषाकपि ने अपने पास नष्ट हुये पद्-धन को प्राप्त किया और असि, सूना, नवीन चरु को ग्रहण किया, वह इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥ मैं कर्मवान् को खोजता आता हूँ । मैं निष्पन्न सोम को पी रहा हूँ । इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥ मरुस्थल और अन्तरिक्ष का वियोजन

कितना है ? हे वृषाकपे ! तुम पास से स्थान से घरों के पास आगमन करो ॥२०॥ हे वृषाकपे ! तुम उदित होते ही स्वप्न को नष्ट कर देते हो और अस्त को भी प्राप्त होते हो। तुम संसार में सर्वश्रेष्ठ हो, अतः पुनः उदित होओ। फिर हम विश्व के हित में सुन्दर कर्मों की योजना बनावें ॥२१॥ हे वृषाकपे ! तुम उत्तर में रहते हुये भुवनों की प्रदक्षिणा करते हुए छिपते हो, तब तुम्हारे घर में पहुँचने पर सब लोक अंधकार से विस्मत हुये कहते हैं कि सूर्य कहाँ गए ? वे प्राणियों को मोहने वाले सूर्य सर्व श्रेष्ठ हैं ॥२२॥ मानवी पशु ने बीस का उद्भव किया, जिसका उदर रोगी था उसके लिए भद्र हुआ। इन्द्र सर्व महान् हैं ॥ २३ ॥

१२७ सूक्त

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥१॥

उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः ॥२॥

एषा इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥३॥

वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः।
नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥४॥

प्र रेभासो मनीषा वृषा गावइवेरते।
अमोतपुत्रका एषाममोत गाइवासते ॥५॥

प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम्।
देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् ॥६॥
राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥७॥
परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन्।

कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥८॥
कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् ।
जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥९॥
अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् ।
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥१०॥
इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।
ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् पृणादरिः ॥११॥
इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।
इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ॥१२॥
नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोपती रिषत् ।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥१३॥
उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम् ।
वनाद्धिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥ १४ ॥

हे नराशंस, कौरम ! स्तोताओं के विषय में सुनो कि हम साठ सहस्र दक्षम प्रदान करते हैं ॥१॥ जिसके देह-रथ के बीच ऊँट वहन करने वाले हैं, वह आकाश को छूते हुए हीडन करते हैं ॥२॥ अन्न प्राप्ति के निमित्त मैं सौ निष्क, तीन सौ अश्व, दस सहस्र धेनु और दस मालाएं देता हूं ॥ ३ ॥ हे स्तुति करने वालो ! जैसे पक्व फल युक्त वृक्ष पर बैठा पक्षी मधुर शब्द करता है, वैसे ही तुम भी करो । हाथ में ग्रहण किये हुये छुरे के समान, कर्म के समाप्त होने पर भी तुम्हारी जीभ न रुके ॥४॥ यह मनीषी स्तोता वीर्यवान वृषभों के समान वर्तमान हैं । इनके गृह में पुत्र, गौ आदि हैं ॥ ५ ॥ हे स्तोता ! बाण से जैसे मनुष्य रक्षित रहता है वैसे ही वाणी से तू रक्षित हो । तू गौ और धन प्राप्त कराने वाली बुद्धि को ग्रहण कर ॥ ६ ॥ यदि यह देवता पात्रा के मनुष्यों का अतिक्रमण करें, तो वैश्वानर की मङ्गलमयी स्तुति करनी चाहिये ॥७॥ देवता मङ्गल करने वाला है, आसन को विस्तृत करता है । ऐसे

बढ़ाता हुआ कौरव्य-पति अपनी पत्नी से कहता है ॥८॥ परीक्षित के राज्य में पत्नी अपने पति से पूछती है कि परिश्रुत दही, मंथा में तेरे निमित्त कितना लाऊँ ॥६॥ उदर रूप बिल को पक्व जौ प्राप्त होता है। राजा परीक्षित के राज्य में इस प्रकार मनुष्य सुखी है ॥१०॥ स्तुति करने वाले के प्रति इन्द्र बोले—उठ, खड़ा हो। मनुष्यों में घूम। तू मेरे अनुग्रह से कर्म करने वाला हो। तेरा शत्रु तेरे पास अपना सर्वस्व छोड़ दे॥ ११॥ यहाँ मनुष्य और अश्व उत्पन्न हों, गौएं प्रसव करें। सहस्र संख्यक दक्षिणाओं के दाता पूषा यहाँ विराजमान हों॥ १२॥ हे इन्द्र! गौएं नष्ट न हों, इनका पालक हिंसित न हो। शत्रु और चोर का भी इन पर प्रभाव न हो ॥ १३॥ हे इन्द्र! तुम हमको सूक्त द्वारा हर्षित करते हो। हम तुम्हें मंगलमयी वाणी से प्रसन्न करते हैं। तुम हमारी वाणियों को अन्तरिक्ष से सुनो। हम कभी नाश को प्राप्त न हों॥ १४।

१२८ सूक्त

यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः।
सूर्यं चामू रिशादसस्तद् देवाः प्रागकल्पयन् ॥ १॥
यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखायं दुधूर्षति।
ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥ २॥
यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः।
तद् विप्रो अब्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः॥ ३॥
यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः
धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥ ४॥
ये च देवा अयजन्ताथो ये च पराददिः।
सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ॥५॥
यो नाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः।
अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ६॥

य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः ।
सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ७ ॥
अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः ।
अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु समिता ॥ ८ ॥
सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः ।
सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु समिता ॥ ९ ॥
परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः ।
अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ १० ॥

अभिषववर्त्ता, यज्ञवर्त्ता, सभ्य पुरुष सूर्य लोक को भेद कर ऊर्ध्व लोकों में जाता है। देवताओं ने यह बात पहले कल्पित करली थी ।१। मित्रका दुर्घूषक, जामि से विस्तारक, अप्रचेता, ज्येष्ठ अघगाक् कहता है ॥२॥ जिस ब्राह्मण का धर्मशील पुत्र होता है, वह ब्राह्मण अभीष्ट वचन को कहने में समर्थ है, वह गधर्व कहाता है ॥ ३ ॥ जो वणिक् देवताओं को हविर्दान करने वाला नहीं होता, वह शाश्वत धीरों का अप क् होता है-ऐसा सुनते हैं ॥ ४ ॥ जो स्तोता यज्ञ एवं पगदान आदि करने वाले हैं, वे सूर्य के समान ही स्वर्ग में गमन करते हैं। इन्द्र श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ जो अनभ्यक्त, अनक्ताक्ष अमणिव, अहिरण्यव तथा अब्रह्मा है वह ब्रह्मपुत्र स्तोता कल्पों में सम्मित है ॥ ६ ॥ जो आक्ताक्ष, सुभ्यक्त, सुहिरण्यव, सुमणि, सुब्रह्मा है वह ब्रह्मपुत्र तोता कल्पों संम्मित है ।७।' अप्रपाणा, वेशन्ता, रेवा, अप्रतिदिश्य, अयभ्या, कन्या, कल्याणी तोता कल्पों में सम्मित है ॥ ८ ॥ सुप्रपाणा वेशन्ता, रेवा, सुप्रतिदिश्य सुयभ्या, कन्या, कल्याणी तोता कल्पों में सम्मित है ।९॥ परिवृक्ता, महिषी स्वस्त्या, युधिंगम अनाशुर और आयामी तोता कल्पों में सम्मित है ॥ १० ॥

वावाता च महिषी स्वस्त्या युधिंगमः ।
श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ११ ॥
यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः ।
विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यज्ञाय कल्पते ॥ १२ ॥

त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः ।
त्व रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ॥ १३ ॥
यः पर्वतान् व्यदधाद यो अपो व्यगाहथाः ।
इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तुते । १४ ॥
पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैःश्रवसमब्रुवन् ।
स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥ १५ ॥
ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते । १६ ॥

वावाता, महिषी, स्वस्त्या, युद्धिगम, श्वाशुर और आयामी तोता कल्पों में सम्मिलित हैं ॥११॥ हे इन्द्र ! तुमने दाशराज के पुरुष को विगाहित किया था, और तुम सबके लिए रूप रहित हुये थे । तुम रक्ष के साथ कल्पित होते हो ॥ १२ ॥ हे वर्षक इन्द्र ! तुम सूर्य रूप में अक्षु को झुकाते हो और रोहिण को विस्तृत मुख वाला करते हो । तुमने ही वृत्र का सिर छेदन किया था ॥१३॥ जिन्होंने पर्वतों को स्थिर किया और जल का अवगाहन किया, जो वृत्रहन हैं, उन इन्द्र को नमस्कार है ॥१४॥ हर्यश्वों की पीठ पर द्रुतगति को प्राप्त हुए इन्द्र के संबंध में उच्चैश्रवा से कहा—'हे अश्व ! तेरा कल्याण हो । तू माला से सुशोभित विजयी इन्द्र को चढ़ाता है ॥ १५ ॥ हे इन्द्र ! श्वेत अश्व तुम्हारे दक्षिण की ओर जुड़ते हैं. उन पूर्वाश्रों पर चढ़ने वाले तुम देवताओं द्वारा नमस्कारों के योग्य तथा महिमा सम्पन्न हो ॥ १६ ॥

१२९ सूक्त

एता अश्वा आ प्लवन्ते ॥ १ ॥
प्रतीपं प्राति सुत्वनम् ॥ २ ॥
तासामेका हरिक्निका ॥ ३ ॥
हरिक्निके किमिच्छसि ॥ ४ ॥
साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥ ५ ॥
क्वाहतं परास्यः ॥ ६ ॥
यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः ॥ ७ ॥
परि त्रयः ॥ ८ ॥
पृदाकवः ॥ ९ ॥
शृङ्गं धमन्त आसते ॥ १० ॥

अयन्महा ते अर्वाहः ॥ ११ ॥ स इच्छकं सघाघते ॥ १२ ॥
सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति ॥१३॥ पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥ १४ ॥
पल्प बद्ध वयो इति ॥१५॥ बद्ध वो अघा इति ॥१६॥
अजागार केविका । १७ ॥ अश्वस्य वारो गोशपद्य के । १८॥
श्येनीपती सा ॥ १९ ॥ अनामयोपजिह्विका ॥ २ ॥

यह अश्वा आती है ॥१॥ सुरथा प्रतीप को सम्पन्न करता है ।।२।। उनमें से एक हरिक्निका है ॥३॥ हे हरिक्निके ! तेरी क्या इच्छा है ? ॥ ४ ॥ साधु पुत्र को हिरण्य ॥५॥ परास्य प्रहिमित रूप से वहाँ है ॥ ६ ॥ जिस स्थान पर यह तीन शिंशपा हैं ।।७।। सब ओर तीन हैं ॥८॥ रूपं ॥ ९ ॥ सीगों को धमन्त करते बैठे हैं ॥१० यह दिन तुम्हारा महान् अश्व है ॥११॥ वह कामना वाले का सघाधन करने वाला है ॥ १२ ॥ गोमीद्या गोगतियों के लिए सघाध करता है ॥ १३ ॥ पुरुष और पृथिवी तुझे निमिच्छ करते हैं ॥ १४ ॥ हे बद्ध पल्प ! यह तेरा अन्न है ॥ १५ ॥ हे बद्ध ! तेरी अघा है । १६॥ केविका जागृत न हुई ॥१७॥ गोशपद्यक में अश्व का बार है ॥१८॥ वह श्येनीपति है ॥ १९ ।' वह उपजीविका अनामय है ॥ २० ॥

१३० सूक्त

को अर्य बहुलिमा इषूनि ॥ १ ॥ को असिद्याः पयः ॥ २ ॥
को अर्जुन्याः पयः ॥ ३ ॥ कः कार्ष्ण्याः पयः ॥ ४ ॥
एत पृच्छ कुहं पृच्छ ॥ ५ ॥ कुहाकं पक्वकं पृच्छ ॥६॥
यवानो यतिस्वभिः कुभिः ॥७॥ अकुप्यन्तः कुपायकुः ॥८॥
आमणको मणत्सकः ॥ ९ ॥ देव त्वप्रतिसूर्य ॥ १० ॥
एनश्चिपङ्क्तिका हविः ॥११॥ प्रदुद्रुदोमघाप्रति ॥१२॥
शृङ्ग उत्पन्न ॥ १३ ॥ मा त्वाभि सखानो विदन् ॥१४॥
वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥ १५ ॥ इरावेदुमयं दत ॥ १६ ॥
अथो इयन्नियन्निति ॥ १७ ॥ अथो इयन्निति ॥ १८ ॥

अथो इवा अस्थिरो भवन् ॥ १९ ॥ उयं यकांशलोकका ॥ २० ॥

बहुत से वाणों को अपने अधिकार में कौन रखता है ? ॥ १ ॥ अरिश्चापय कौन सा है ? ॥ २ ॥ अर्जुन्यापय कौन सा है ? ॥ ३ ॥ कार्ष्णेय पय कौन सा है ॥ ४ ॥ इससे पूछ, कुह से पूछ ॥ ५ ॥ कुह्याक पक्वक से पूछ ॥ ६ ॥ यति के समान पृथिवियों से युक्त हुआ ॥ ७ ॥ कुपाय्कु क्रोधित हो गया ॥ ८ ॥ आमणक मणत्सक ॥९॥ हे सूर्यदेव ! ॥ १० ॥ एनश्चिपंक्ति वाला हवि ॥ ११ ॥ प्रदद्रुदो मघाप्रति ॥ १२ ॥ शृङ्ग उत्पन्न ॥ १३ ॥ मेरा मित्र तुझे और मुझे मिले ॥ १४ ॥ बधा के पुत्र को मिलते हैं ॥ १५ ॥ हे इरावेदुमय दत्त ! ॥ १६ ॥ इसके पश्चात् यह, ऐसे हैं ॥ १७ ॥ फिर यह इस प्रकार है ॥ १८ ॥ फिर श्वा अस्थिर होता है ॥ १९ ॥ उय यकांशलोकका ॥ २० ॥

१३१ सूक्त

आमिनोनिति भद्यते ॥१॥ तस्य अनु निभञ्जनम् ॥ ॥
वरुणो याति वस्वभिः ॥३॥ शतं वा भारती शवः ॥४॥
शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः ।
शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ॥५॥
अहुल कुश वर्त्तक ॥६॥ शफेनइव ओहते ॥७॥
आय वनेनती जनी ॥८॥ वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ॥९॥
इदं मह्यं मदूरिति ॥१०॥ ते वृक्षाः सह तिष्ठति ॥११॥
पाक बलिः ॥ १२ ॥ शक बलिः ॥ १३ ॥
अश्वत्थ खदिरो धवः ॥ १४ ॥ अरदुपरम ॥१५ ॥
शयो हतइव ॥ १६ ॥ व्याप पूरुषः ॥ १७ ॥
अदूहमित्यां पूपकम् ॥ १८ ॥ अत्यर्धर्चं परस्वतः ॥ १९ ॥
दौव हस्तिनो हती ॥ २० ॥

ग्रापिनोनिति कहते हैं ॥ १ ॥ उसके पश्चात् निभंजन हैं ॥ २ ॥ रात्रि के साथ वरुण जाते हैं ॥ ३ ॥ वाणी के शत संख्यक बल । ४ ॥ सौ स्वर्णिम अश्व, सौ स्वर्णमय रथ, सौ स्वर्णिम कुथ्या सौ स्वर्णिम निष्क हैं ॥ ५ ॥ ग्रहलकुश वर्त्तक ॥ ६ ॥ शफ द्वारा वहन करता है ॥ ७ ॥ ग्राय वनेनती जनी ॥ ८ ॥ वनिष्ठा नाय ग्रहण की जाती है ॥ ९ ॥ यह मुझे मुदित करता है ॥ १० ॥ वह वृक्षों में स्थित होता है ॥ ११ ॥ पक्व बलि ॥ १२ ॥ शक बलि ॥ १३ ॥ पीपल, खदिर धौ ॥ १४ ॥ विराम को पा ॥ १५ ॥ शयन कर्त्ता मृतक के समान ॥ १६ ॥ पुरुष व्याप्त है ॥ १७ ॥ मैं पूगा का दोहन करता हूँ ॥ १८ ॥ परस्वान मृग को लांघ कर ग्रर्धचं प्रवृत्त हो ॥ १९ ॥ हाथी की हस्तियों को दुह ॥ २० ॥

१३२ सूक्त

आदलाबुकमेककम् ॥१॥ अलाबुकं निखातकम् ॥२॥
कर्करिको निखातकः ॥३॥ तद् वात उन्मथायति ॥४॥
कुलायं कृणवादिति ॥ ५ ॥ उग्रं वनिपदाततम् ॥ ६ ॥
न वनिपदनाततम् ॥ ७ ॥ क एषां कर्करी लिखत् ॥ ८ ॥
क एषां दुन्दुभिं हनत् । ९॥ यदीय हनत् कथं हनत् ॥१०॥
देवी हनत् कुहनत् ॥ ११ ॥ पर्यागारं पुनः पुनः ॥ १२ ॥
त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥ १३ ॥ हिरण्य इत्येके अब्रवीत् ॥ १४ ॥
द्वौ वा ये शिशवः ॥ १५ ॥ नीलशिखण्डवाहनः ॥ १६ ॥

फिर एक राम तुरई ॥ १ ॥ रामतुरई खोदने वाला ॥ २ ॥ कर्करी को खोदने वाला ॥ ३ ॥ वायु को उखाड़ता है ॥ ४ ॥ कुलाय करता है ॥ ५ ॥ विस्तृत उग्र की सेवा करता है ॥ ६ ॥ अविस्तार वाले की सेवा नहीं करता ॥ ७ ॥ कर्करी को इनमें से कौन लिखता है ? ॥ ८ ॥ दुन्दुभि को इनमें से कौन मारता है ? ॥ ९ ॥ यह हिंसित करती है तो कैसे हिंसित करती है ? ॥ १० ॥ देवी ने हिंसित किया, बुरी तरह हिंसित किया ॥११॥

वह उसे लाये थे ॥ ६ ॥ हे स्तोता ! उसको उन्होंने ग्रहण किया। उसे तुमने ग्रहण किया। चेतनों को, अज्ञानेतरस को और यज्ञानेतरस को नहीं, विशिष्ठ चेतनों को हम पाते हैं ॥ ७ ॥ तुम श्वेत और आशुपत्वा पद वाली ऋचाओं से युवावस्था प्राप्त करते हो। इन्हें मान शीघ्र पूर्ण करता है ॥ ८ ॥ हे आंगिरस ! आदित्य, वसु, रुद्र सब तुझ पर अनुग्रह करते हैं, तू इस धन को ले। यह धन विशाल; बृहत् विभु और प्रभुता से भी सम्पन्न है ॥ ९ ॥ देवता तुझे प्राण, बल, चैतन्यता देते हुये प्रत्येक अवसर पर प्राप्त होते रहें ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम इहलोक, परलोक दोनों से पार करने वालों के लिये शर्मरी से हवि वहन करो। जिसे अन्न प्राप्त होना कठिन है, उस स्तोता ब्राह्मण को बल प्रदान करो ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! परकटे कबूतर के लिये तुम पके हुये पीलु, अखरोट और बहुत सा जल प्रकट करो ॥ १२ ॥ चर्मरज्जु से बंधा हुआ अरंगर बारम्बार शब्द करता हुआ पृथिवी की स्तुति करता है तथा पृथिवी विहीन स्थान का अपसेध करता है ॥ १३ ॥

१३६ सूक्त

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ १ ॥
यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् ।
विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ॥ २ ॥
यदल्पिकास्वल्पिका कर्कन्धूकेव पद्यते ।
वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ॥ ३ ॥
यद् देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः ।
सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ ४ ॥
महानग्न्य तृप्नद्वि मोक्रदस्थानासरन् ।
शक्तिकानना स्वचमशकं सक्तु पद्यम ॥ ५ ॥
महानग्न्यु लूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् ।

होता विष्टीमन जरितरोऽथामो दैव ॥ ५ ॥
आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।
तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ॥ ६ ॥
तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः ।
अहानेतरसं न वि चेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः ॥ ७ ॥
उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः । उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥ ८ ॥
आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः ।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥ ९ ॥
देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् ।
युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥ १० ॥
त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः ।
विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ॥ ११ ॥
त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते ।
श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः ॥ १२ ॥
अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया ।
इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ॥ १३ ॥

"भुक्", "अभिगत", "शल्", "अपक्रान्त", "फल" अभीप्सित है। हे स्तुति करने वालो ! फिर तुम दुन्दुभि को बजाने वाले दो दण्डों से खेलो ॥ १ ॥ पाँव को जूते में, धान को कोठी में और उत्तमा जनिमा जन्य तथा उत्तमा जनियों को मार्ग में रखे ॥ २ ॥ हे स्तोता ! पृपातक, लौकी, पीपल, ढाक, वट, अपटद्वस्, स्वापर्णशाक, विद्युत और गोशफ के पश्चात् बल से क्रीड़ा कर ॥ ३ ॥ हे अध्वर्यो ! इन दमकते हुये देवताओं के सामने शीघ्र ही मन्त्रोच्चार करो। तुम गौओं के लिये सत्य रूप हो ॥ ४ ॥ पत्नी पूजन करती हुई दिखाई देती है। इसके पश्चात् तुम भयों पर विजय प्राप्त करने की कामना करो ॥ ५ ॥ हे स्तोता ! अङ्गिराओं से दक्षिणा लाये थे, उसे वह लाये थे।

यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवेति ॥ ६ ॥
महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः ।
यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवेति ॥ ७ ॥
महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः ।
यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते ॥ ८ ॥
महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशित पसः ।
इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्प भजेमहि ॥ ९ ॥
महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति ।
अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥१०॥

इस पाप का क्षय करने वाली का कृधु क्षीण हो गया। इसके मुष्क शकुल के समान गोशफ में प्रकम्पित होते हैं ॥ १ ॥ जब स्थूल पस द्वारा मुष्कों का अणु में प्रहार किया गया, तब रेत में गधों के बढ़ने के समान, आच्छादिका में मुष्क प्रवृद्ध होते हैं ॥ २ ॥ जो "कर्कधूका" सदृश अवपदन करने वाली है और जो अल्प से भी अल्प है। वासन्तिक तेज के समान अवात के निमित्त विल्पत में गमन करते हैं ॥ ३ ॥ जब सुन्दर गौ में प्रविष्ट देवता हर्षित होते हैं तब अक्षिभू के समान नारी अलायी जाती है ॥ ४ ॥ महान् अग्नि ऊपर खड़े हुओं को उत्क्रमण न करता हुआ, तृप्ति को प्राप्त होता है। हम दमकते हुओं को शक्ति कानन प्राप्त हो ॥ ५ ॥ महान् अग्नि उलूखल को लाँघती हुई कहने लगी—हे वनस्पते ! जैसे तुझे कूटते हैं, वैसे ही हो ॥६॥ महान् अग्नि ने कहा—तू मिट कर भी बारम्बार उत्पन्न होता है। हे वनस्पते ! जिस भाँति तू पूर्ण होता है, वैसे ही हो ॥ ७ ॥ महान् अग्नि ने कहा—तू नष्ट होकर भी उत्पन्न हो जाता है। जीर्ण अवस्था होकर स्वर्ग में हवि के समान दुही जाती है ॥ ८ ॥ महान् अग्नि का कथन है कि यह पस भले प्रकार उत्तेजित कर दिया गया है। हम फल वाले वृक्ष के सूप में सूप को प्रविष्ट करते हैं ॥ ९ ॥ कृक शब्द वाले पर महान् अग्नि दौड़ते हैं और हमें यह ज्ञात है कि वह मृग के समान शिर के द्वारा धाणिका को हरते हैं ॥१०॥

महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति ।
इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्धयौदनम् ॥ ११ ॥
सुदेवस्त्वा महा नग्नीर्बबाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुसं पीवरो नवत् ॥ १२ ॥
वशा दग्धामिमाङ्गुरिं प्रसृजतोऽग्रतं परे ।
महान् वै भद्रो यभ मामद्धयौदनम् ॥ १३ ॥
विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महथः साधु खोदनम् ।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति ॥ १४ ॥
महान् वै भद्रो विल्वो महान् भद्र उदुम्बरः ।
महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् । १५ ॥
यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत् ।
तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत् ॥ १६ ॥

महान् अग्नि महानग्न के पीछे दौड़ते हैं। इसकी इन्द्रियों का रक्षक हो। इस ओदन को खा ॥ ११ ॥ महान् अग्नि उत्पीड़न करने वाला, बड़े-बड़ों को कुरेदता है। यह स्थूल या कृश सभी को नष्ट कर देता है ॥ १२ ॥ वशा ने दग्ध उङ्गली की रचना की। अन्य उग्रत को रचते हैं। यह अत्यन्त कल्याणमय है। इस ओदन को खा ॥ १३ ॥ यह महान् अग्नि विशिष्ट पीड़ा दायक है, बड़ों को खोद डालता है। पिंगलि कुमारी कार्य के पश्चात् भाग जाती है ॥ १४ ॥ विल्व और उदुम्बर दोनों ही महान् एवं भद्र हैं। जो महान् ओर से पीड़ित करता है वह बड़े-बड़ों को कुरेदता है ॥ १५ ॥ कुमारी पिंगली यदि वसंत को प्राप्त करे तो तैल-कुण्ड में से अंगुष्ठा के समान कुरेदती हुई इसका उद्धार करे ॥ १६ ॥

१३७ सूक्त

(ऋषि—शिरिम्बिठिः; बुध; वामदेव; ययाति; तिरश्ची द्युतानो वा; सुकक्षः । देवता—अलक्ष्मीनाशनम्; विश्वदेवा ऋत्विक्स्तुतिर्वा, सोमः पवमान; इन्द्रः; मरुतः इन्द्रो बृहस्पतिश्च । छन्द—अनुष्टुप्; जगती, त्रिष्टुप्, गायत्री)

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।

हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ १ ॥
कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥२॥
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ३ ॥
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ ४ ॥
इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥
सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥
अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥७॥
द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥ ८ ॥
अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ ९ ॥
त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ १० ॥
त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥११॥
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १२ ॥
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।

द्युम्नो श्लोकी स सोम्यः ॥ १३ ॥
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः ।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ १४ ॥

जब प्राची मण्डूरधाणिकी हृदय प्रदेश को प्राप्त हुई, तब इन्द्र के सब शत्रु नष्ट हो गए ॥ १ ॥ तुम कपृथ् को ग्रहण करो, मनुष्य कपृत् है । तुम अन्न प्राप्ति के लिए प्रेरणा करो । रक्षा के लिए पुत्रोत्पत्ति करो और सोम पीने के लिए इन्द्र को बुलाओ ॥ २ ॥ इन्द्र के आरोहण के निमित्त मैं वेगवान् अश्व का पूजन करा चुका हूँ । वे इन्द्र हमें सुरभिवान करें और हमको श्रेष्ठ बनाते हुए हमारे जीवन को भी उत्कृष्ट करें ॥ ३ ॥ हर्षप्रद सोम इन्द्र के लिए संस्कारित हो चुके । छन्ने से सोम रस टपक रहा है । हे सोमो ! तुम्हारी शक्ति देवताओं को हर्षित करे ॥ ४ ॥ इन्द्र के लिए सोम का शोधन किया जाता है । संसार के स्वामी वाचस्पति अपने ओज से प्रशंसित होते हैं ॥ ५ ॥ यह सहस्रों धारों वाला गमनशील सोम संस्कारित किया जा रहा है । यह धनेश्वर सोम प्रत्येक स्तोत्र में इन्द्र का सखा होता है । ६ ॥ दश सहस्र रश्मियों से आकृष्ट करने वाले सूर्य पृथिवी पर आकर अपने ओज से खड़े हुए और अपनी शक्ति से पृथिवी को हिंसित करने लगे । तब इन्द्र ने अपने बल से उन्हें वहाँ से हटाकर पृथिवी की रक्षा की और अपने बल से ही जलवती शक्तियों को उन्होंने पृथिवी पर स्थापित किया ॥ ७ ॥ विषम विचरणशील शुक्र को अंशुमती के पास घूमते देखा है । सूर्य के समान वह भी आकाश में निवास करते हैं । मैं उनका आश्रित होता हूँ । वह फल की वर्षा करने वाले युद्ध में तुम्हारा साथ दें । ८ ॥ फिर अपने शरीर को शुक्र ने सूक्ष्म करके अंशुमती के क्रोड में प्रतिष्ठित किया, बृहस्पति की सहायता से इन्द्र ने देवसत्ता न मानने वाली प्रजाओं को मार दिया । ९ ॥ हे इन्द्र ! तुमने आकाश-पृथिवी का स्पर्श किया और उन्हें प्राप्त कर लिया । तुम सप्त अशत्रुओं से उत्पन्न होकर उनके शत्रु हो जाते हो । तुमने विभुत्व वाले भुवनों से युद्ध किया ॥ १० ॥ हे वज्रिन् ! तुमने बलासुर को वज्र से मारा । तुमने उसे अपने हिंसात्मक साधनों से दूर कर दिया और गौएँ प्राप्त कर लीं ॥ ११ ॥ विशाल-

काय वृत्र का नाश करने के कारण हम इन्द्र की प्रशंसा करते हैं। वह अभीष्ट-वर्षक इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हों ॥ १२ ॥ पापियों को वश में करने के लिए बलवान इन्द्र को रस्सी के समान किया। वह हर्षप्रद यज्ञ में प्रतिष्ठित होते हैं। वह इन्द्र सोम्य, प्रसिद्ध एवं तेजस्वी हैं ॥ १३ ॥ वह इन्द्र पर्वत से प्राप्य वज्र के समान बली हैं, वह कभी पतित नहीं होते। वह श्रेष्ठ यजमानों के लिए शत्रु के धन को प्राप्त कराते हैं ॥ १४ ॥

१३८ सूक्त

(ऋषि—वत्सः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँइव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः। विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥२॥
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्। जामि ब्रुवत आयुधम् ॥३॥

इन्द्र महान् हैं, वह वर्षा-जल से सम्पन्न मेघ के समान वत्स के स्तोम द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय! तुम सत्य वाली प्रजा का पालन करो। उस प्रजा को अग्नियाँ पुष्ट करती हैं और यज्ञ वाहक अग्नि से ब्राह्मण उस प्रजा की रक्षा करते हैं ॥ २ ॥ इन्द्र को कण्व के स्तोमों द्वारा यज्ञ साधन रूप में किया और उसी को जामि आयुध कहती है ॥ ३ ॥

१३९ सूक्त

(ऋषि—शशकर्णः। देवता—अश्विनौ। छन्द—बृहती, गायत्री, ककुप्)

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथुच्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥
यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु।
नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥ २ ॥
ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः।
एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥
अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥

यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥

हे अश्विद्वय ! इसके शिशु के विचरणार्थ एवं रक्षा के लिये इसे शृगाल रहित गृह प्रदान करो और इसके शत्रुओं को दूर करो ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! अन्तरिक्ष और स्वर्ग में जो धन है, निषाद पंचम मनुष्यों में जो धन है, उसे हम में प्रतिष्ठित करो ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! ब्राह्मण तुम्हारे कर्मों का परिमर्शन करते हैं, उस सब कर्म को तुम कण्व कृत हो समझो ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! यह हवि धन से युक्त है, यह स्तोम धर्म द्वारा सिंचित होता है, यह सोम माधुर्यमय है । तुम इसी सोम के द्वारा आवरक वैरी के जानने वाले हो ॥४॥ हे अश्विद्वय ! जल, ओषधियों और वनस्पतियों में जो कर्म निहित है; उससे मुझे सम्पन्न करो ॥ ५ ॥

१४० सूक्त

(ऋषि—शशकर्णः । देवता—अश्विनौ । छन्द— बृहती; अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्)

यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ १ ॥
आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ २ ॥
आ नून रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ३ ॥
यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ४ ॥
यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ ५ ॥

हे अश्विद्वय ! तुम द्रुतगामी और चिकित्सा कर्म में कुशल हो । तुम्हारा यह वत्स मतियों द्वारा बाँधा नहीं जाता । तुम हवि-सम्पन्न के निकट गमन करते हो ॥ १ ॥ अपनी उपासना-योग्य बुद्धियों के द्वारा ऋषियों ने

अश्विनी कुमारों के स्तोत्र को जान लिया। अतः माधुर्यमय सोम को अथर्व में निश्चित करो ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम द्रुतगामी रथ पर आरूढ़ होने वाले हो। तुम्हारे निमित्त की जाती हुई स्तुति व्योम के समान स्थिर रहे ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! हम उक्थों द्वारा तुम्हारा आश्रय लेते हैं। यह कण्व की ही कृपा है कि हम वाणी के द्वारा तुम्हारी सेवा कर रहे हैं ॥४॥ हे अश्विद्वय ! कक्षीवान्, दीर्घतमा और व्यश्व ऋषियों ने तुम्हें आहुति दी है। वेन का पुत्र पृथु तुम्हारे सब सदनों में है, अतः तुम चैतन्य होओ ॥ ५ ॥

१४१ सूक्त

(ऋषि—शशकर्णः। देवता—अश्विनौ। छन्द—अनुष्टुप्; जगती; बृहती)

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ १ ॥
यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥२॥
यद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।
यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ३ ॥
आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥ ४ ॥
यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥ ५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे रक्षक के रूप में आओ। तुम हमारे गृह की रक्षा करते हुये मिलो। हमारे शरीर के, पुत्र पौत्रादि के रक्षक रूप में प्राप्त होओ और संसार की रक्षा करने वाले होकर मिलो ॥१॥ हे अश्विनी-कुमारो ! तुम इन्द्र के रथ में साथ ही बैठकर चलते हो। तुम वायु के साथ रहते हो। तुम आदित्य और ऋभुओं के स्नेही हो। तुम विष्णु के विक्रमणों में भी युक्त हो ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम यजमानों को शीघ्रता से प्राप्त होते हो। तुम अपनी श्रेष्ठ रक्षण-शक्ति से युद्ध में शत्रु को वश करते हो।

अन्न प्राप्ति के लिए मैं तुम्हें आहूत करता हूँ ।३।। हे अश्विद्वय ! यह हव्य तुम्हारे लिए हितकारी हैं। यह सोम तुर्वश, यदु और कण्व के हैं । तुम यहाँ अवश्य आओ ।। ४ । हे अश्विनीकुमारो ! दूर की या निकट की औषधि को अपने दानी मन द्वारा विशिष्ट शक्ति के लिए प्रदान करो और शिशु के निमित्त गृह प्रदान करो ।।५।।

१४२ सूक्त

(ऋषि—शशकर्णः । देवता—अश्विनौ । छन्द—अनुष्टुप्; गायत्री)

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ।।१।।
प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ।।२।।
यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ।। ३ ।।
यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ।। ४ ।।
प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे ।
प्र दक्षाय प्रचेतसा ।। ५ ।।
यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः ।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ।। ६ ।।

मैं अश्विनीकुमारों को ज्ञान बुद्धि के साथ रहने वाला मानता हूँ । हे मेधे ! तुम मेरी बुद्धि को प्रकाशित करो और मनुष्यों को धन दो ।। १ ।। हे स्तोताओ ! तुम प्रातः समय अश्विद्वय को प्रबोधित करो । हे सत्य रूप देवी, तुम उन्हें प्रशंसनीय करो । हे होता ! तुम उनके विस्तृत यश को सब ओर फैलाओ । २ ।। हे अश्विनीकुमारो के रथ ! तू अपने तेज से उषा से मिलता हुआ सूर्य के साथ चमकता है । वह रथ अश्वों द्वारा मार्ग को प्राप्त होता है ।। ३ ।। जब रश्मियाँ पान की हुई के समान होती हैं, तब गौओं का

से द्योतन होता है। उस समय हे अश्विद्वय ! ऋत्विजों की वाणी तुम्हारी स्तुति करती है ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! महान् ऐश्वर्य, मनुष्यों को वश में करने वाला बल और कल्याण को प्राप्त करने के लिए सुन्दर बुद्धि द्वारा मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम अपने पालन करने वाले के निमित्त अपनी बुद्धियों द्वारा विराजमान होते हो और तुम कल्याणकारी कारणों द्वारा प्रशंसा के योग्य होते हो ॥ ६ ॥

१४३ सूक्त

(ऋषि—पुरुमं ढाजमीढौ: वामदेव:;मेध्य तिथि:। देवता—अश्विनौ। छन्द त्रिष्टुप्)

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १ ॥
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम ॥ २ ॥
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः।
ऋतस्य व वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेम यज्ञं नासत्योप यातम्।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥
आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५॥
नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीढासो अग्मन् ॥६॥
इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना।
उरुष्यतं जरितार युवं ह श्रितः कामो नासात्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥
मधुमतीरोपधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ८ ॥
प्रस्तुतः तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः।
[illegible]ंसा उत ये गविष्टौ सर्वां इत् तां उप याता पिबध्यै ॥६॥

संस्कृ

हे अश्विनीकुमारो ! हम तुम्हारे वेगवान् रथ का आज आह्वान करते हैं। तुम्हारा वह रथ ऊँचे नीचे स्थानों में जाता तथा सूर्या का वहन करता है ! वह वाणी का वहनकर्ता, वसुओं को प्राप्त कराने वाला तथा गौओं से सुसंगत होने वाला है। मैं उसी रथ को आहूत करता हूँ ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम लक्ष्मी के अधिष्ठात्री देवता हो, तुम उसे अपनी शक्तियों द्वारा सेवन करते हो और उसे आकाश से पतित नहीं होने देते। रथ में तुम्हें वहन करने वाले विशाल अश्व और अन्न तुम्हारे शरीर से सदा मिले रहते हैं। २ ॥ कौन हविर्दाता रक्षा-प्राप्ति के लिए और संस्कारित सोम को पीने के लिए तुम्हें आहूत कर रहा है, कौन तुम्हारी सेवा कर रहा है ? यज्ञ-सेवी इन्द्र को नमस्कार है। अश्विनीकुमारो को यहाँ लाने वाले के लिए भी मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥ हे अश्विद्वय ! तुम अपने स्वर्णिम रथ के द्वारा इस यज्ञ स्थान में आगमन करो। तुम सोम के मधुर रस का पान करते हुये इस सेवक पुरुष को रत्न-धन प्रदान करो ॥४॥ हे अश्विद्वय ! तुम अपने स्वर्णिम रथ के द्वारा आकाश से पृथिवी पर आगमन करो। अन्य पूजक तुम्हें रोक न सकें, मैं तुम्हारे निमित्त स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय ! स्तोता मनुष्य स्तुति के साथ ही आजमीढ़ होते हैं। इस स्तोता यजमान को वीर्य द्वारा आविर्भूत होने वाले पुत्र पौत्रादि से युक्त धन दोनों लोकों में दो ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! इन्हें ऐसी सुबुद्धि दो, जिससे यह यजमान परस्पर समान मति वाले हों। इनकी अभिलाषा तुम पर ही निर्भर रहे और तुम इस स्तोता के रक्षक हो ॥ ७ ॥ हमारे लिये आकाश मधुमय हो, अन्तरिक्ष मधुमय हो औषधियाँ मधुमती हो और क्षेत्रपति भी मधुमय हो। हम अमृतत्व को प्राप्त हुये अनुगामी होते हुये घूमें ॥ ८ ॥ तुम्हारा स्तोत्र-कर्म आकाश और ... में फलों का वर्षक है तुम सोम-पान करके गोपूजा वाले सैकड़ों ... प्राप्त होते हो ॥ ९ ॥

॥ इति विंशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ इति अथर्ववेद समाप्तम् ॥

चारों वेदों का सरल हिन्दी भाष्य

ऋग्वेद—में सृष्टि रचना, प्रकृति, आत्मा और जीव का स्वरूप धर्म-नीति, चरित्र, सदाचार, परोपकार और मनुष्य के वास्तविक कर्तव्य का सुन्दर दिग्दर्शन है। साथ ही ही समाज-नीति, राजनीति, अर्थनीति, अङ्क-गणित, रेखा-गणित, बीज-गणित, ज्योतिष, भूगोल, खगोल, रसायन-शास्त्र, भूगर्भ विद्या, धातु-विज्ञान व मनोविज्ञान के मूल सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया गया है। ४ खण्डों का मूल्य २४) मात्र

अथर्ववेद—में अन्न-सिद्धि, बुद्धि बढ़ाने के उपाय, वीर्य रक्षा, ब्रह्मचर्य, धन-धान्य, समय पर वृष्टि, व्यापार की वृद्धि, दीर्घ आयु और सुदृढ़ स्वास्थ्य के साधन, राज्याधिकारियों का नियन्त्रण, युद्ध में विजय, शत्रु सेना में मोह व भ्रम उत्पन्न करना उन्हें नष्ट करना आदि विषयों का विज्ञान है।

२ खण्ड–मूल्य १२) मात्र

यजुर्वेद—कर्मकाण्ड प्रधान वेद है। इसमें यज्ञों के विधि-विधान व विज्ञान पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति, शिल्प, व्यवसाय, राज्य, स्वराज्य, साम्राज्य आदि के सम्बन्ध में कल्याणकारी ज्ञान प्रदान किया गया है। मूल्य ६) मात्र

सामवेद—यद्यपि चारों वेदों में आकार की दृष्टि से सबसे छोटा है, फिर भी उसकी प्रतिष्ठा सर्वाधिक है। सामवेद के मन्त्र अमूल्य रत्नों की खान हैं। इसकी भक्तिरसपूर्ण काव्य धारा में अवगाहन करने से तुरन्त ही मनुष्य का अन्तरतम निर्मल, विशुद्ध, पवित्र और रससिक्त हो जाता है।

मूल्य ६) मात्र

'गायत्री तपोभूमि' मथुरा के संचालक वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा प्राचीन सायण भाष्य के आधार पर यह हिन्दी संस्करण सम्पादित हुआ है। इसमें मूल वेदमन्त्रों के साथ-साथ हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

१०८ उपनिषदें—हिन्दी टीका सहित

वेद के दुरूह रहस्यों का सरल रीति से विस्तारपूर्वक विवेचन उपनिषदों में हुआ है। प्राचीन-काल में ऋषि, मुनि मानव-जीवन की व्यक्तिगत व सामाजिक सभी प्रकार की उलझी हुई समस्याओं को सुलझाने के लिए लाखों वर्षों से जो चिन्तन और मनन करते रहे हैं, उनका सार उपनिषदों में सञ्चित है। आत्म-विद्या, ब्रह्मविद्या के रहस्य का उपनिषदों में विवेचन हुआ है। यह जीवन का सर्वांगपूर्ण दर्शन ही है।

प्रमुख उपनिषदें १०८ हैं। उनमें से अब तक बहुत थोड़े उपनिषदों का भाष्य उपलब्ध था। शेष कठिन संस्कृत में होने के कारण सर्वसाधारण के लिए दुरूह ही बने हुए थे। प्रसन्नता की बात है कि गायत्री तपोभूमि मथुरा के सञ्चालक वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा १०८ उपनिषदों का मूल मन्त्रों के साथ सरल व सुबोध हिन्दी भाष्य किया गया है। यह अपने ढङ्ग का सर्व प्रथम प्रकाशन है। इसके तीन भाग हैं। (१) ज्ञान खण्ड, (२) ब्रह्मविद्या खण्ड, (३) साधना खण्ड। ज्ञान खण्ड में विचारात्मक व आचारात्मक उपनिषदें हैं। ब्रह्मविद्या खण्ड में आध्यात्मिक रहस्यों का विवेचन है। साधना खण्ड में योग साधनों का मार्ग दर्शन है। प्रत्येक खण्ड का मूल्य ७) रु०। ३ खण्डों के सम्पूर्ण सेट का २१) रु०, डाक खर्च इसके अतिरिक्त।

भारत के महामान्य राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् की सम्मति है—
"यह एक महत्वपूर्ण प्रकाशन है और मुझे विश्वास है कि इसे बहुत लोग पढ़ना पसन्द करेंगे।"

दैनिक हिन्दुस्तान नई दिल्ली की सम्मति—"वस्तुतः उपनिषदों के इस संकलन में सरलता, सरसता और सुरुचिता की ज्ञान गङ्गा प्रवाहित की गई है। भारत के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुस्तक विक्रेताओं द्वारा जो प्रकाशन हमारे देखने में आए हैं, उन सबसे बढ़कर उपनिषदों का रहस्य समझने में आचार्य जी अधिक सफल हुए है।"

प्रकाशक :—

संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली (उ० प्र०)

षट् दर्शनों का हिन्दी टीका

भारतीय दर्शन को प्राचीनकाल से संसार में सर्वोच्च स्थान प्राप्त रहा है। वेद और उपनिषदों में जिन आध्यात्मिक तत्त्वों का उपदेश दिया गया है, दर्शनों में उसे तर्क तथा युक्ति के अनुकूल एवं व्यवस्थित रूप दे दिया गया है, जिससे मनुष्य की बुद्धि उसे भली प्रकार ग्रहण करके उस पर आचरण करने की सामर्थ्य प्राप्त कर सके।

मनुष्य क्या है ? उसके जीवन का लक्ष्य क्या है ? इसका कोई सृष्टा है या नहीं ? मनुष्य को अपना जीवन किस तरह व्यतीत करना चाहिए ? भारतीय दर्शनों ने इन्हीं प्रश्नों पर बड़ी व्यापक दृष्टि से विचार किया है और इस बात को स्पष्ट रूप से समझाया गया कि संसार के दुःखों का कारण क्या है और उनका नाश किस प्रकार किया जा सकता है। इससे मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य को समझ सकता है और तदनुसार आचरण करके उन दुःखों से छुटकारा पा सकता है।

वैशेषिक दर्शन की रचना कणाद मुनि ने की है। इस दर्शन के सूत्र भारतीय दर्शन सूत्रों में सबसे प्राचीनतम हैं। कणाद ने इस दर्शन में सृष्टि रचना में परमाणुवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। कणाद का मत है कि धर्म के बिना अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सकता। अशुद्ध अन्तःकरण में प्रकाश नहीं होता। न्याय दर्शन के रचयिता गौतम हैं। यह मानव को मुक्ति का मार्ग प्रस्तुत करता है। इसमें अपने विषय को समझाने के लिए तर्क और बुद्धि का सहारा लिया गया है। न्याय की यह नीति सभी दर्शनों की पथप्रदर्शक है। कपिल का सांख्य दर्शन प्रधानतः ज्ञान मार्ग से मानव व्यक्तित्व के चरम विकास की योजना प्रस्तुत करता है। योग दर्शन जीवन की पवित्रता और चिन्तन, मनन और निदिध्यासन के द्वारा उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति करता है। महर्षि जैमिनी के मीमांसा दर्शन का प्रतिपाद्य विषय कर्मकाण्ड है। यज्ञीय कर्मों से ही स्वर्ग अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है, यह दर्शन की मूल धारणा है। महर्षि बादरायण व्यास द्वारा रचित वेदान्त दर्शन वैदिक साहित्य की सारी दार्शनिक शिक्षाओं का निचोड़ ही है।

प्रत्येक दर्शन का मूल्य ४)

प्रकाशक :— संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली (उ०प्र०)